CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding KS-NMM, Delhi-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

10.2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

दिव्य शब्द विज्ञान

[SCIENCE OF DIVINE SOUND]

दिव्य शब्द द्वारा आत्मा और परमात्मा
के साक्षात्कार का नवीनतम अनुसन्धान

प्रणेता

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस

आत्म विज्ञान, बहिरङ्ग-योग, प्राण विज्ञान, ब्रह्म विज्ञान,
निर्गुण ब्रह्म, दिव्य ज्योति विज्ञान
के रचनाकार

क

ा निकेतन ट्रस्ट

/७८, पंजाबी बाग
दिल्ली-११००२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुस्तक मिलने का पता —

योग निकेतन ट्रस्ट
३०-ए/७८, पंजाबी बाग
नयी दिल्ली-११००२६

योग निकेतन ट्रस्ट
मुनि-की-रेती
ऋषिकेश-२४९२०१
(उत्तर प्रदेश)

© [सर्वाधिकार सुरक्षित हैं]
(पुस्तक से किसी उद्धरण लेने या अनुवाद करने के लिए
प्रकाशक की आज्ञा अनिवार्य है)

द्वितीय संस्करण
१९९०
मूल्य ६० रुपये

मुद्रक :
नवीन प्रिंटर्स
बाई ७५ सुलतानपुरी रोड, नांगलोई
नयी दिल्ली-११००४१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

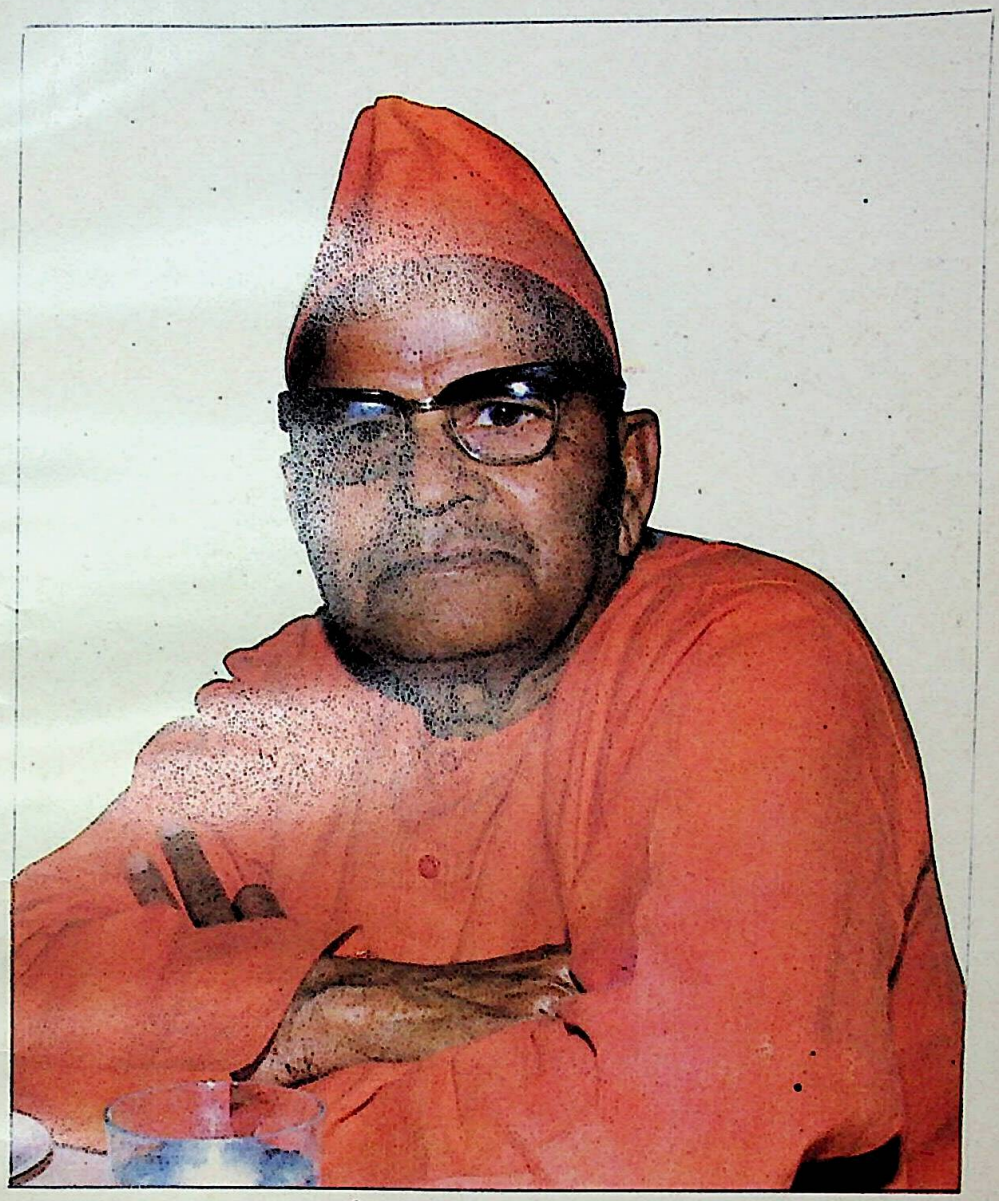

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस
Shri Yogeshwaranand Paramahans

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

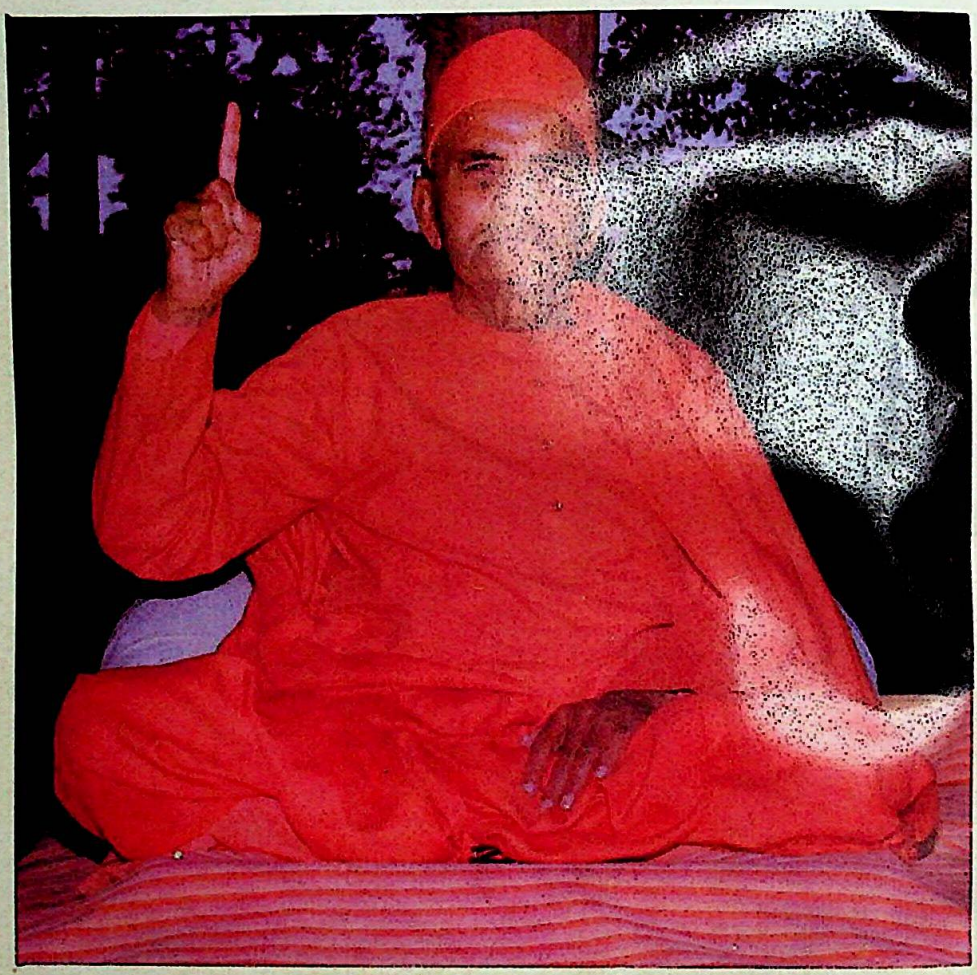

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस
Shri Yogeshwaranand Paramahans

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

प्रकाशक की ओर से निवेदन

प्रातःवन्दनीय श्री योगेश्वरानन्द परमहंस ने इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' को बड़ी बुद्धिमत्ता और सूक्ष्मदर्शिता से लोकोपकारार्थ लिख कर प्रदान किया है। इस ग्रन्थ में शब्द और मन्त्र द्वारा आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार के अनेक साधन साधकों के लिए बताये गए हैं।

इस ग्रन्थ में १०८ प्रकार के दिव्य शब्दों और मन्त्रों द्वारा पदार्थों में आत्मा, परमात्मा, कार्य-कारणात्मक प्रकृति के साक्षात्कार का वर्णन है। प्रकृति की परिणत होती हुई प्रत्येक अवस्था में ब्रह्म का व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध दिखाकर इसको प्रत्यक्ष करने की बातें बतायी गयी हैं।

जिस प्रकार 'प्राण विज्ञान' और 'दिव्य ज्योति विज्ञान' में प्राण और ज्योतियों द्वारा पदार्थों में आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार के साधन बताये गये हैं, इसी प्रकार इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में आत्मा, परमात्मा और प्रकृति के साक्षात्कार के बहुत से साधन लिखे गये हैं। पाठकवृन्द बहुत शीघ्र इस विज्ञान को समझने में समर्थ होंगे।

इस ग्रन्थ को पूज्यपाद श्री योगेश्वरानन्द परमहंस जी ने योग निकेतन पहलगाम (काश्मीर) में ३ मास के योग साधना शिविर के अवसर पर लिखा है। यह आश्रम बहुत एकान्त शान्त स्थान है। आस-पास में चीड़ कैपल देवदार के वृक्ष और बड़े-बड़े विशाल पर्वत हैं जो प्रायः हिमाच्छादित और हरे-भरे बने रहते हैं। थोड़ी दूर पर नीचे लिदर नाम की नदी बह रही है। इसका जल पत्थरों से टकराकर कल-कल शब्द करते हुए चलता है। इसकी ध्वनि में बाहर के अन्य शब्द सुनाई नहीं देते। ध्यानाभ्यास के लिए बहुत पवित्र स्थान है। श्री योगेश्वरानन्द परमहंस ने 'निर्गुण ब्रह्म', 'प्राण विज्ञान' और 'दिव्य ज्योति विज्ञान' ग्रन्थ यहां ही लिखे थे और अब 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ भी यहां ही लिखा गया है।

इस ग्रन्थ में शब्द को प्रधान मानकर, शब्द और शब्द-आत्मक मन्त्र जाप के द्वारा आत्म-ज्ञान एवं ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के अनेक साधन बताये गये हैं, जिनके द्वारा आत्मा और परमात्मा का निर्भ्रान्त साक्षात्कार होता है। शरीर में आकाशस्थ १०८ प्रकार के शब्दों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से आत्मा परमात्मा की अनुभूति की बातें बतायी गयी हैं। इस ग्रन्थ में ६ प्रकार के चित्रों द्वारा शब्द विज्ञान की प्रक्रिया बताकर इस विज्ञान को अत्यन्त सुगम और सरल बना दिया गया है, ताकि साधारण बुद्धि के अभ्यासी भी इस विज्ञान को समझ सकें। शब्द के द्वारा ब्रह्मज्ञान को बहुत सुगमता सरलता से जानने समझने योग्य बनाना इसका विषय है। इसमें शब्द और प्रणव तथा मन्त्र का बड़ा महत्त्व दर्शाया गया है। कठिन प्रकरणों को भी सुगम बनाने का यत्न किया गया है।

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस जी ने अष्टांग योग के द्वारा अपने ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न रूप से आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के अनेक उपाय बताये हैं। इनके ग्रन्थों को साधक पढ़कर और जानकर एक ही जन्म में आत्मज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो सकता है। पाठक इस ग्रन्थ को पढ़कर यह अनुभव करेंगे कि केवल शब्द के द्वारा ही आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

इस ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति और सर्वप्रथम शब्द का प्रादुर्भाव कथन किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति में सर्वप्रथम पदार्थों का भी प्रादुर्भाव हुआ। दूसरे अध्याय में बताया गया है कि स्थूल भूतों की सृष्टि और स्थूल शरीर की उत्पत्ति स्थूल सृष्टि में चित् के और ब्रह्म के संयोग से जीवात्मा का प्रादुर्भाव कारण-शरीर के लिए हुआ है। तीसरे अध्याय में बताया गया है कि स्थूल शरीर की उत्पत्ति और स्थूल शरीर में दस प्रकार के आकाश में शब्द की उत्पति और शब्द द्वारा आत्म-साक्षात्कार एवं ब्रह्मरन्ध्रस्थाकाश और कर्णेन्द्रियस्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्मज्ञान। चतुर्थ अध्याय में बताया गया है सूक्ष्म शरीर में ३० प्रकार के आकाशस्थ शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार और कारण शरीर में व्यष्टि समष्टि पदार्थों का वर्णन एवं १२ समष्टि पदार्थ जो महाकारण शरीर के रूप में ब्राह्मी सृष्टि में वर्तमान हैं। उन सब में ब्रह्म की व्याप्ति और ब्रह्म साक्षात्कार के बहुत साधन बताये हैं।

प्रकृति की साम्यावस्था में शब्द और प्राण ज्ञान और कर्म के रूप में कार्य कर रहे थे और प्रकृति पुराणता को त्याग कर नवीनता प्राप्त कर रही थी, पुनः संसार को सृजन करने योग्य बनने के लिए। साम्यावस्था का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन और अभ्यास से साधक तत्त्वज्ञान और परम वैराग्य प्राप्त होकर भव पाश से मुक्त हो सकता है। अथर्ववेद ने भव पाश से मुक्त होने का उपाय इस मन्त्र में बताया है :—

इमं यवमष्टांगयोगैः षड्योगेभिरचर्क्रषुः। तेन ते तन्वोऽपाचीनमपव्यये।

अर्थ—(इमं) इस (यवम्) शरीर इन्द्रिय अन्तःकरण में रहने वाले आत्मा को (अष्टांगयोगैः) यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह अष्टांङ्गयोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(षड्योगेभिः) शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधान-मुमुक्षुत्व या समाधि सम्पत्ति से (अचर्क्रषुः) शुद्ध करते हैं (तेन) इस योगाभ्यास से (ते) तेरे लिए (तन्वः) शरीर आत्मा के लिए (अपाचीनम्) दुष्ट पाप (अपव्यये) दूर करने का उपदेश करता हूं।

इस मन्त्र में भव पाश और पापों से मुक्त होने का उपाय अष्टाङ्ग योग को और षडङ्ग योग को बताया है। इस ग्रन्थ में इन दो प्रकार के योग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में ३० प्रकार के दिव्य शब्द का स्थूल शरीर में ३०, प्रकार के दिव्य शब्दों का सूक्ष्म शरीर में, १२ प्रकार के शब्दों का कारण शरीर में और ३६ प्रकार के शब्दों का महाकारण शरीर में, कुल १०८ दिव्य शब्दों द्वारा आत्मा, परमात्मा और प्रकृति के कार्य-कारण पदार्थों के साक्षात्कार का वर्णन है।

आशा है, साधकवृन्द महाराज श्री द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य में सफलता लाभ करेंगे।

योग निकेतन ट्रस्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

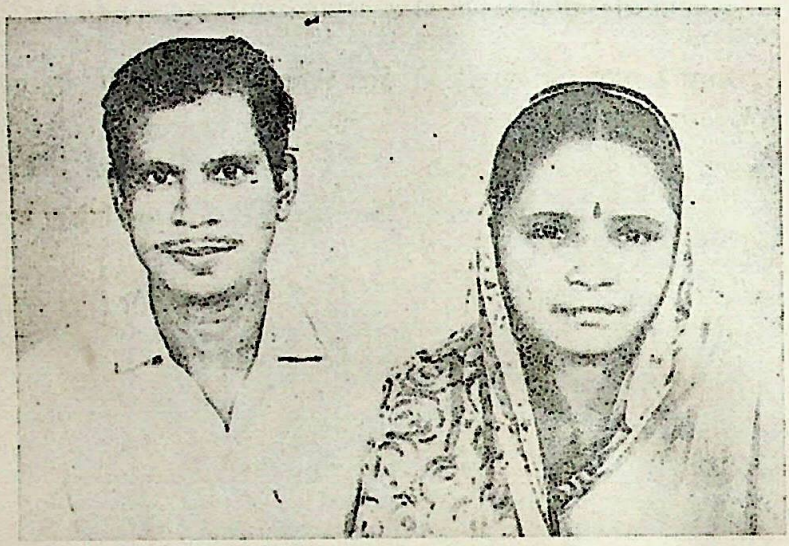

श्री निवास अग्रवाल एवं धर्मपत्नी विमला अग्रवाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुभ-कामना और आशीर्वाद

अग्रवाल का जन्म इलाहाबाद के सिविल लाइन क्षेत्र के एक साधारण परिवार में वर्ष १९५२ में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मैथोडिस ब्वाय्स प्राईमरी स्कूल में हुई। तदुपरान्त उच्चतर शिक्षा के लिए सिटी०ए०वी० इण्टर मीडियट कालेज में प्रवेश लिया। कुछ वर्ष बाद घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने से पढ़ाई को बीच में ही छोड़ना पड़ा। एक रात स्वप्न में उन्हें किसी दिव्य आत्मा से मुद्रण का काम सीखने की प्रेरणा मिली, अपनी लगन और अध्यवसाय से इन्होंने शीघ्र ही इस काम में कुशलता प्राप्त कर ली।

काम सीखने के उपरान्त वह दिल्ली चले आये और एक मुद्रणालय में सेवारत हो गये। वर्ष १९७४ में सौभाग्यवती विमला से इनका विवाह सम्पन्न हुआ जिससे दो सुपुत्र नवीन और अरुण तथा एक सुपुत्री आशा से इनकी गृहस्थी फलवती हुई।

तदोपरान्त इनके मन में अपना मुद्रणालय खोलने की आशा बलवती हुई और नवीन प्रिंटर्स के नाम से एक लघु उद्योग का उदय हुआ। वर्ष १९८४ में आप महाराज श्री के सम्पर्क में आये और कालक्रम से साइंस आफ डिवाइन साउंड, साइंस आफ सोल, बहिरङ्ग योग तथा ब्रह्म विज्ञान के नवीन संस्करणों का मुद्रण कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न किया।

वैश्य जाति में दान शीलता के संस्कार सदैव प्रभावी रहे हैं। इन्हीं शुभ संस्कारों से प्रेरित हो कर इन्होंने 'दिव्य शब्द विज्ञान' के प्रस्तुत संस्करण की निःशुल्क छपाई का संकल्प लिया और उसे पूर्ण किया।

महाराज श्री योगेश्वरानन्द परमहंस के माध्यम से मेरी सर्वशक्तिमान भगवान् से प्रार्थना है। कि यह परिवार सदा सुखी एवं समृद्ध रहे और सदा धर्म मार्ग का अनुसरण करता रहे। इस परिवार की ओर से प्राप्त आर्थिक सहायता के लिए ट्रस्ट विशेष रूप से आभारी है।

ओम प्रकाश रहेजा
अध्यक्ष
योग निकेतन ट्रस्ट,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
प्रथम अध्याय	१-१९
सर्वप्रथम शब्द का प्रादुर्भाव	१
चित्र १	५-६
द्वितीय अध्याय	२१-४३
स्थूल शरीर की उत्पत्ति	२१
चित्र २	३०-३१
तृतीय अध्याय	४५-१०१
शब्द और मन्त्र द्वारा आत्मा और ब्रह्म का साक्षात्कार	४५
चित्र ३	४४-४५
चित्र ४	६०-६१
चतुर्थ अध्याय	१०३-१६२
सूक्ष्म शरीरस्थ आकाश में शब्द द्वारा आत्मानुभूति	१०३
चित्र ५-६	१२६-१२७
उपसंहार	१६३-१६४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम अध्याय

सर्वप्रथम शब्द का प्रादुर्भाव

पूर्व कल्प में जब कभी यह दृश्यमान जगत् या ब्रह्माण्ड कार्य रूप में वर्तमान था। अन्त में, जब यह बिल्कुल जीर्ण-शीर्ण हो चुका था, विनाश भाव को प्राप्त होकर क्रमपूर्वक परिणत होते हुए अपने उपादान कारण में पहुंचा। कई अरब वर्ष तक प्रलय काल की अवस्था में वर्तमान रहा। उस समय कारण रूप प्रकृति साम्यावस्था में रहकर सूक्ष्म रूप में गतिशील बनी रही, और नूतन भाव को प्राप्त होकर बलवती युवती सी बनती रही। आगामी सृष्टि सृजन करने के योग्य बनती रही। इसमें अथर्ववेद का प्रमाण है—

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् विसीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥

अथर्ववेद, सू० १, काण्ड ५

मन्त्र का शब्दार्थ—(ब्रह्मं) सबसे बड़ा या महान् ब्रह्म (जज्ञानं) सब का जनक या विस्तार करने वाला (प्रथमं) सब से प्रथम विस्तार करने वाला (पुरस्तात्) सृष्टि के आदि में सबसे पहले (विसीमतः) असीम मर्यादा से (वेनः) प्रकाशमान परमात्मा (आवः) अपनी सर्वव्यापकता से आच्छादित (स) वह भगवान् (बुध्न्या) आकाश वर्तमान लोकलोकान्तर (उपमा) जो लोक ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त हैं (अस्य) इस ईश्वर के (विष्ठाः) विविध स्थानों में स्थित (सतः) व्यक्त विद्यमान देखने योग्य (च) और (असतः) कारण रूप अव्यक्त (च) और (योनिम्) अवकाश रूप आकाश को (विवः) ग्रहण या धारण करता है।

इस मन्त्र में कारण रूप प्रकृति का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध दिखाया गया है। वह भी प्रलय काल की अवस्था में दिखाया है।

प्रलय काल की अवस्था में सूक्ष्म शब्द और प्राण का कार्य

प्रलय काल की अवस्था में प्रकृति और ब्रह्म दो ही पदार्थ वर्तमान थे। जड़ और चेतन के रूप में यदि इनका सम्बन्ध नया और प्रथम माना जाये तब एक और आपत्ति उपस्थित होती है कि दोनों का सम्बन्ध कराने में एक और अन्य निमित्त होना चाहिये। उस काल में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्य तीसरा पदार्थ तो होता नहीं है। जड़ रूप प्रकृति और चेतन रूप ब्रह्म होता है। तब इनका सम्बन्ध नित्य ही मानना होगा। नित्य रूप सम्बन्ध से इस समय जो प्रकृति है वह पहले कल्प में पुरानी होकर विध्वंस भाव को प्राप्त हो गयी थी, और वह कार्य रूप से कारण रूप में चली गयी थी। पुनः सृष्टि को उत्पन्न करने के लिए वह प्रलय काल में या विश्राम काल में सशक्त या बलवती होकर, नवीन भाव को प्राप्त हो पुनः संसार का सृजन करेगी।

इस प्रलय काल में इसके दो प्रधान गुण 'शब्द' और 'प्राण' इसमें कम्पन या गति बनाये रखते हैं। इस अवस्था में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में गति या कर्म बना रहता है। ये शब्द और प्राण इसमें शक्ति बल पैदा करेंगे और पुनः इसे संसार के सृजन योग्य बना देंगे। जैसे मनुष्य को निद्रा काल की अवस्था में हृदय और नाड़ी की धड़कन रूप शब्द एवं प्राण शक्ति बल प्रदान करते हैं, इसी प्रकार प्रकृति को प्रलय काल की अवस्था में शब्द और प्राण बलवती बना देते हैं। निद्रा शरीर की स्थिति का काल या तम अवस्था अथवा विश्राम की अवस्था होती है जो शरीर को दूसरे दिन के लिए हर प्रकार से कार्य करने में समर्थ बना देती है। इसी प्रकार यह प्रकृति की प्रलय कालीन अवस्था उसे पुनः संसार के सृजन योग्य बना देती है या बन जाती है।

इस में भी शब्द और प्राण इसके विश्राम के समय वर्तमान रहकर इसे भी बलवती बना देते हैं। तब यह पुनः ब्रह्माण्ड को कारण से कार्य रूप में उत्पन्न करने योग्य हो जाती है। कारण रूप में रहकर शब्द और प्राण इसमें अनन्त शक्ति बना देते हैं, बल और पराक्रम पैदा कर देते हैं।

शंका—प्रकृति परमात्मा से पृथक् या दूर रहकर विश्राम नहीं कर सकती है जो फिर संयोग करके या मिल कर संसार को उत्पन्न कर ले ?

समाधान—प्रकृति स्वयं तो पृथक् नहीं हो सकती है, क्योंकि वह जड़ है। जड़ का मेल कराने वाला, जोड़ने वाला, कोई अन्य होना चाहिये और अलग करने वाला भी होना चाहिये। स्वयं तो वह मिल नहीं सकती क्योंकि जड़ है, क्रिया रहित है। उसमें क्रिया का हेतु कोई होना चाहिये। परमात्मा भी अलग रहकर कुछ नहीं कर सकता। वह भी क्रिया रहित है। उसमें भी कर्म की उत्पत्ति नहीं हो सकती। निष्क्रिय होने से वह भी कुछ नहीं कर सकता है। तब दोनों ही निष्क्रिय होकर रह जायेंगे। उन दोनों में कर्म उत्पन्न करने के लिए अन्य तीसरा होना चाहिये। इन दोनों से भिन्न अन्य कोई पदार्थ तो है नहीं जो दोनों का संयोग कर सके, अतः दोनों का नित्य ही संयोग मानना चाहिये। एक और आपत्ति उपस्थित होती है कि दोनों को अलग-अलग रहने के लिए अन्य स्थान भी होना चाहिये। इन दोनों से भिन्न अन्य स्थान भी कोई नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकृति की साम्य-अवस्था में शब्द और प्राण के द्वारा सूक्ष्म कर्म बना रहता है, जो भविष्य में इसमें विशेष परिणाम का हेतु होकर जगत् को उत्पन्न करेगा। अतः प्रकृति में शब्द और प्राण सदा सूक्ष्म और स्थूल रूप में बने ही रहेंगे—कारण में और कार्यों में; ये शब्द और प्राण ज्ञान और कर्म का हेतु बने रहेंगे। ज्ञान और कर्म की सूक्ष्म अवस्था शब्द और प्राण होती है—शब्द ज्ञान के रूप में, ज्ञान सत्व महत्तत्त्व के रूप में। इसी प्रकार प्राण कर्म के रूप में और कर्म रजोगुण या रजः महत्तत्त्व के रूप में। इनके बीच का काल जो है वह स्थिति (बल) के रूप में, क्योंकि गति या ज्ञान को रोकने के लिए या ठहरने के लिए बल की आवश्यकता होती है। अतः तीसरी अवस्था बल है। बल ही पदार्थ का स्तंभन करता है और बल ही गति भी प्रदान करता है।

हम प्रकृति की साम्यावस्था का वर्णन कर रहे थे और इसमें सर्वप्रथम शब्द की उत्पत्ति की बात लिख रहे थे। अब इसमें शंका उत्पन्न होती है कि शब्द की उत्पत्ति क्या प्रकृति के किसी देश विशेष में हुई, या समस्त प्रकृति में हुई? इसका समाधान यह है कि परमात्मा प्रकृति के सब देशों में अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त है। अतः प्रकृति के सब देशों में ही अनन्त शब्दों की उत्पत्ति माननी होगी। अब यह विचारणीय है कि शब्द किस प्रकार और किस रूप में उत्पन्न होते हैं। इस समय जगत् में इतने शब्द उत्पन्न हो रहे हैं कि इनकी गिनती करना असंभव है। जितने भी जड़ पदार्थ संसार में हैं, सब के संयोग-वियोग, उत्पत्ति और विनाश के समय, अथवा कारण से कार्य की उत्पत्ति अथवा पदार्थों के गमनागमन के समय सर्व में सर्वत्र शब्द उत्पन्न हो रहे हैं।

इसी प्रकार जितने भी शरीरधारी चेतन प्राणी हैं, सर्वत्र सब शब्द बोलते हैं; और जितने भी जड़ पदार्थ संसार में हैं, सब में शब्दों की उत्पत्ति होती है। सर्व प्राणी भिन्न-भिन्न शब्द बोलते हैं। इसीलिए कोई प्राणी या पदार्थ ऐसा नहीं है जिसमें या जिससे शब्द की उत्पत्ति न हो। जहां भी दो या बहुतों का संयोग होता है वहां शब्दों की उत्पत्ति होती है।

शब्द सदा कारण और कार्य में परिवर्तित होता रहता है। वर्तमान में शब्दों को प्रत्यक्ष रूप में उत्पन्न होते हुए देख कर स्पष्ट होता है कि भूतकाल अर्थात् सृष्टि के सृजन काल में वे कारण से कार्य भाव को प्राप्त हुए हैं अथवा इनका अवतरण हुआ है।

शंका—शब्द और संस्कार में क्या अन्तर है? क्या शब्द का उपादान प्रकृति है या संस्कार है? क्योंकि कहीं-कहीं संस्कारों को ही प्रकृति का रूप दे दिया गया है?

समाधान—वास्तव में संस्कार ही अन्त में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में शब्द के रूप में होते हैं। कर्म और ज्ञान युक्त जो व्यवहार है या जो भी कर्म और ज्ञान युक्त पदार्थ हैं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनकी सूक्ष्म रूप में जो छाप है, जिसे नेगेटिव कहते हैं, यह कर्म और ज्ञान का सूक्ष्म रूप ही है। और यह सूक्ष्म रूप सूक्ष्म शब्द ही होंगे, क्योंकि शब्द में अर्थ और ज्ञान सूक्ष्म रूप में निहित रहते हैं। शब्द उत्पन्न होता है, इसका उपादान कारण भी कोई होना चाहिये। वह मूल रूप में प्रकृति ही हो सकती है। इस से भिन्न और कोई पदार्थ नहीं है, सिवाय ब्रह्म के। यह ब्रह्म परिणामरहित, निर्विकार, निष्क्रिय, निरवयव है। जब विज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि से हम विचार करते हैं या देखते हैं तब वास्तव में संस्कारों में भी सूक्ष्म शब्द असंख्य होते हैं। कर्म और ज्ञान युक्त पदार्थों का प्रतिबिम्ब ही संस्कार होते हैं।

शंका—क्या शब्द, अनन्त शब्दों का संघात ही प्रकृति है?

समाधान—क्योंकि शब्द उत्पन्न होते हैं, इनके उत्पन्न होने के लिए अवकाश चाहिये। और फिर गमन भी करते हैं, इनमें गति रूप धर्म भी देखने में आता है। इनका उपादान कारण अवश्य होना चाहिये। वह प्रकृति ही हो सकती है। प्रकृति और ब्रह्म के संयोग से प्रकृति में शब्दों की उत्पत्ति होती है। इन अनन्त शब्दों के संघात से महत्तत्व अथवा महत् की उत्पत्ति होती है। इसका अर्थ भी ज्ञान ही होता है। प्रकृति के सर्वप्रथम कार्य 'शब्द' ज्ञान की परंपरा चलाते हैं। ब्रह्मज्ञान और प्रकृति के साक्षात्कार का कारण शब्द ही ज्ञान रूप में होते हैं।

शंका—प्रकृति जड़ है, इसमें गति का अभाव है। ब्रह्म निष्क्रिय है, इसमें भी गति का अभाव है। तब शब्द की उत्पत्ति कैसे होगी? इन दोनों को कौन गति करायेगा?

समाधान—वास्तव में दो या बहुत पदार्थों के संयोग से शब्द की उत्पत्ति होती है। संयोग दो प्रकार का होता है—एक अनित्य पदार्थों का, दूसरा नित्य पदार्थों का। यहां प्रकृति और ब्रह्म दोनों नित्य हैं, अतः दो होने से इनका संयोग भी नित्य मानना होगा। नित्य संयोग से शब्द भी सदा ही उत्पन्न होते रहेंगे। प्रकृति नित्य होते हुए भी परिणामिनी है और शब्दों का उपादान कारण है। इसके साथ ही शब्द भी कार्य-कारण भाव को प्राप्त होते रहेंगे और गमन करते रहेंगे। इस तरह शब्दों की कार्य-कारण रूप में परंपरा चलती रहेगी। यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है और सदा चलता रहेगा।

ब्राह्मी सृष्टि की उत्पत्ति का प्रारम्भ

इस ग्रन्थ का नाम है 'दिव्य शब्द विज्ञान'। शब्द के साथ दिव्य शब्द क्यों जोड़ा गया है? क्योंकि संसार में सर्वप्रथम शब्द की उत्पत्ति हुई है। उस समय मनुष्य तो होते नहीं हैं जो उन शब्दों को व्यवहार में लायें। इसलिए उनमें दिव्यता होती है। और वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञान रूप होते हैं, वह ज्ञान भी दिव्य होता है क्योंकि उनका सम्बन्ध प्रकृति या ब्रह्म से होता है। अतः वे दिव्य रूप में होते हैं।

वर्तमान काल में भी समाधि की अवस्था में सूक्ष्म और दिव्य शब्दों द्वारा चेतन और जड़ पदार्थों का साक्षात्कार होता है। उस समाधि की अवस्था में उत्पन्न हुए शब्द भी दिव्य होते हैं, जो अर्थ और ज्ञान का प्रकाश करते हैं। इस कारण से शब्द के साथ में दिव्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

आज से अरबों वर्ष पूर्व यह दृश्यमान जगत् नहीं था। केवल इसका उपादान कारण प्रकृति ही थी। जो अव्यक्त रूप में थी। उसमें शब्द और गति सूक्ष्म रूप में थे। इन दोनों गुण या धर्म को कार्य भी कह सकते हैं। ये इसमें स्वाभाविक रूप में वर्तमान थे। ये ही इस प्रकृति की जीर्णता को नवीनता में परिवर्तित करके लाना चाह रहे थे। 'यथापूर्वमकल्पयत्' करना चाहते थे। शब्द इस अवस्था को ज्ञान रूप में और गति इसको कर्म रूप में परिणत करना चाहते थे। ज्ञान कर्म शब्द और गति, इनका निमित्त कारण ब्रह्म और उपादान कारण प्रकृति वर्तमान थे। प्रकृति सावयव और ब्रह्म निरवयव है। सावयव स्थूल और निरवयव सूक्ष्म है। प्रकृति में व्याप्त होकर सावयव को क्रियाशील बनाये हुए है। अत्यन्त सूक्ष्म रूप में वह क्रिया हो रही थी, जो उसे संसार के सृजन योग्य बनाने में बल शक्ति पराक्रम पैदा करके युवती सी बना रही थी, ताकि जगत् को उत्पन्न करने में पूर्णतया समर्थ हो।

तब इस प्रकृति देवी ने शब्द और प्राण को स्थूल रूप दिया, ज्ञान और कर्म के रूप में। यहां हमने गति की संज्ञा प्राण रक्खी है। जैसे मनुष्य शरीर में प्राण गति का हेतु बना हुआ है, इसी प्रकार मूल प्रकृति में गति रूप प्राण भी क्रिया का हेतु बना हुआ है। प्रलय काल की अवस्था में सूक्ष्म रूप में काल दिशा आकाश भी वर्तमान थे, क्योंकि ये जो सूक्ष्म रूप में साम्यावस्था में कम्पन सर्व प्रकृति में ब्रह्म के सन्निधान से हो रहे थे। उन कम्पनों में सूक्ष्म से सूक्ष्म, कम से कम, अवकाश तो बीच में उत्पन्न होता ही था। और वे कम्पन दिशा और काल की अपेक्षा करते ही थे। जैसे सूक्ष्म शब्द और प्राण गति का हेतु हैं, यह भी दिशा काल आकाश की अपेक्षा रखते हैं। प्रलय काल की अवस्था में ये पांच शब्द-प्राण-आकाश-दिशा-काल सूक्ष्म रूप में कार्य कर रहे थे। यह प्रकृति की पूर्ण रूप में शयन अथवा विश्राम अवस्था थी। जैसे दिन भर के कार्य से थका हुआ पुरुष रात्रि को सोकर स्वस्थ और प्रसन्न-चित्त उठता है और सर्व कार्य करने में समर्थ हो जाता है, इसी प्रकार यह प्रकृति देवी प्रलय काल की अवस्था में पूर्ण स्वस्थ और युवती सी होकर उठती है और संसार के सृजन करने योग्य होकर सृष्टि की रचना प्रारंभ करती है। प्रलय काल की अवस्था में शब्द प्राण आकाश दिशा काल ये कार्य रूप में परिणत होकर स्थूल भाव को प्राप्त होते हैं। इन पांचों को पृथक्-पृथक् करने में या परिणत होने में एक और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवस्था इनके एक-एक क्षण में ठहरने की आती है। उसका नाम स्थिति या स्तंभन है। तब ये ६ अवस्थायें या ६ पदार्थ अथवा प्रकृति के ६ परिणामात्मक कार्य होते हैं। ये ६ संघात भाव को प्राप्त होकर संसार का सृजन करने चलते हैं। इनका कारण रूप प्रकृति भी सूक्ष्म रूप में साथ में रहती है। यह प्रकृति माता के रूप में, ब्रह्म पिता के रूप में, ये ८ पदार्थ हो जाते हैं। इनके नाम (१) ब्रह्म (२) प्रकृति (३) शब्द (४) प्राण (५) आकाश (६) दिशा (७) काल (८) स्थिति या बल हैं।

प्रलय काल की अवस्था में ये ८ पदार्थ मिलकर कर्मशील बने हुए थे। अत्यन्त सूक्ष्म रूप में इनके द्वारा प्रलय काल में बल-शक्ति-पराक्रम सृजन की योग्यता प्राप्त हो रही थी। वे अत्यन्त सूक्ष्म और अव्यक्त रूप में थे। अब आगे की सृष्टि निमित्त कारण में भगवान् और उपादान कारण में ७ पदार्थ संघात भाव को प्राप्त होकर स्थूल सृष्टि का सृजन करते हैं। स्थूल समष्टि के पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। उपर्युक्त समष्टि पदार्थों ने मिलकर प्रकृति के महान् पदार्थ को उत्पन्न किया। यह महान् त्रिगुणात्मक-सत्व-रज-तम रूप में उत्पन्न हुआ। अथवा सत्व महत्, रजःमहत्, तमःमहत् या महान् सत्व, त्रिगुणात्मक महान् रजः, महान् तमःनाम से प्रकट हुए।

मूल प्रकृति की साम्य-अवस्था में शब्द-प्राण-स्थिति या ज्ञान-क्रिया-बल ये तीन थे। इन्होंने मिलकर या संघात भाव को प्राप्त होकर और अपने साथ आकाश-दिशा-काल को लेकर, साथ में मूल प्रकृति और ब्रह्म मिलकर, फिर इन्होंने ३ पदार्थों को समष्टि और स्थूल रूप में उत्पन्न किया। वे पदार्थ जो परिणामात्मक थे अब वे ३ बन गये। महत्

चित्र संख्या १—इस चित्र में प्रलय काल की अवस्था में जो प्रकृति में कर्म और ज्ञान वर्तमान थे उनका दूसरा नाम है शब्द और प्राण। शब्द ज्ञान के रूप में और क्रिया कर्म के रूप में आप प्राण को समझें। ये दोनों प्रकृति की पूर्व कल्प की जीर्णता को अर्थात् पुराणता को नवीनता में लाने के लिए और प्रकृति को युवती सी बनाने के लिए थे, ताकि वह संसार को सृजन करने में समर्थ हो सके और जगत् की परम्परा को चलाकर सर्व प्राणियों को भोग प्रदान करने में समर्थ हो सके। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए शब्द और प्राण, ज्ञान और कर्म के रूप में, प्रयत्नशील थे। कई अरब वर्ष तक ये प्रयत्नशील रहे। ज्ञान प्रकृति की साम्य-अवस्था में, जो कि निद्रा के समान थी, इस भगवती वसुन्धरा को जगाने में परम उपकारक या साधन बना। एवं प्राण या कर्म सोकर उठने और संसार को उत्पन्न करने में प्रवृत्त करने में परम सहायक हुआ। ये दो प्रधान गुण (या पदार्थ भी कह सकते हैं) प्रकृति देवी के मस्तिष्क, हृदय और शरीर के रूप में संसार के प्रति महान् उपकारक बने, कर्म और ज्ञान के रूप में शब्द (ज्ञान) कर्म (गति-क्रिया) के रूप में कार्य करने में समर्थ हुए। यही शब्द और प्राण की विशेषता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

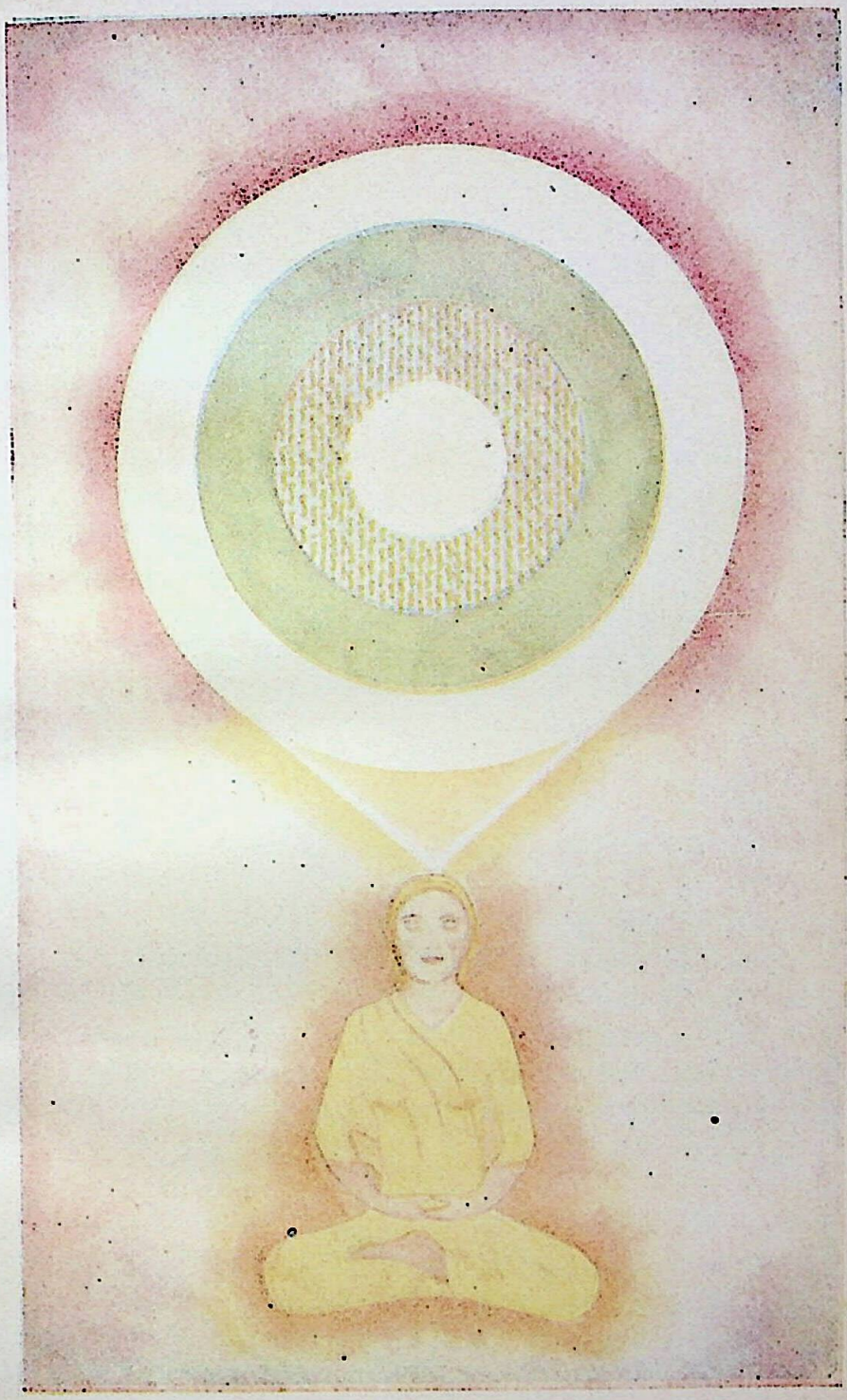

चित्र संख्या १

प्रलय काल की साम्य-अवस्था में शब्द और प्राण से ज्ञान और कर्म की उत्पत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्व, महत् रज, महत् तम, ये भी पुनः त्रित्व भाव को प्राप्त होकर सात्विक राजस तामस भेद से ९ प्रकार के हो जाते हैं।

यदि योगी इन पदार्थों की प्रत्येक अवस्था को अपनी समाधि का विषय बनाकर इनका तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करे तो सर्वद्रष्टा महान् योगी और सर्वज्ञ के समान हो जाता है वह 'क्षीणे पापे स्वर्गलोके वसन्ति' हो जाता है। यह ब्राह्मी सृष्टि चल रही है; इससे आगे जो भी पदार्थों की उत्पत्ति होगी वह त्रिगुणात्मक होगी, सात्विक राजस तामस भेद से चलेगी।

समष्टि सत्व महत् या समष्टि महत् सत्व, जो एक प्रकार से क्रमपूर्वक शब्द का ही परिणाम होकर ज्ञान के रूप में आया है, समष्टि चित्त को उत्पन्न करेगा या करता है। वह भी ज्ञान के रूप में ही है या होता है। जो महत् रज था इसने समष्टि बुद्धि को उत्पन्न किया। इसमें कुछ रजोगुण की प्रधानता थी, भले ही यह ज्ञानात्मक था। तत्पश्चात् महत्तम का प्रादुर्भाव हुआ। इसके द्वारा ही समष्टि अहंकार की उत्पत्ति हुई, जो अन्तिम शब्द का ही परिणामात्मक है। यह ६ प्रकार के समष्टि पदार्थ वास्तव में प्रकृतेर महान् के ही कार्यात्मक परिणाम हैं। यहां पहुंचकर समष्टि पदार्थों की ब्राह्मी सृष्टि समाप्त हो जाती है।

प्रकृति और ब्रह्म ने मिलकर यहां तक १२ समष्टि पदार्थों को उत्पन्न किया। ये प्रकृति के १२ कार्य समष्टि रूप में हैं, सम्पूर्ण संसार को मिलकर निर्माण करेंगे, सब का उपादान कारण भिन्न-भिन्न रूप में बनेंगे। बस, यहां तक ही यह ब्राह्मी सृष्टि चलती है इसके आगे ये १२ पदार्थ व्यष्टि पदार्थों को उत्पन्न करेंगे, जो कि जैवी सृष्टि का रूप धारण करेंगे। जीवात्माओं के भोग और अपवर्ग का साधन बनेंगे। ये बारह समष्टि प्रकृति की विकृति परिणामात्मक अवस्थाएं हैं। इनका सम्बन्ध केवल ब्रह्म और प्रकृति से ही रहता है। ब्रह्म निमित्त कारण और प्रकृति उपादान कारण सन्निधान मात्र से होते हैं। अब इसके उपरान्त ये बारह पदार्थ अनन्त व्यष्टि पदार्थों की रचना करेंगे। ये अनन्त पदार्थ जीवात्माओं के भोग और अपवर्ग का साधन बनेंगे। इसके आगे जैवी सृष्टि का निर्माण होगा और वह अनन्त रूप में होगा।

यहां तक इस ब्रह्म सृष्टि को पहुंचने में करोड़ों वर्ष लग जाते हैं क्योंकि यह सृष्टि सूक्ष्म गैसों के रूप में ही होती है। इसे सूक्ष्म जगत् को और कारण तथा सूक्ष्म शरीरों को उत्पन्न करना है। ये बारह पदार्थ एक प्रकार से अत्यन्त सूक्ष्म लोक हैं। इन से गुजर कर आत्मा को ब्रह्म के समीप पहुंचना होता है जब योगी समष्टि ब्रह्म को विज्ञान का विषय बनाता है तो क्रमपूर्वक इनके विज्ञान को करता हुआ इनमें से प्रवेश करके निकलता है ये भी एक प्रकार से ब्रह्म के ऊपर बारह आवरण हैं, एक से एक सूक्ष्म हैं। इनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विज्ञान भी बड़ा गहन और दुस्तर होता है। इनमें पहुंचकर योगी में समष्टि भाव पैदा होता है। व्यष्टि की कोई हस्ती नहीं रहती है। इन में से गुजरते हुए सर्वत्र ब्रह्म की भावना होती चली जाती है और योगी एक प्रकार से सर्वज्ञ के समान हो जाता है और व्यष्टि भाव भी समाप्त हो जाता है।

जैवी सृष्टि की उत्पत्ति और समष्टि पदार्थों से व्यष्टि पदार्थों का प्रादुर्भाव

समष्टि पदार्थों में सर्वप्रथम जो शब्द की सन्तति चली आ रही थी और अब समष्टि चित्त में पहुंच कर ठहर गयी थी, इस समष्टि चित्त से अनन्त व्यष्टि चित्तों का प्रादुर्भाव हुआ। ये व्यष्टि चित्त अनन्त आत्माओं के भोग का कारण बनेंगे। इनसे पहले एक ही सर्वव्यापक आत्मा था जिसको परमात्मा या ब्रह्म कहते हैं जब अनन्त व्यष्टि चित्तों का प्रादुर्भाव हुआ तो एक-एक चित्त ने सर्वव्यापक आत्मा के जिस देश को ग्रहण किया उस देश की चित्त प्रदेश में जीवात्मा संज्ञा हो गयी या बन गयी। एक व्यष्टि चित्त के साथ एक व्यष्टि आत्मा का सम्बन्ध हो गया, जब व्यष्टि चित्त के साथ सर्वात्मा की जीवात्मा संज्ञा हो गयी तथा यहां से जीवात्मा के कारण शरीर का प्रारंभ हुआ। इस व्यष्टि चित्त के देश में सर्वव्यापक आत्मा की भी व्यष्टि आत्मा संज्ञा हो गयी, चित्त की तरह परिणित होकर नहीं हुई किन्तु व्यष्टि चित्त के देश में जितना सर्वव्यापक आत्मा आया उतने की ही व्यष्टि संज्ञा रख दी गयी।

जब व्यष्टि चित्त और आत्मा का सम्बन्ध हुआ तब इसके अर्थात् चित्त के अन्दर शब्द और प्राण की व्यष्टि रूप में उत्पत्ति या अभिव्यक्ति हुई। अब इसको जीवात्मा के नाम से पुकारा जायेगा और चित्त को कारण शरीर के नाम से कथन किया जायेगा। अहंकार की सृष्टि होकर इसके साथ व्यष्टि अहंकार का सम्बन्ध होकर पूर्ण रूप में कारण शरीर बनेगा, तब बन्ध और मोक्ष का कारण भी यह होगा। अब तक समष्टि चित्त क्योंकि अपने कार्य व्यष्टि चित्त के साथ में रहता है, अब तक जीव-आत्मा चित्त और शब्द तथा प्राण ये ही कारण शरीर के पदार्थ हैं। इनमें ब्रह्म के प्रति अस्ति शब्द का प्रयोग तो हो सकता है परन्तु बिना अहंकार के 'अहमस्मि' का प्रयोग या बोध नहीं हो सकता है। ज्ञान और कर्म का सदा सम्बन्ध होता है। ज्ञान रूप चित्त और कर्म रूप अहंकार है। बहुत काल तक बिना अहंकार के चित्त और आत्मा बने रहते हैं क्योंकि जब तक महत् रजः की सृष्टि नहीं होती तब तक अहंकारी सृष्टि भी उत्पन्न नहीं होती है और एक प्रकार से जीवात्मा के भोग और कर्म भी प्रारंभ नहीं होते, क्योंकि इसके सहयोगी अहंकार का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है।

इसके पश्चात् समष्टि बुद्धि से अनेक व्यष्टि बुद्धियों की उत्पत्ति हुई जो कि त्रिगुणात्मक ही हुई। अर्थात् सात्विक राजस तामस भेद से उत्पन्न हुई। इसके आगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुद्धियों की सृष्टि नहीं चली, जैसे अन्य पदार्थों की उत्पत्ति होती है, किन्तु वृत्तियों के रूप में प्रादुर्भाव होने की योग्यता रही और किसी विशेष पदार्थ को उत्पन्न नहीं किया। पदार्थों के रूप में तो सन्तति नहीं चली किन्तु ज्ञान रूप में सन्तति चलती रही। यहां पहुंचकर इसकी भी सृष्टि पदार्थों के रूप में न चल सकी किन्तु ज्ञान रूप में विकास होता रहा। इसी प्रकार चित्त की सृष्टि भी पदार्थ रूप में नहीं चली किन्तु वृत्ति या ज्ञान के रूप में विकास होता रहा। इसके आगे चित्त और बुद्धि का कार्यात्मक पदार्थ देखने में नहीं आया। इन दोनों की सृष्टि यहीं समाप्त हो गयी, व्यष्टि बुद्धि और व्यष्टि चित्तों में। किन्तु इनके पश्चात् अहंकारी सृष्टि चली क्योंकि यह तमःप्रधान थी। इसकी सृष्टि का ही विस्तार देखने में आया है और आ रहा है। वैसे देखा जाये और विचार किया जाये तो बुद्धि और चित्त के विज्ञान का बड़ा विस्तार हुआ है। इनके विज्ञान ने सम्पूर्ण जगत् का अपने अन्दर धारण कर लिया है या किया हुआ है।

आहंकारी सृष्टि का प्रादुर्भाव

जब व्यष्टि पदार्थों की उत्पत्ति होने लगी तब इनमें त्रिगुणात्मक भाव अर्थात् सत्व रज और तम आना ही था, क्योंकि इनके उपादान कारण पहले त्रित्व भाव को प्राप्त हो चुके थे। अतः इन कार्यों में भी त्रित्व भाव आना चाहिये। अब आहंकारी सृष्टि भी त्रिगुणात्मक चलेगी। जब समष्टि अहंकार से सृष्टि प्रारंभ हुई, तब प्रधान रूप में समष्टि अहंकार और गौण रूप से सत्व रज भी सहकारी बने, क्योंकि अकेला अहंकार सृजन करने में असमर्थ था। अतः ये तीनों मिलकर सृष्टि उत्पन्न करेंगे। सर्व पदार्थों में त्रिगुणात्मक धर्म उत्पन्न होते रहेंगे।

शंका—क्या इन पदार्थों के सृजन काल में सम्पूर्ण पदार्थों से ही पदार्थों की उत्पत्ति होती है, अथवा पदार्थ के एक देश से पदार्थ की उत्पत्ति होती है ?

समाधान—उदाहरण से समझें। जैसे हमने एक भवन बनाना है, या एक ग्राम अथवा नगर बनाना है। इनमें सम्पूर्ण पृथिवी या जल तो मिलकर निर्माण नहीं करने लगते। इन दोनों के कुछ अंश ही मिलकर पदार्थ या भवन बनाते हैं। इसी प्रकार अहंकार भी सम्पूर्ण मिलकर पदार्थों को उत्पन्न नहीं करेगा। उसका शेष भाग कारण रूप में रहना चाहिये। इसी प्रकार समष्टि बुद्धि और समष्टि चित्त के भाग भी शेष रहे थे। चित्त और बुद्धियों को निर्माण करके वे भाग अब अहंकार की सृष्टि के निर्माण में सहकारी उपादान बनकर अहंकार की सृष्टि का निर्माण करने में लगेंगे। अतः यहां भी अहंकार का कुछ सात्विक भाग प्रस्तुत होकर महत् रज और महत् तम व्यष्टि अहंकारों को सर्वप्रथम उत्पन्न करेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समष्टि अहंकार से व्यष्टि अहंकारों का प्रादुर्भाव सात्विक राजस तामस भेद से हुआ। और यह असंख्यों के रूप में हुआ क्योंकि संसार में इसे अनेक प्राणियों ने ग्रहण करना है, भोग लेने और देने के लिए, बन्ध और मोक्ष प्राप्त करने के लिए। सर्वप्रथम इस व्यष्टि अहंकार को कारण शरीरों ने धारण कर लिया। मनुष्यों व सत्वप्रधान पशुओं ने रजःप्रधान अन्य जन्तुओं ने तमःप्रधान को धारण कर लिया। यहां से आत्मा के भोग प्रारंभ हो गये।

शंका—यह जो आप समष्टि पदार्थों के रिजर्व की बात लिख रहे हैं, क्या इनसे पुनः सूक्ष्म और कारण शरीरों का निर्माण होता है ?

समाधान—आदि सृष्टि के सृजन काल में जो एक बार कारण और सूक्ष्म शरीरों का निर्माण हो चुका है, वह तो जब तक सूक्ष्म या कारण जगत् की प्रलय नहीं होगी तब तक ये सूक्ष्म और कारण शरीर बने ही रहेंगे। प्रलय काल के समय में ही ये अपने उपादान कारण में विलीन होंगे। जब तक प्रलय नहीं होती तब तक ये बने रहेंगे। और यह जो स्थूल शरीर है, जब तक इसका मोक्ष नहीं होता है तब तक भोगों की वासना बनी रहती है। और यह पुनः-पुनः जन्म-मरण के चक्र में आता और जाता रहता है, क्योंकि इसके उपादान कारण व माता-पिता पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश वर्तमान हैं। इनकी प्रलय होने पर स्थूल शरीर भी जन्म लेना छोड़ देगा।

अब रही समष्टि पदार्थों के रिजर्व में रहने की बात। क्योंकि समष्टि पदार्थों की कोई सीमा नहीं है कि ये कितने बड़े हैं और कहां तक फैले हुए हैं, इन के कुछ अंश ही पदार्थों या संसार का सृजन करते रहते हैं। असंख्य व्यष्टि अहंकारों के उत्पन्न होने के पश्चात् इस समष्टि अहंकार की जो सात्विक राजस तामस अवस्थाएं हुईं, उनसे क्रमपूर्वक अहंकारी सृष्टि का सृजन होने लगा।

सत्वप्रधान अहंकार और रजःप्रधान अहंकार दोनों के समान भाव में रहकर मन, अनेक मनों की उत्पत्ति की, और केवल सत्वप्रधान अहंकार ने ज्ञानेन्द्रियों का निर्माण किया। रजः और तमः अहंकार गौण रूप में सहकारी बने। इसके अनन्तर रजःप्रधान अहंकार ने कर्मेन्द्रियों को उत्पन्न किया, सत्व और तमः अहंकार गौण रूप में सहकारी उपादान कारण बने। इसके पश्चात् तमःप्रधान अहंकार और सत्व तथा रज ने गौण रूप से मिलकर पंचतन्मात्राओं को उत्पन्न किया। इस प्रकार यह अहंकारी सृष्टि उत्पन्न हुई। इन्द्रियों, मन, बुद्धि का संघात होकर पंचतन्मात्राओं ने सूक्ष्म शरीर निर्माण किया।

शंका—केवल मन को ही दो प्रकार के समान अहंकारों ने क्यों उत्पन्न किया ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान—मन क्योंकि उभयात्मक उत्पन्न हुआ है, इसने ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का संचालन करना है, अतः इसमें ज्ञान और कर्म दोनों की समानता होती है। भविष्य में ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का संचालन, नियोजन, आदान और प्रदान रूप कर्म मन ही करेगा।

इस आहंकारी सृष्टि के उत्पन्न होने पर कारण शरीर को उपयोगी व्यष्टि अहंकार, जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ था, वह कारण शरीर में चित्त के साथ सम्मिलित हुआ, क्योंकि इसने चित्त के साथ मिलकर अहमस्मि या ममेदम् की भावना कारण शरीर में करनी है। इसके द्वारा अहमस्मि से आत्मा के स्वरूप का बोध होगा, और ममेदम् से आत्मा के लिए बन्ध का हेतु होगा। इसमें चित्त की अपेक्षा कर्म की प्रधानता है। कर्मात्मक अहंकार और ज्ञानात्मक चित्त दोनों मिल कर आत्मा के लिए भोग सम्पादन करने में सदा तत्पर बने रहेंगे। जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं होगा, यह अहंकार कारण शरीर का अभिन्न अङ्ग बना रहेगा और आत्मा के भेद को दर्शाता रहेगा और परमात्मा से आत्मा को सदा पृथक प्रकट करता रहेगा। कर्मप्रधान होने से कर्मात्मक कार्य सदा करता-कराता रहेगा। आत्मा के अस्तित्व को भी बनाये रखेगा। जब तक यह चित्त के साथ रहेगा तब तक चित्त में कर्म और ज्ञान की प्रधानता बनी रहेगी। समय-समय पर आत्मा के स्वरूप का भी बोध करता रहेगा। आत्मा के निष्क्रिय होते हुए भी जन्म-मरण का गमनागमन इसमें बनाये रखेगा।

इसमें सांख्य दर्शन का प्रमाण है—'गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ।' सां० द०, प्र० अ० १, सू० ५०। आत्मा में जो गति प्रतिपादन श्रुति आदि करती है वह अहंकार और चित्त की उपाधि से कथन करते हैं, वरना आत्मा तो निष्क्रिय है। तथा—सांख्य सूत्र च 'न गतिविशेषात्, निष्क्रियस्य तदसम्भवात्' सा० द० अ० १, सू० ४८-४९। तथा च सांख्य सूत्र—'तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वम् मणिवत्' । सां० द०, अ० १, सूत्र ९६। चित्त के सन्निधान से आत्मा में अधिष्ठातृत्व धर्म आ जाता है आरोप मात्र में। बिल्लोर की मणि के पास जिस रङ्ग का फूल रख दो वह उसी रङ्ग की भासने लगती है। यही स्थिति यहां आत्मा की भी देखने में आती है। निर्लेप और असङ्ग होते हुए भी संग दोष का प्रभाव पड़ जाता है। अन्य सूत्र में भी यहां दर्शनकार ने विशेष रूप से वर्णन किया है—'अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ।' आत्मा अन्तःकरण के संग से, जैसे अग्नि में पड़कर लोहा भी अग्नि के अङ्गार की तरह प्रज्वलित हो जाता है, अग्निवत् तपायमान हो जाता है, इसी प्रकार आत्मा भी चित्तादि के साथ मिलकर तपायमान हो जाता है।

शंका—इस अहंकार की आत्मा या चित्त के साथ आवश्यकता क्या है ?

समाधान—आत्मा के स्वरूप का बोध कराने के लिए इसके द्वारा 'अहमस्मि' 'मैं हूं' इस प्रकार से अपने स्वरूप का ज्ञान होता है। यदि यह अहंकार न हो तो आप को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वरूप की सत्ता कौन बतायेगा ? चित्त तो केवल अस्ति के स्वरूप में ही ज्ञान का हेतु होता है। और यह अस्ति क्रिया पर-स्वरूप की ही द्योतक हो सकती है। अपने स्वरूप के ज्ञान के लिए तो अस्मि क्रिया ज्ञान का हेतु बनेगी। अस्मि क्रिया प्रत्यक्ष स्वरूप का बोध कराती है, और अस्ति क्रिया परोक्ष वस्तु का संकेत करती है या परोक्ष पदार्थ की द्योतक होती है। इस शब्द से परोक्ष पदार्थ का ही भान होता है, दूर देश में या परोक्ष में ही अर्थ का बोध होता है।

आत्मा का अत्यन्त समीप में या प्रत्यक्ष प्रकट करने में अहम् से बढ़कर और कोई वस्तु या पदार्थ अथवा साधन नहीं है। इसीलिए कारण शरीर में अहंकार से बढ़ कर और तीसरा पदार्थ नहीं है। अतः अहंकार की आवश्यकता कर्मप्रधान होने से चित्त के साथ या कारण शरीर में थी, क्योंकि ज्ञान और कर्म का सदा सम्बन्ध रहता है। आत्मा केवल चित्त से एक पैर के लंगड़े व्यक्ति की तरह होता है। अहंकार एक प्रकार से दूसरा चरण है। दो पैरों से ही सफर ठीक होता है।

इस विषय में उपनिषद् प्रमाण है—'चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्। यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम्। चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्। प्रसन्नात्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते। समासक्तं यदा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरम्। यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्यतें बन्धनात्। हृत्पुण्डरीकमध्ये तु भावयेत् परमेश्वरम्। साक्षिणं बुद्धिवृत्तस्य परमप्रेमगोचरम्'। मैत्रेय्युपनिषद्, अ० १, मं० ५-६-७। भावार्थ—संसार में रहकर चित्त को प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करना चाहिये। चित्त में तन्मय होकर या जो चित्त तन्मय होकर सनातन गुह्य ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, चित्त ही प्रसाद, प्रसन्न या शान्त होने पर शुभाशुभ कर्मों का नाश करता है, वह प्रसन्नचित्त आत्मा में स्थित होकर नाशरहित सुख का उपभोग करता है। जिस प्रकार सांसारिक विषयों में चित्त आसक्त होता है, यदि उसी प्रकार ब्रह्म में चित्त की आसक्ति हो जाये, तो ऐसा कौन है जो संसार के बन्धन से मुक्त न हो जायेगा। परम प्रेमगोचर ब्रह्म का हृदय कमल में ध्यान करे और बुद्धि से उसका साक्षात्कार करे।

प्रसंग चल रहा था कारण शरीर में अहंकार और चित्त के सम्बन्ध का। इस कारण शरीर की सृष्टि में कारण शरीर में इतने पदार्थ वर्तमान रहते हैं। समष्टि चित्त व्यष्टि चित्त का उपादान कारण होने से कार्य के साथ ही रहता है। (१) समष्टि चित्त, (२) व्यष्टि चित्त, (३) अहंकार, (४) आत्मा, (५) परमात्मा, (६) शब्द, (७) प्राण—इन पदार्थों का संघात ही कारण शरीर कहलाता है। वास्तव में पदार्थ ६ ही हैं, आत्मा और परमात्मा का अभेद होने से अहंकार ही भेद का कारण बना रहता है, वरन् आत्मा परमात्मा का अभेद ही है। जब आत्म ज्ञान या बोध हो जाता है तब आत्मा और परमात्मा के भेद की निवृत्ति हो जाती है। क्योंकि चित्त की उत्पत्ति से पूर्व जीवात्मा का कोई अस्तित्व ही नहीं था। वास्तव में कारण शरीर में ६ पदार्थ ही हैं। जब तक भ्रान्ति की निवृत्ति नहीं होती तब तक जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ बोध या

RajGuru Math, Shivala, Varahasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साक्षात्कार नहीं होता। इस महत्तत्त्व के लोक में ही कारणशरीर द्वारा आत्मा के आनन्द का उपभोग होता है। क्योंकि अब तक सूक्ष्म शरीर का निर्माण नहीं हुआ था, केवल उसके बुद्धि, मन और ज्ञानेन्द्रियों का ही निर्माण हुआ था। जब तक तन्मात्रा संघात भाव को प्राप्त होकर सूक्ष्म शरीरों की रचना नहीं करती तब तक इस महत्तत्त्व के लोक में कारण-शरीर के द्वारा अपने स्वरूप और परमात्मा के आनन्द का ही भोग होता है।

इस सृष्टि से पहले जो सृष्टि थी जब वह प्रलय काल में प्रवेश करने लगी तो इस महत्तत्त्व के लोक से ही .कारणशरीर ने अपने उपादान कारण में प्रवेश किया था। उस समय चित्त इस वर्तमान जैसी अवस्था को छोड़कर अपने कारण समष्टि चित्त में विलीन हुआ था जो समष्टि चित्त का उपादान कारण महत्-सत्त्व था। क्योंकि यह कारण शरीर भी जीर्ण-शीर्ण हो गया था और इसके सब पदार्थ अपने उपादान कारणों में क्रमपूर्वक लीन होते जा रहे थे। उस समय सब कार्यात्मक पदार्थों का ऊपर के अपने कारणों में प्रवेश हो रहा था। और अब नीचे की सृष्टि में अवतरण का समय आया हुआ है।

व्यष्टि चित्त, जो सात्विक उत्पन्न हुए थे वह, मनुष्यों के कारण शरीर में प्रविष्ट हुए, और जो रजःप्रधान चित्त थे वह पशु-पक्षियों के शरीरों में प्रविष्ट हुए, और जो तमः प्रधान चित्त थे वह जलचर, समुद्र, नदी, तालाब, कूप, भूमि आदि में रहने वाले, जन्तुओं के शरीरों में प्रविष्ट हुए।

व्यष्टि अहंकार भी सत्त्वप्रधान मनुष्यों, देवों आदि के शरीरों में प्रवेश कर गये। रजःप्रधान पशु-पक्षियों में और तमःप्रधान जलचरों में, भूमि में कीट पतङ्ग आदि में प्रविष्ट हुए। चित्त और अहंकार सर्व प्राणियों के भोगों के साधन बने, कर्म और ज्ञान के हेतु बने। चित्त और अहंकार का गमनागमन उपर्युक्त प्राणियों की सृष्टि के साथ होता रहता है। यह कारण शरीर की सृष्टि अरबों वर्षों तक बनती रही या बनी रही।

शंका-- मनुष्यों की सृष्टि के कारण शरीर की तो बात समझ में आती है, कि ये इस कारण शरीर के लोक में कारण शरीर द्वारा ब्रह्मानन्द का भोग करते हैं प्रलय से आते हैं और प्रलय में लौट जाते हैं, परन्तु दूसरे जो प्राणी हैं उनकी इस लोक में क्या गति होती है?

समाधान-- कारण शरीरों के लोक में गमनागमन तो दूसरे प्राणियों के शरीरों का भी होता है परन्तु ये तो हैं ही भोग योनियां। इनको कारण जगत् के लोक में किसी भी भोग की प्राप्ति नहीं होती है, क्योंकि वहां इन्द्रियों के भोग तो हैं नहीं, केवल तत्त्वज्ञानियों के चित्त में ब्रह्मानन्द का भोग होता है, इतर प्राणियों के चित्त में नहीं। क्योंकि इनका चित्त तो इतना ज्ञानवान् या सात्विक नहीं होता जो ये ब्रह्मानन्द का भोग कर सकें। मूर्च्छित सी अवस्था में इनके चित्त भी पड़े रहते हैं। परन्तु प्रलय से आने और प्रलय में जाने का मार्ग सर्व प्राणियों का वही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आनन्द के भोग की बात तो ब्रह्मज्ञानियों को होनी चाहिये। इसमें अथर्ववेद का प्रमाण है—'ऊर्ध्वो नु सृष्टस्तिर्यङ् नु सृष्टः सर्वदिशः पुरुष आ वभूव। पुरं यो ब्रह्मो वेद यस्य पुरुष उच्यते। यो वै तां ब्रह्मणो वेदाऽमृतेनावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मो वेद यस्य पुरुष उच्यते। अ० वेद०, सू० २, मं० २८-२९-३०, काण्ड १०। भाष्य—वह पुरुष (ऊर्ध्वः) द्युलोक में प्रकट हुआ था (तिर्यङ्) अन्तरिक्ष लोक में प्रकट हुआ (यः) जो विद्वान् ब्रह्मः) ब्रह्म की पुरी को जानता है, जिसके अन्दर रहने से वह आत्मा (पुरुषः) पुरुष (उच्यते) कहा जाता है (यः) जो विद्वान् (वै) निश्चय से (ब्रह्मणः) ब्रह्म की (अमृतेन) परम आनन्द रस से (आवृतां) घिरी हुई (ताम्) उस (पुरीम्) पुरी को (वेद) जान लेता है (तस्मै) उसे (ब्रह्म च) वह ब्रह्म और (ब्राह्मञ्च) उस ब्रह्म रूप शान्ति से उत्पन्न लोक को जानता है। उसे (चक्षुः) दिव्य ज्ञान या दिव्य लोक (प्राणम्) जीवनी शक्ति) (प्रजाम्) सत्य ज्ञान (ददुः) प्रदान करते हैं। प्रजा का अर्थ सन्तान भी होता है, परन्तु उस दिव्य लोक में सन्तान की जरूरत नहीं होती है। वह तो इसी लोक में प्राप्त होती है। यदि कोई बहुत ऊंचा ब्रह्मज्ञानी जनक की तरह हो और वह समाधि में बैठ कर महत्तत्त्व के लोक का या अवस्था का अभ्यास करे तो उसे भी ब्रह्मानन्द की बहुत काल तक जब तक वह समाधि में रहेगा, ब्रह्मानुभूति होती रहेगी।

आनन्द के भोग की बात कारण शरीर में चल रही थी। ब्रह्मज्ञानियों या मुक्तात्माओं को इस लोक में और ब्रह्म लोक में, इस लोक से नीचे उतर कर आहंकारी सृष्टि के लोक में उन मुक्त बद्ध आत्माओं को आना होता है। यहां पर सब को सूक्ष्म शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि प्राप्त होते हैं। तब सूक्ष्म शरीरों को पंचतन्मात्राओं के भोग प्रारम्भ होते हैं। यहां से इन्द्रियों के भोगों की सृष्टि चलती है।

शंका—इस आहंकारी सृष्टि को नियोजित कौन करता है? क्योंकि भगवान् तो निष्क्रिय है, वह तो आपके सिद्धान्त में कुछ करता नहीं है।

समाधान—परमात्मा की व्याप्ति तो आप सर्वत्र मानते ही हैं। सर्वव्यापक को कर्तृत्व धर्म या गुण की आवश्यकता नहीं होती। ये गुण या धर्म एकदेशी या एक स्थान में रहनें वाले के लिए होते हैं। उसके सर्वत्र व्याप्त रहने से प्रकृति और उसके कार्यों में स्वाभाविक ज्ञान बल क्रिया बने रहेंगे। अतः ब्रह्म में कर्तृत्व धर्म की आवश्यकता नहीं है। सर्वव्यापक के संयोग या सन्निधान से प्रकृति और उसके कार्यों में कर्म और ज्ञान बने रहेंगे। वह स्वयं ही संसार और उसके पदार्थों का निर्माण करती रहेगी, चेतनवत् सी बनकर। परमात्मा सदा निर्लेप बना रहेगा और सन्निधान मात्र से निमित्त कारण बना रहेगा। प्रकृति उपादान बन कर कार्यों या पदार्थों का निर्माण करती रहेगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक बात और आपको हम अवगत कराना चाहते हैं। मन और इन्द्रियों का भी समष्टि पदार्थों के रूप में 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ में वर्णन किया गया है, क्योंकि वहां प्रकृति की ३२ अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, समष्टि रूप में ब्रह्म के साथ इन ३२ अवस्थाओं का सम्बन्ध दिखाया गया है और व्यष्टि पदार्थों का जीवात्मा के साथ संयोग सम्बन्ध दिखाया गया है।

परन्तु इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रंन्थ में व्यष्टि पदार्थों का सम्बन्ध जीवात्मा के साथ दिखाया है। अतः हमने इसके लिए बहुत से पदार्थों का सम्बन्ध जीवात्मा और इसके शरीरों के साथ दिखाया है। केवल १२ पदार्थों का, जो समष्टि हैं उन की रचना का सम्बन्ध ब्रह्म के साथ वर्णन किया है। मन, इन्द्रियां उत्पन्न होकर स्वयं ही व्यष्टि भाव को प्राप्त हो गयी हैं। अब आगे इन व्यष्टियों से व्यष्टियों की उत्पत्ति नहीं होगी। इनकी रचना यहीं समाप्त हो गयी। आगे और कोई सन्तति इनकी नहीं चली है।

किन्तु पचतन्मात्रा समष्टि रूप में ही उत्पन्न हुई हैं, क्योंकि इन्होंने आगे संसार अर्थात् स्थूल जगत् की रचना भी करनी होगी। ये आगे जगत् का उपादान कारण बनकर जगत् की रचना करेंगी। आगामी सृष्टि इन्हीं के द्वारा चलेगी। ये पंचतन्मात्रा सूक्ष्म शरीर की भी रचना करती हैं।

आहंकारी सृष्टि में पंच तन्मात्राओं से सूक्ष्म शरीर का निर्माण

कारण शरीर की सृष्टि के पश्चात् कई अरब वर्षों तक सत्व रज तम अहंकार के द्वारा व्यष्टि अहंकार व्यष्टि मन और व्यष्टि पांच ज्ञानेन्द्रियां और व्यष्टि पांच कर्मेन्द्रियां स्वाभाविक क्रमपूर्वक उत्पन्न हो चुकी थीं।

व्यष्टि बुद्धियें, जो कि सूक्ष्म शरीर में मिलकर ज्ञान कर्म भोग का हेतु बनी हैं, वे कारण शरीर की सृष्टि में समष्टि बुद्धि से उत्पन्न होकर एक प्रकार से सूक्ष्म शरीर की रचना की प्रतीक्षा में थीं। आहंकारिक सृष्टि के पदार्थ उत्पन्न होने के पश्चात् ये सब संघात भाव को प्राप्त हुए और पंचतन्मात्राओं के सूक्ष्म जगत् में पहले कल्प के समान (यथापूर्वमकल्पयत्) आकाश मण्डल में सूक्ष्म शरीरों का निर्माण हुआ, जो कि असंख्यों के रूप में था। ये शरीर उत्पन्न होकर आकाश मण्डल में विचरने लगे। इस सूक्ष्म जगत् की उत्पत्ति को भी कई अरब वर्ष लगे।

शंका—जब कई अरब वर्ष इस सूक्ष्म जगत् को उत्पन्न होने में लगे तो इसका क्रम किस प्रकार उत्पत्ति का हुआ ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान—वर्तमान समय के वैज्ञानिक तो अब यह सिद्ध कर रहे हैं कि इस वर्तमान जगत् को उत्पन्न हुए १५ अरब वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं। अभी तो यह शीतल भी नहीं हुआ है। कुछ वर्ष पूर्व एक गैस का बड़ा भारी मण्डल या गोला आकाश मण्डल में फटा था। इसे १५ अरब वर्ष से अधिक बने हो गये थे। अभी तो यह शीतल भी नहीं हुआ था, गैस के रूप में ही वर्तमान था। इससे पूर्व भी अनेक मण्डल बने होंगे। उनके समय का और शीतल होकर लोक नक्षत्र के रूप में बनने का कोई अनुमान ही नहीं कर सकता। यह जो गैस का मण्डल आकाश में फटा है, अमेरिका के वैज्ञानिकों ने इसे देखा है और उसका अखबारों में उल्लेख भी हुआ था। उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि इस सृष्टि को उत्पन्न हुए २०-२५ अरब वर्ष से भी अधिक होने चाहियें। वास्तव में इसकी उत्पत्ति के सब अनुमान ही लगा रहे हैं, किसी ने उत्पन्न होते देखा थोड़े ही है कि कब उत्पन्न हुई थी। पहले ज्योतिषी इसका १२ अरब वर्ष का गोल या सर्कल बताते थे। २ की उत्पत्ति २ का विनाश और ४ की प्रलय ४ की सृष्टि बने रहना। कुछ वर्ष हुए, अमेरिका के वैज्ञानिक चन्द्रमा पर गये थे। वहां के पत्थर लाये थे। उनका अनुसन्धान करके कहा था कि चन्द्रमा को बने ४ अरब वर्ष हो चुके हैं। इसके गोल के भी २० अरब वर्ष बनते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का सही अनुमान लगाना असंभव सा ही है। अमेरिका के वैज्ञानिकों के हिसाब से जो अब गैस का गोला या मण्डल फटा है, यदि अब तक सृष्टि उत्पन्न होने का आधा समय मान लें तो इसके हिसाब से सृष्टि के सर्कल या गोल का समय ९० अरब वर्ष हो जाता है। ३० अरब की सृष्टि, ३० अरब की प्रलय और १५ अरब में विनाश, १५ अरब में उत्पत्ति होगी।

विषय चल रहा था कि सूक्ष्म शरीरों के लिए पंचतन्मात्राओं का आकाश मण्डल भी भूमि के समान समझना चाहिये। सूक्ष्म शरीर हलके होने से आकाश में ही गमन करते हैं। आकाश में गन्ध तन्मात्राएं और रस तन्मात्राएं वर्तमान रहती हैं। जैसे स्थूल जगत् के उत्पन्न होने के पश्चात् भूमि अत्यन्त तरल, वर्षा ऋतु के समान होती है, आदि मानवी सृष्टि में उसे भूमि के गर्भ में सूक्ष्म शरीर प्रवेश करके, जो भूमि जल से तरल बनी हुई होती है उस में स्थूल शरीर धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार पंचतन्मात्रा के लोक या मण्डल में कारण शरीर प्रवेश करके बुद्धि, मन, इन्द्रियों एवं पंचतन्मात्राओं से वेष्टित होकर सूक्ष्म को धारण कर लेते हैं। जैसे इस लोक में स्थूल शरीर में प्रवेश करके सूक्ष्म शरीर की आकृति भी स्थूल शरीर के समान हो जाती है। हमने 'आत्म-विज्ञान' ग्रन्थ में तीनों शरीरों के क्रमपूर्वक चित्र दिये हैं। उसी प्रकार यहां भी पंच तन्मात्राओं के लोक या सूक्ष्म जगत् में भी समझ लेना चाहिये।

जब व्यष्टि चित्तों की उत्पत्ति होती है तब समष्टि चित्त ही उपादान कारण के रूप में अपने कार्य चित्त के साथ रहता है। एक प्रकार से यही कारण शरीर के रूप में कोश का काम देता है। व्यष्टि चित्त ज्यों-ज्यों सृष्टि के उत्पत्ति क्रम के साथ नीचे को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवतरित होता है, त्यों-त्यों अपने सहकारियों को साथ लेकर चलता है। जैसे प्रधान कर्म के साथ गौण कर्म भी भोग देने चलते हैं। जैसे बोते गेहूं हैं, उनके साथ प्याजी, बथुवा तथा अन्य छोटे-छोटे बीज भी उत्पन्न होकर फल देने लगते हैं। इसके लिए योगभाष्यकार व्यास ने 'प्रधानकर्माणिमवापगमनागवाः' कहा है। इस प्रदेश में जो सर्वव्यापक आत्मा, जिसे ईश्वर अथवा ब्रह्म कहते हैं, वह चित्त के प्रदेश में जीवात्म-भाव को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि चित्त का प्रदेश छोटा है, इस प्रदेश के चेतन की ही जीवात्मा-संज्ञा हो जाती है। या इसे जीवात्मा कहने या पुकारने लगते हैं।

इसमें अथर्ववेद का प्रमाण है—'वृहस्पतिर्मे आत्मा नृमणाः नाम हृद्यः'। अ० वेद, सू० १, (३) ६—मण्डल ५। अर्थ—(वृहस्पतिः) वाणी का रक्षक (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा (नृमणाः नाम) सर्व मनुष्य के अन्दर मनन करने वाला (हृद्यः) हृदय में विराजमान रहता है। इस सर्वव्यापक चेतन का एक देश चित्त में आत्म-संज्ञा या जीवात्मा नाम रख दिया है। जब सृष्टि उत्पत्ति नीचे को चलती है, तो चित्त भी नीचे को उतरता है। तब यह अपने सहकारी पदार्थों को साथ में लेकर चलता है। इस चित्त और सर्वव्यापक चेतन के संयोग से सर्वप्रथम शब्द की उत्पत्ति होती है, क्योंकि शब्द की उत्पत्ति का कारण संयोग ही होता है। यहां आत्मा चेतन और चित्त जड़ का संयोग है, अतः चित्त में सर्वप्रथम शब्द की उत्पत्ति होती है। जहां दो पदार्थों का संयोग होगा वहां सर्वप्रथम शब्द उत्पन्न होगा। और तत्पश्चात् गति रूप प्राण या प्राण रूप गति उत्पन्न होगी। वैसे तो जब दो पदार्थ चल कर संयुक्त होते हैं वहां गति ही पहले संयोग में कारण बनती है, शब्द को उत्पन्न करने में। कहीं शब्द गति को पैदा करता है और कहीं गति शब्द को उत्पन्न करती है।

यहां चित्त और आत्मा का संयोग अनित्य और सर्वप्रथम हुआ है। अतः इन दोनों का मिलन पहले शब्द को उत्पन्न करता है। अथवा चित्त में आत्मा के संयोग से जो सर्वप्रथम चीज उत्पन्न होती है वह शब्द और प्राण, तत्पश्चात् अन्य वृत्तियें उत्पन्न होती हैं। चित्त भी आकाश के समान आत्मा के लिए हैं और आत्मा से स्थूल है, अतः इस चित्त रूपी आकाश में शब्द रूपी गुण उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् चित्त में चलन रूप क्रिया उत्पन्न होती है।

चित्त नीचे उतरते हुए कर्मप्रधान रूप में अहंकार को पकड़ता है, या संयुक्त होता है। तब चित्त में अहंकार के द्वारा कर्म की प्रधानता आती है। इसको लेकर इसका अवतरण कारण शरीर के रूप में होकर, बुद्धि मन ज्ञान कर्मेन्द्रियों को वेष्टित कर पंचतन्मात्राओं से वेष्टित होता है। तब सूक्ष्म शरीर के अन्दर कारण शरीर का प्रवेश होता है और सूक्ष्म शरीर के रूप को धारण कर लेता है। तब इस सूक्ष्म शरीर में इन्द्रियों के भोग प्रारंभ होते हैं और मनुष्यों की आकृति में आ जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करोड़ों वर्षों तक इस सूक्ष्म शरीर में रहकर सूक्ष्म जगत् में पंच तन्मात्राओं का भोग करता रहता है, क्योंकि सृष्टि शनैः-शनैः उत्पन्न होती है और करोड़ों अरबों वर्ष लगते हैं। अतः तन्मात्राओं के लोक में रहकर भोग करता रहता है। इस लोक में आते हुए और जाते हुए कई अरब वर्ष लग जाते हैं। इस लोक में सूक्ष्म शरीरों का गमनागमन होता है।

शंका—क्या इस लोक में पहुंचकर मनुष्य को यह ज्ञान होता है कि मैं इस लोक में पहुँच गया हूं और अब इसके पश्चात् स्थूल जगत् में जाना होगा ?

समाधान—जब इस स्थूल जगत् से ऊपर जाने का योगी को ज्ञान होता है तो सूक्ष्म से स्थूल जगत् की ओर आने का भी तो ज्ञान होना चाहिये। यदि ज्ञान न हो तो मूर्छित सी अवस्था होगी और किसी अन्य को निमोजित करने वाला मानना होगा। वह परमात्मा या प्रकृति ही हो सकते हैं। जैसे निद्रा में सोकर समय पर मनुष्य स्वयं ही जाग उठता है, इस प्रकार भी गमन हो सकता है।

जब सूक्ष्म पंचतन्मात्राओं से सूक्ष्म शरीर बनना प्रारंभ होता है तब सूक्ष्म शब्द तन्मात्रा सर्वप्रथम सूक्ष्म शरीर की आरंभक होती है। शेष तन्मात्राएं इसकी सहयोगी बन कर सूक्ष्म शरीर की रचना करती हैं। सूक्ष्म शरीर में आकाश और इसके गुण या धर्म शब्द सम्पूर्ण शरीर को धारण करते हैं। शरीर में कोई भी स्थान या अवयव ऐसा नहीं है जहां जहां शब्द न हो रहे हों। स्थूल में स्थूल, सूक्ष्म में सूक्ष्म प्राण भी शब्दों को शरीर में वहन करता है। सूक्ष्म शब्द रूप आकाश अन्य भूतों को धारण करता है। इस शरीर की रचना में आकाश तन्मात्रा ने शब्दों के रूप में परिणत होकर जीवन के आधार सूक्ष्म प्राण को अवकाश प्रदान किया। शरीर में जितने भी अंग-प्रत्यंग, सूक्ष्म ग्रन्थियां, नस-नाड़ियां हैं, जो अत्यन्त ही सूक्ष्म हैं, सब को गति आकाश तन्मात्रा या शब्द तन्मात्रा ही प्रदान करते हैं।

सूक्ष्म शब्द तन्मात्रा, सूक्ष्म स्पर्श तन्मात्रा, सूक्ष्म रूप तन्मात्रा, सूक्ष्म रस तन्मात्रा, सूक्ष्म गन्ध तन्मात्रा संघात भाव को प्राप्त होकर सूक्ष्म शरीर और अन्य सूक्ष्म भोगात्मक पदार्थों का निर्माण करती हैं और भोग तथा मोक्ष का भी निर्माण या प्रदान करती हैं। इस सूक्ष्म शरीर का भोग सूक्ष्म जगत् में और इसके पश्चात् स्थूल जगत् में स्थूल शरीर के अन्दर रहकर सूक्ष्म शरीर भी भोग करता है। ये सूक्ष्म शरीर के भोग के दो स्थान या दो लोक हैं—सूक्ष्म और स्थूल। २५-३० अरब वर्ष तक भोग करता है।

वास्तव में कारण शरीर और स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर को भोग का समय अधिक मिलता है और प्रधान रूप में सूक्ष्म शरीर ही बन्ध या मोक्ष का, भोग और अपवर्ग का हेतु होता है। परन्तु प्रत्यक्ष भौतिकविज्ञानवादी इसकी सत्ता को स्वीकार नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हैं अर्थात् इसके अस्तित्व को नहीं मानते हैं। ये स्थूल भूतों से शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि की या अहंकार, चित्त की उत्पत्ति मानते हैं। पुनर्जन्म या सूक्ष्म शरीर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं।

परन्तु फिर भी वर्तमान काल में अधिक संख्या संसार में सूक्ष्म जगत् या स्वर्ग लोक को मानने वालों की है। ये कई अरब लोग जो मानते हैं, क्या ये सब लोग मूर्ख हैं? या भांग पीकर नशे में स्वीकार करते हैं? वे बुद्धिपूर्वक ही समझते और मानते हैं। यदि बहुमत से स्वीकार किया जाये तो सूक्ष्म जगत्, सूक्ष्म शरीर, स्वर्ग लोक और मोक्ष को मानने वालों की संख्या अधिक मिलेगी। जब सूक्ष्म जगत् है तो वहां भोग भी सूक्ष्म मानने होंगे।

जैसे स्थूल जगत् में शब्द की प्रधानता है, इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् में भी शब्द की प्रधानता है। वैसे सूक्ष्म जगत् में इन्द्रियों के भोगों में कर्मेन्द्रिय द्वारा भी शब्द का श्रवण या भोग होता है। परन्तु स्थूल जगत् के समान इन्द्रियों के भोग और व्यवहार इतने नहीं होते जितने स्थूल जगत् या स्थूल शरीर में भोग होते हैं। स्थूल जगत् में मनुष्यों के सब व्यवहार वाणी द्वारा या शब्दों द्वारा होते हैं, परन्तु सूक्ष्म जगत् में शरीराभिमानियों के परस्पर मिल-जुल कर इस प्रकार के व्यवहार या भोग नहीं होते हैं। वहां सब स्वतन्त्र रूप में यथेच्छा पंचतन्मात्राओं के भोग संकल्प मात्र से प्राप्त होते हैं। उन को दिव्य भोग कहा जाता है और उस लोक को भी दिव्य स्वर्ग लोक कहते हैं। इत्यलं विद्वद्वरेषु।

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस
प्रणीत 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ
का प्रथम अध्याय समाप्त।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वितीय अध्याय

स्थूल शरीर की उत्पत्ति

स्थूल सृष्टि की उत्पत्ति सूक्ष्म भूतों या पंचतन्मात्राओं से प्रारंभ हुई। इसमें वेद मन्त्र का प्रमाण निम्न प्रकार से है। अथर्ववेद में मन्त्र आते हैं—

स विश्वा प्रति चाक्लृपे ऋतून् उत सृजते वशी। यज्ञस्य वय उत्तिरन्॥

अ० वे०, सू० ३७, मं० २, काण्ड ६

अग्नि परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति॥

अ० वे०, सू० ३७, मं० ३, काण्ड ६

भाष्य—(स) वह परमात्मा (विश्वा) समस्त पदार्थों को (प्रति चाक्लृपे) बनाता है या इसके सन्निधान से बनते हैं (वशी) सब को वश में करने वाला (यज्ञस्य) सम्वत्सर रूप यज्ञ पुरुष के (वयः) काल को (उत्तिरन्) विभक्त करता (यज्ञस्य वय उत्तिरन्) यज्ञ से उत्पन्न करता हुआ (वयः) अन्न औषधियों को फैलाता हुआ (ऋतून् उत् सृजते) ऋतुओं को बनाता है॥ (परेषु धामसु) दूर के लोक-लोकान्तरों में (अग्निः) प्रकाशक अग्नि है वह (भूतस्त) उत्पन्न हुए पदार्थों और (भव्यस्य) आगे उत्पन्न होने वाले पदार्थों का भी (कामः) उत्पादक संकल्प है। वही (एकः सम्राट्) समस्त लोक-लोकान्तरों का सम्राट् राजा या एकमात्र प्रकाशक है। (विराजति) विशेष रूप से प्रकाशित होता है। इन दो मन्त्रों में कथित भगवान् से सृष्टि का सृजन हुआ है।

यह स्थूल सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम चल रहा है। समष्टि पदार्थों की सृष्टि के पश्चात् कारण शरीरों का प्रादुर्भाव हुआ। उसके अनन्तर सूक्ष्म जगत् और सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् पंचतन्मात्राओं से या पंच सूक्ष्म भूतों से स्थूल भूतों का प्रादुर्भाव हुआ।

सूक्ष्म भूतों ने संघात भाव को प्राप्त होकर सर्वप्रथम आकाश स्थूल भूत को उत्पन्न किया जो आगामी चारों भूतों की स्थितिस्थापकता का हेतु होगा और स्थूल शब्द का उपादान कारण बनेगा। यह आकाश भूत ही परिणाम भाव को प्राप्त होकर शब्द के रूप में सर्वप्रथम परिणत हुआ। इस आकाश में अनन्त शब्द इस में सूक्ष्म रूप में गुणों के रूप में उत्पन्न हुए। वे गुण या धर्म तीन भागों में या रूपों में प्रकट हुए—(१) अवकाश,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२) गति और (३) व्यूह भेद से। इससे पूर्व एक प्रकार री अनन्त सूक्ष्म शब्दों का ही यह संघात था जो कि व्यापक सी स्थिति में था।

सर्वव्यापक चेतन ब्रह्म के सन्निधान से सूक्ष्म भूत आकाश में बड़ा भारी क्षोभ हुआ और हलचल सी उत्पन्न हुई। तब इसमें परिणाम क्रम आरंभ हुआ। यह अनन्त आकाश सूक्ष्म शब्दों के रूप में परिणाम भाव को प्राप्त होकर वायु भाव को प्राप्त हुआ। इस आकाश में भी शब्दों की सूक्ष्म और स्थूल रूप में प्रधानता थी। एक प्रकार से इसमें चार धर्म उत्पन्न हुए—शब्द-गति-आकाश-व्यूह—वैसे अन्य शास्त्रों में इसके तीन ही धर्म वर्तमान हैं, क्योंकि शब्द उत्पन्न होने के लिए अवकाश-गति-व्यूह की आवश्यकता होती है। किन्तु यदि सर्वप्रथम गुण माना जाये तो इनके पश्चात् शब्द रूप गुण मानना होगा। या इनको आकाश का परिणाम या दूसरी अवस्था माननी होगी। आकाश में अवकाश गति अव्यूह होकर अनन्त शब्द के रूप में अवतरण या परिणत हुआ।

ये अनन्त शब्द, जो कुछ स्थूल से हो चुके थे, संघात भाव को प्राप्त होकर वायु भूत के रूप में परिणत हुए। जैसे आकाश का गुण शब्द को माना है। इसी प्रकार वायु में भी स्पर्श रूप गुण उत्पन्न हुआ क्योंकि स्पर्शवान् वायु भूत है। इस वायु में भी ८ गुण क्रमपूर्वक उत्पन्न हुए। अर्थात् जैसे आकाश तीन अवस्थाओं में परिणत हुआ, इसी प्रकार वायु भूत आठ अवस्थाओं में परिणत हुआ।

जब वायु भूत आकाश में शब्दों के रूप में टकराने लगा तब यह अग्नि के रूप में प्रकट हुआ। वायु में अनन्त शब्द टकराकर अग्नि भूत को उत्पन्न करने में समर्थ हुए।

शंका—शब्द क्या वायु अग्नि भाव को प्राप्त हुआ अथवा अन्य पदार्थ के साथ टक्कर खाकर अग्नि बन गया।

समाधान—वास्तव में कारण रूप पदार्थ सदा अपने कार्य के साथ रहता है। कारण के व्यापार भेद से कार्य और कारण में भेद हो जाता है। अतः अग्नि की उत्पत्ति में प्रकृति भी साथ में है और आकाश वायु भूत भी साथ में है। एक प्रकार से यह प्रकृति का ही परिणाम अनेक कार्यों के रूप में होता जा रहा है। पंच भूतों में अग्नि तीसरा पदार्थ है, जो कि आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न हुआ है। इस सबके साथ मिलकर अग्नि भूत जल का उपादान कारण होता है। जब अग्नि वायु आकाश में परस्पर टकराते हैं तब जल भूत की उत्पत्ति होती है। उन सब की अपेक्षा जल में गुरुत्व है, क्योंकि जल पृथिवी के परमाणुओं को संगठित करने में समर्थ होता है। ये दोनों मिलकर अत्यन्त गुरुत्व धर्म वाले बन जाते हैं। अग्नि ८ अवस्थाओं में या गुणों के रूप में प्रकट होता है और जल १० अवस्थाओं में प्रकट या परिणाम भाव को प्राप्त होता है। इन भूतों के गुणों या धर्मों का वर्णन हम अपने ग्रन्थों में बहुत जगह कर चुके हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस जल को अग्नि भी अपने अन्दर धारण करके उठाकर चलता है और वायु भी उठाकर धारण करके चलता है, भले ही इसमें गुरुत्व धर्म है। वायु जल को समुद्र से उठाकर मेघों के रूप में चलता है और इतस्ततः उठाकर ले जाकर वर्षा कर देता है। इसी प्रकार सूर्य अग्नि की किरणें भी जल के कणों को उठाकर ले जाती हैं। वायु और अग्नि में जल को शोषण करने के गुण भी वर्तमान हैं। जल अग्नि वायु को आर्द्र भी करता है। इनमें शीतलता उत्पन्न कर देता है, जैसे वर्षा काल में अत्यन्त गर्मी भी शान्त हो जाती है और वायु भी शीतल बन कर बहने लगता है। कारण कार्य में मिलकर या परिणत होकर विरोधी धर्मों और गुणों वाला भी कुछ बन जाता है। उपर्युक्त आकाश वायु अग्नि जल के साथ सहकारी कारण बनकर और संघात को प्राप्त होकर पृथिवी महाभूत की रचना करते हैं। इसमें अथर्व वेद का प्रमाण है। भूमि का स्वरूप, यथा—

यार्णवेऽधि सलिलमग्रे आसीद् या मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः। यस्य हृदयं परमे व्योमन् सत्येनावृतममृत पृथिव्याः। सानो भूमिस्त्विषीं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥ अथर्व वेद, सू० १, काण्ड द्वादश, मं० ८। अर्थ--(या) जो पृथिवी (अग्रे) सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व (अर्णवे अधि) महान् समुद्र के अन्दर (सलिलं आसीत्) जल ही जल स्वरूप थी (याम्) जिसको (मनीषिणः) मननशील मनुष्य (मायाभिः) अपनी निर्माण शक्तियों के द्वारा (अनु अचरन्) भोग रहे हैं। (यस्याः) जिस (पृथिव्याः) पृथिवी का (हृदयम्) परम गति कारक बल (अमृतम्) अमृत स्वरूप (परमे व्योमन्) महान् आकार में (सत्येन) सत्य बल स्वरूप तेज से (आवृतम्) ढका है (सा भूमिः) वह भूमि (नः उत्तमे) हमारे लिए या हमारे में (त्विषीं) तेज और (बलम्) बल (दधातु) धारण करावे।

पृथिवी महाभूत का प्रादुर्भाव जल महाभूत के अनन्तर होता है। इसमें सहकारी उपादान कारणों के सभी धर्म आते हैं। यह अन्तिम पदार्थ है। प्रकृति परिणत होते हुए अन्त में पृथिवी में आनकर ठहर जाती है। इसके आगे प्रकृति के सब कारण-कार्य बनने समाप्त हो जाते हैं। यहां पहुंच पंचभूतों का परिणाम-क्रम समाप्त हो जाता है।

इसके आगे ये सब भूत मिलकर अपने अपने कार्यों को पृथक् रूप में या संघात भाव को प्राप्त होकर अपने कार्यात्मक पदार्थों को बनाते रहते हैं। प्रकृति को परिणत होते हुए पृथिवी तक पहुंचने में कम से कम १० अरब वर्ष लग जाते हैं। पृथिवी से हमारा अभिप्राय दृश्यमान सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का है। ये सब पृथिवी के भाग या कार्यात्मक पदार्थ हैं।

इस वर्तमान युग के अनुसन्धान में तो अभी तक यही आया है कि इस हमारी पृथिवी पर ही मनुष्यों और दूसरे प्राणियों की जैवी सृष्टि है। अन्यत्र किसी लोक में अब तक देखने में नहीं आयी। कहीं न कहीं होगी अवश्य। इतना बड़ा ब्रह्माण्ड है जिसका कहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्त देखने के नहीं आता है। करोड़ों अरबों वर्ष हमारी पृथिवी को शीतल होने में लगे होंगे और प्राणियों के उत्पन्न होने बसने में भी करोड़ों वर्ष लगे होंगे।

शंका—एक ही बात आश्चर्यजनक है कि सर्वप्रथम प्राणियों के शरीर कैसे उत्पन्न हुए और कहां से आये, क्योंकि माता-पिता तो किसी प्राणी के थे नहीं जो कि जैवी सृष्टि उत्पन्न करते ?

समाधान—सर्वप्रथम जैवी सृष्टि में पंच महाभूत ही उपादान कारण हो सकते हैं स्थूल शरीरों के उत्पन्न करने में। इनमें भी प्रधानता भूमि और जल की है। दो ही स्थान जीवों के उत्पन्न होने में देखने में आते हैं। वर्षा ऋतु में भूमि से जन्तु उत्पन्न होते हुए देखने में आते हैं और समुद्र आदि में भी मत्स्य एवं अन्य जन्तु देखते हैं। शरीर में गुरुत्व धर्म है, अतः पृथिवी का भाग और जल का भाग ही विशेष रूप में हैं। यदि शरीर में से जल का भाग सुखा दिया जाये तो पृथिवी का भाग बहुत कम निकलेगा। अग्नि वायु आकाश सूक्ष्म स्थूलों को अपने गर्भ में धारण करते हैं। स्थूलों को अन्दर और बाहर से आच्छादित करके रहते हैं। आकाश के गुण शब्द शरीर में सर्वत्र देखते हैं। सर्वत्र शरीर में शब्दों की धड़कन हो रही है। इसी प्रकार आकाश शरीर में सर्वत्र संकोच विकास गति रचना परस्पर भेद करने वाले शरीर के अन्दर बाहर चारों भूतों के कार्य प्राण तेज रस गन्ध को धारण किये हुए हैं। अपने स्वरूप से और गुणों से आकाश शरीर में वर्तमान है। यही शरीर में सर्वत्र गति, अवकाश और रचना करता है और शब्द रूप में ज्ञान का हेतु होता है।

इस शरीर की रचना में वायु भूत प्राण के रूप में परिणत होकर जीवन, गति, स्पर्श का हेतु बना हुआ है। शरीर में सब पदार्थों या धातुओं को गति प्रदान करता हुआ शरीर के दश स्थानों में प्रधान रूप में रहकर कार्य कर रहा है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में भी ले जाता है, जैसे शब्द तेज रस को शरीर में इधर उधर पहुंचाता है।

इस प्रकार तेज भी अग्नि भूत का परिणाम है। इसके बिना शरीर मुर्दा बन जाता है। अन्न रस रुधिर रज वीर्य में पाक करके जीवन को स्थिर रखता है। अग्नि शरीर में उष्णता, तेज और ओज को बनाये रखता है। रूप जो देखने में आता है वह अग्नि भूत का ही है। इसके बिना शरीर निष्क्रिय हो जाता है और मूर्च्छित सी अवस्था बन जाती है। अतः अग्नि भी प्राण की तरह जीवन का आधार है। जठराग्नि प्रदीप्त करता है, शरीर में तेज कान्ति चमक सुन्दरता को कायम रखता है। ये तीनों आकाश वायु अग्नि शरीर की रचना में सहकारी उपादान कारण बन कर भूमि जल के शरीर को धारण करके जीवित बनाये रखते हैं। भूमि जल से उत्पन्न होने वाले शरीर वृद्धि विकास करते हैं। जीवन को धारण करके चेतन के सहयोग से या सत्ता से इन्हें जीवन प्राप्त है या इनमें जीवनी शक्ति पैदा हो गयी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वप्रथम मनुष्य तथा दूसरे प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति भूमि में ही या भूमि से ही माननी होगी। यदि जल में भी मनुष्यों के शरीर की उत्पत्ति मानी जाये तो जब माता के गर्भ में बच्चा होता है वह भी पतली झिल्ली के अन्दर बन्द होता है। उस झिल्ली में पानी होता है। वह रस रूप में होता है। उस झिल्ली का मुख माता के पेट से जुड़ा होता है। माता के पेट से खाद्य-पेय का रस बनकर गर्भस्थ बालक की झिल्ली में आता है। वह झिल्ली सब ओर से बन्द होती है, केवल उसका मुख माता के पेट में खुला होता है। उसी रस से बालक का पोषण होता है। उस झिल्ली के मुख को नाड़ कहते हैं। इस नाड़ का सम्बन्ध बालक की नाभि से होता है। इस नाड़ को बालक पैदा होने पर काटते हैं। भले ही रस रूप जल से बालक का पोषण होता है परन्तु पार्थिव शरीर का ही पोषण होता है। वृद्धि भी बालक के पार्थिव शरीर की ही होती है, क्योंकि मानव शरीर जल में रहने वाला प्राणी नहीं है, भूमि पर ही रहता है, अतः इसमें भूमि की ही प्रधानता माननी चाहिये और जल में रहने वाले जन्तुओं में जल की प्रधानता माननी चाहिये। परन्तु उनके शरीर में भी भूमि का भाग काफी होता है। जल में उत्पन्न होने वाले प्राणियों का निवास और निद्रा जल में होते हैं। मनुष्यों का निवास और शयन भूमि पर होता है। दूसरे दर्जे पर जल के अन्दर समुद्र, झील, तालाब, कूवें, नदी, नाले, स्रोतों के जलों में भी प्राणियों का जीवन देखने में आता है। अन्य भूत या पदार्थ शरीर के प्रति देखने में उपादान कारण समझ में नहीं आते हैं। उपर्युक्त कारणों या साधनों से मानव शरीर के उत्पन्न होने पर और इसके विकास होने पर शनैः-शनैः मनुष्यों में सामान्य ज्ञान से विशेष ज्ञान का विकास हुआ। इस विशेष ज्ञान की महानता इतर प्राणियों में नहीं, मनुष्य में होती या मानी जाती है और देखने में भी आती है।

शंका—आदि सृष्टि में मनुष्य सामान्य ज्ञान को लेकर आये थे अथवा विशेष ज्ञान को लेकर उत्पन्न हुए थे।

समाधान—इस समय वर्तमान काल में जो बालक-बालिकाएं उत्पन्न होते हैं, ये तो पशुओं के समान ही सामान्य ज्ञान को लेकर आते हैं। सामान्य ज्ञान में भूख-प्यास-निद्रा-जाग्रति-स्वप्न-रोना-हंसना-चिल्लाना-टट्टी-पेशाब-इन्द्रियों के द्वारा भोग-अज्ञान इत्यादि बातें बहुत सी स्वाभाविक साथ में लेकर आते हैं। पशु पक्षियों जीव जन्तुओं में ये सामान्य ज्ञान की बातें स्वाभाविक ही जन्म से साथ आती हैं। विशेष ज्ञान माता पिता गुरुजन तथा मनुष्यों से या सत्संग से अथवा पठन-पाठन से या ध्यान समाधि से प्राप्त होता है। यह ज्ञान मनुष्यों में स्त्री-पुरुष में उत्पन्न होता है।

इस विशेष ज्ञान की प्राप्ति शब्दों से होती है। शब्द, अर्थ और ज्ञान का परस्पर सम्बन्ध है। माता-पिता, गुरुजन शब्द के द्वारा ही पठन-पाठन कराते है, सिखाते भी शब्द से ही हैं। शब्द पदार्थ और ज्ञान का बोधक होता है। शब्द में अर्थ और ज्ञान ओतै-प्रोत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहते हैं। इसका विकास मनुष्य की वाणी द्वारा और प्रचार से भी होता है। इसके द्वारा विशेष ज्ञान होता है। प्रकृति के जितने भी कार्यात्मक पदार्थ हैं, उनका ज्ञान शब्द द्वारा ही होता है। विशेष ज्ञान भौतिक पदार्थों और आध्यात्मिक पदार्थों का होता है। इन पदार्थों को मनुष्य भोग और अपवर्ग का साधन बनाता है। 'बन्ध और मोक्ष का भी साधन मानता है।

हम वर्णन कर रहे थे स्थूल भूतों की उत्पत्ति और उनके ज्ञान का जो कि सूक्ष्म भूतों से हुई थी। इन पंच भूतों में प्रधान रूप में वसुन्धरा का, जिसको हम पृथिवी कहते हैं। वेद में इसकी बड़ी प्रशंसा की है। यही मनुष्यों को उत्पन्न करने में अथवा अन्य प्राणियों को उत्पन्न करने में, जो इस पर विचरने वाले हैं, समर्थ हुई।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्। गवामश्वानां वायसश्च विस्थ भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ।। अथर्ववेद, सू० १, द्वादश काण्ड, मं० ५। अर्थ—(यस्यां) जिस भूमि पर (पूर्वे) पूर्व काल के (पूर्वजनाः) उत्तम—पुरुष (विचक्रिरे) नाना प्रकार के कार्य करते आये हैं। (यस्यां) जिस भूमि पर (देवाः) दिव्य पुरुष पराक्रमी मनुष्य (असुरान्) असुरों को जो प्रजा को दुःख देने वाले हैं (अभ्यवर्तयन्) दमन करते हैं (गवाम् अश्वानाम् वायसः च) गऊओं घोड़ों पक्षियों का (विस्था) विशेष रहने का स्थान (पृथिवी) भूमि (नः) हमें (भगं वर्चः) सौभाग्य तेज और सम्पत्ति को (दधातु) प्रदान करें। इस प्रकार जैवी सृष्टि की उत्पत्ति समझ में आती है और वेद भी वर्णन करता है या अनुभव में आती है। अब तक जो जड़ चेतन पदार्थों का प्रादुर्भाव हुआ है वह ब्रह्म के सन्निधान से ही हुआ है। वह सब समष्टि व्यष्टि पदार्थों का ही समझना चाहिये। इसके आगे जो पदार्थ पंच भूतों से उत्पन्न होंगे वह मनुष्यों की कृति या इनके द्वारा होंगे, जो कि मनुष्यों और सर्व प्राणियों के सुख दुःख कर्म भोग ज्ञान विज्ञान का साधन बनेंगे।

जैवी सृष्टि में सर्वप्रथम शब्द का प्रादुर्भाव

मनुष्य और दूसरे प्राणियों की सृष्टि के पश्चात् जब शब्द अर्थ और ज्ञान के रूप में विकास भाव को प्राप्त हुआ या होने लगा तब सामान्य से विशेष में परिवर्तन होने का क्रम आया, क्योंकि सर्वप्रथम सर्व प्राणि और मनुष्य भी स्वाभाविक सामान्य ज्ञान को लेकर आये थे। यदि सब में यह सामान्य ज्ञान ही चलता रहता तो वर्तमान में जो मूर्ख और विद्वान् देखने में आते हैं, यह अन्तर न होता और सब मूर्ख ही रहते। इस भेद का कारण आपका विशेष ज्ञान ही मानना होगा। इस विशेष ज्ञान का मूल कारण शब्द ही है और सामान्य ज्ञान का कारण भी शब्द को ही मानना होगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर में सर्वप्रथम शब्द की ही उत्पत्ति होती है। इस शब्द की उत्पत्ति चारों अन्तःकरणों, दश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रियों में सर्वप्रथम होती है जो कि मनुष्य के लिए अर्थ और ज्ञान के रूप में विकास भाव को प्राप्त होता है। यह मनुष्य के लिए भोग और अपवर्ग का साधन बनता है। मनुष्य ही शब्द के अर्थ का निर्णय करता है और निर्माण भी करता है। शब्द का मूल रूप में सर्वथा विनाश नहीं होता है। यह प्रकृति के गर्भ में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से वर्तमान रहता है, उसके साथ में परिणत होते हुए चलता रहता है। परन्तु यह मनुष्य में पहुंचकर अर्थ ज्ञान का बोधक बनता है। अथवा मनुष्य से भिन्न प्राणियों में भी कुछ-कुछ अर्थ और ज्ञान का हेतु बनता है। परन्तु अर्थ और ज्ञान की जो विशेषता मनुष्यों में देखने में आती है वह अन्य प्राणियों में देखने में नहीं आती है।

शंका - मनुष्यों में अर्थ और ज्ञान की आप क्या विशेषता दूसरे प्राणियों से सिद्ध करना चाहते हैं ?

समाधान—वेदों या ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, दर्शन ग्रन्थों, स्मृति, इतिहास, पुराणों अथवा अन्य ग्रन्थों का निर्माण हिन्दु धर्म में माना जाता है। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के ग्रन्थों, और इसी प्रकार ईसाई धर्म में बाइबल इंजीलादि ग्रन्थों एवं मुस्लिम धर्म के ग्रन्थ, कुरान शरीफ आदि पुस्तकों में, इसी प्रकार अन्य सम्प्रदायों के भी जो धर्म ग्रन्थ हैं, या अन्य भी भौतिक विज्ञान के सम्बन्धी ग्रन्थ हैं, ये सब ही शब्दात्मक हैं। इन को शब्द प्रमाण के रूप में कहा जाता है ये सब शब्द का ही विस्तार हैं। इन सब शब्द रूप ग्रन्थों का विस्तार मनुष्यों द्वारा ही हुआ है। इन मनुष्यों को बहुत आदर और सम्मान देकर ऋषि मुनि अवतार पैगम्बर के रूप में मनुष्यों भक्तों शिष्यों अनुयायियों ने कथन किया है। इन सब महापुरुषों में शब्द, अर्थ और ज्ञान की ही विशेषता देखने में आती है।

शंका—क्या इस प्रकार शब्द, अर्थ और ज्ञान की विशेषता मनुष्यों ने पैदा की है अथवा ईश्वर ने की है ?

समाधान--हमारी समझ और अनुभव तो यह कहता है कि माता-पिता, गुरुजन, विद्वान्, ऋषि-मुनि, अवतार, पैगम्बरों की अर्थ और ज्ञान के रूप में देन है। ये ही इसका विकास प्रसार विस्तार करते हैं, इनको करते हुए हम प्रत्यक्ष देखते हैं। अतः शब्द ही अर्थ और ज्ञान का मूल कारण है। विद्वान, उपदेष्टा, आचार्य, गुरुजन माता पिता उपदेश देकर पढ़ाकर योग्य बनाते हैं। इसमें वेद प्रमाण है।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय॥ अग्ने समिधमाहर्षं बृहते जातवेदसे॥ स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु॥ अ० वेद, सू० ६४, मन्त्र २-३। अर्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे वेद के विद्वान् तू (उत्तिष्ठ) उठ (देवान्) विद्वानों को (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा (बोधय) परिचित करा या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपासना का उपदेश कर (आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमान च) आयु प्राण प्रजा कीर्ति यजमान को भी (वर्धय) बढ़ा (अग्ने) हे ज्ञानवान् आचार्य (जातवेदसे) विद्वान् होने के लिए (सम् इधम्) ज्ञान द्वारा प्रज्वलित होने वाले आत्मा को तेरे पास (अहार्षम्) मैं लाता हूं (जातवेदसः) हे जातवेद विद्वान् आचार्य (मे) मुझे (श्रद्धाम्) सत्य ज्ञान धारण कराने का सामर्थ्य और (मेधाम्) पवित्र बुद्धि प्रतिभा शक्ति (प्रयच्छतु) प्रदान कर।

जन्म से ही जननी मातेश्वरी जीवन प्रदान करने वाली सर्वप्रथम आराध्या देवी नित्य पूजनीय पूजा करने योग्य माता, गर्भाधान संस्कार होने के पश्चात्, अत्यन्त पवित्र भावना से गर्भस्थ बालक-बालिका को मन वचन कर्म से पवित्र भावनाएं भरने लगती है। मेरी सन्तान सर्व गुण सम्पन्न हो, यह भी अपने शरीर वाणी मन के आचरण से और धर्म कर्म से शब्दों द्वारा शिशु में संस्कार भरने लगती है। यहां भी शब्द की ही प्रधानता सर्वप्रथम मनुष्य में देखने में आती है। वैसे बालक सामान्य शब्दों को भी जन्म से साथ लेकर आता हैं, जैसे रोना चिल्लाना आदि। ये भी तो शब्द ही होते हैं, परन्तु ये सामान्य शब्द होते हैं। इनका किसी भाषा से सम्बन्ध नहीं होता।

परन्तु माता विशेष ज्ञान की भावना को ही प्रारंभ से लेकर सिखाती है, फिर शनैः-शनैः भाषा का बोध कराती है। जिस देश की जो भाषा होती है वही भाषा सर्वप्रथम बालक को सिखाती है। यह सब शब्द की ही विशेषता है और इसके साथ अर्थ ज्ञान की विशेषता प्रारंभ होती है। मनुष्य में शब्द, अर्थ और ज्ञान का विकास सर्व प्राणियों से अधिक होता है। मनुष्यों ने सर्वप्रथम शब्द के अर्थ का विकास किया था। मनुष्यों ने ही सब से पहले शब्दार्थ का विकास करके एक ही शब्द के सैकड़ों पर्यायवाचक शब्द भी और उनके नाना अर्थ भी बना दिये। अर्थ और ज्ञान का आविर्भाव विशेष रूप में मनुष्यों में ही होता है। विशेष अर्थ और ज्ञान का निर्माता या कर्त्ता अथवा विस्तार करने वाला मनुष्य ही है। अन्य प्राणी विशेष अर्थ और ज्ञान के वेत्ता-ज्ञाता नहीं होते।

इस शब्द का यह अर्थ और ज्ञान है यह मनुष्य ही बताता है। दो प्रकार का विशेष ज्ञान होता है—एक भौतिक पदार्थों का और दूसरा आध्यात्मिक पदार्थों का। भौतिक विशेष ज्ञान संसार के जड़ पदार्थों के कार्यों और कारणात्मक पदार्थों का होता है। जितने भी पदार्थ संसार में देखने में आते हैं, परमात्मा के सन्निधान से और जीवात्मा के सन्निधान से बने हुए हैं। ये भी विशेष ज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान का हेतु होते हैं। यह जो ज्ञान है यह शब्दात्मक ही है। शब्द के द्वारा विशेष ज्ञान की उत्पत्ति होती है और यह विद्वानों तथा योगियों में होती है। भौतिक पदार्थों के विज्ञान के योगी, और आध्यात्मिक पदार्थों के ज्ञान के योगी, अथवा एक ही योगी दोनों प्रकार के पदार्थों के जानने वाले सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्व विज्ञानों का मूल कारण शब्द ही है, चाहे वह किसी भी प्रकार का पदार्थ हो। यह विशेष ज्ञान श्रवण मनन निदिध्यासन से होता है अथवा ध्यान समाधि से उपलब्ध होता है। यथा—

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम्। योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि। तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्। अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते। ज्ञान-स्वरूपमेवादौ ज्ञानं ज्ञेयकसाधनम्॥ योगतत्त्वोपनिषद्, मन्त्र १५-१६।

भावार्थ—योग से रहित ज्ञान से कैसे मोक्ष हो सकता है? ज्ञान से रहित योग मोक्ष का हेतु नहीं होता। इससे योग और ज्ञान का मुमुक्षु को दृढ़ अभ्यास करना चाहिए। अज्ञान से संसार प्राप्त होता है और ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। आदि में ज्ञानस्वरूप ही था, अतः ज्ञान ही एकमात्र साधन मोक्ष का है।

इस प्रकार के योगी में स्वयं ही ज्ञान बढ़ता चला जाता है, अथवा बुद्धि का विकास होता चला जाता है। योगी स्वयं ही शंका उठाकर समाधान कर लिया करता है। मुझे कम से कम ५० वर्ष हो गये हैं, कभी किसी महात्मा या विद्वान् के पास शंका को लेकर समाधान कराने या कुछ सीखने नहीं गया। प्रातःवन्दनीय पूज्य अवधूत श्री परमानन्द जी ने एवं परमपूज्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी ने कुछ ऐसी शक्ति भर दी थी और ज्ञान प्रदान कर दिया था। सहस्रों जन्म धारण करके भी उन महात्माओं के ऋण को नहीं चुका सकता। उन्होंने जो कुछ प्रदान किया था ऋण के रूप में नहीं दिया था, किन्तु लोकोपकार के लिए और अध्यात्मज्ञान की परंपरा चलाने के लिए ही प्रदान किया था। पूज्यचरण प्रातःवन्दनीय अवधूत परमानन्द जी ने इसी पवित्र भूमि काश्मीर में, जहां मैं बैठ कर यह ग्रन्थ लिख रहा हूं, हठ योग और समाधि से सन्तुष्ट कर दिया था। और पूज्यपाद, भवपाश से मुक्त करने वाले पूज्य देव मेरे हृदय रूपी मन्दिर के सम्राट्, ने जिनके उपकार को स्मरण करते हुए आंखों में अब अश्रु बह चले हैं, एक ही रात्रि में भवपाश से मुक्त होने का तत्त्व-ज्ञान प्रदान किया था। उन पूज्य देव की स्मृति में गंगोत्तरी में अध्यात्म-ज्ञान का केन्द्र योग निकेतन खोला था, और पूज्य देव अवधूत परमानन्द जी की स्मृति में यह पहलगाम का योग निकेतन उनके विज्ञान की परंपरा चलाने के लिए खोला था या बनाया था। दोनों आश्रमों में हठ योग, राज योग और अध्यात्म-ज्ञान की परम्परा चल रही है आशा है ये दोनों हिमालय के योग निकेतन चलते रहेंगे। गंगोत्तरी में आजकल कई वर्ष से स्वामी विज्ञानानन्द जी, जो मेरे प्रधान शिष्यों में से हैं, वहां योग साधना और अध्यात्म-ज्ञान का प्रशिक्षण कर रहे हैं और कई वर्ष से योग निकेतन पहलगाम में मैं स्वयं प्रशिक्षण दे रहा हूं और ग्रन्थों के लेखन का कार्य भी कर रहा हूं। 'निर्गुण ब्रह्म', 'प्राण विज्ञान' 'दिव्य ज्योति विज्ञान' ग्रंथ लिखे और अब यह 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रंथ लिख रहा हूं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसंग चल रहा था योगी में स्वयं ज्ञान का उदय या विकास योग द्वारा होने लगता है। इस प्रकार का योगी एक ही जन्म में तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करके जीवन मुक्त होकर संसार में विचरता है। इस योगी के जीवन और कर्तव्य कर्म से सांसारिक लोगों और तत्त्व-ज्ञान के जिज्ञासुओं को पथप्रदर्शन मिला करता है।

सर्वप्रथम जब चित्त और आत्मा का संयोग हुआ था उस काल में सर्वप्रथम शब्द और प्राण की उत्पत्ति हुई थी। अर्थात् चित्त सर्वप्रथम शब्द या ज्ञान के रूप में परिणत हुआ। यह परिणति प्राण रूप कर्म या गति द्वारा हुई। शब्द (ज्ञान) और प्राण (गति या कर्म) ये दो ही प्रथम चित्त में वृत्ति के रूप में परिणाम के रूप में शब्द और प्राण उत्पन्न हुए।

इस जैवी सृष्टि में चित्त में सर्वप्रथम ज्ञान रूप वृत्ति, जो कि सूक्ष्म शब्द के रूप में है, उत्पन्न हुई। इस कारण शरीर के पश्चात् जब सूक्ष्म शरीर की रचना हुई तब यह शब्द तन्मात्रा के रूप में सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म शब्द के रूप में वर्तमान हुआ। यह सूक्ष्म शरीर के कर्णेन्द्रिय में विषय या ज्ञान का हेतु बना। इस सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति में इसमें दशेन्द्रियां वर्तमान हुई थीं, उन में सर्वप्रथम कर्णेन्द्रिय शब्द रूप विज्ञान को ग्रहण करने वाली या बताने वाली वर्तमान हुई। संसार में शब्द रूप विज्ञान का प्रसार या विस्तार अथवा प्रचार व विकास इस कर्णेन्द्रिय ने किया। कारण शरीर के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर के कारण हुआ। इससे पूर्व यह इन्द्रिय कारण शरीर में नहीं थी। वहां केवल अहंकार और चित्त ही कर्म और ज्ञान के रूप में जीवात्मा के बोधक या द्योतक अथवा कार्यकर्त्ता थे। कर्म और ज्ञान के रूप में, ज्ञान के प्रति चित्त ही उपादान कारण होता है और कर्म के प्रति अहंकार उपादान कारण प्रधान रूप में रहता है। अन्य पदार्थ प्रथम कारण शरीर में न होने से यहां भी शब्द की उत्पत्ति संयोग से होती है। इस काल में आत्मा और चित्त का सर्वप्रथम संयोग होता है। अतः इनके संयोग से सर्वप्रथम चित्त में ही शब्द रूप ज्ञान का वृत्ति के रूप में प्रादुर्भाव होता है। इस से भिन्न और कोई पदार्थ भी यहां ज्ञान या शब्द के प्रति नहीं है।

आहंकारी सृष्टि के उत्पन्न होने पर दशेन्द्रियों का प्रादुर्भाव सत्व और रजः अहंकार से हुआ। सत्व अहंकार से ज्ञानेन्द्रिय और रजः अहंकार से पांच कर्मेन्द्रियों का प्रादुर्भाव हुआ। तमः अहंकार गौण रूप में सहकारी रहा। तमः प्रधान अहंकार ने पंच तन्मात्राओं को उत्पन्न किया जो कि इन्द्रियों के भोग के प्रधान रूप में विषय रहे। इनमें प्रधानता सर्वप्रथम, आकाश तन्मात्रा, या इसे शब्द तन्मात्रा कहें, की हुई। इसी से शब्द की उत्पत्ति, सूक्ष्म और स्थूल शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ। इस अवसर में आकाश तन्मात्रा से अनन्त शब्दों की उत्पत्ति हुई और सर्वप्रथम शब्द ही सारे विश्व में भर गये। आकाश तन्मात्रा का गुण होने से भविष्य में ये शब्द कर्णेन्द्रियों का विषय बन कर ज्ञान की परंपरा को चलावेगें और अर्थ ज्ञान का विषय बन कर सूक्ष्म शरीर को भोग प्रदान करेंगे। मानव के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

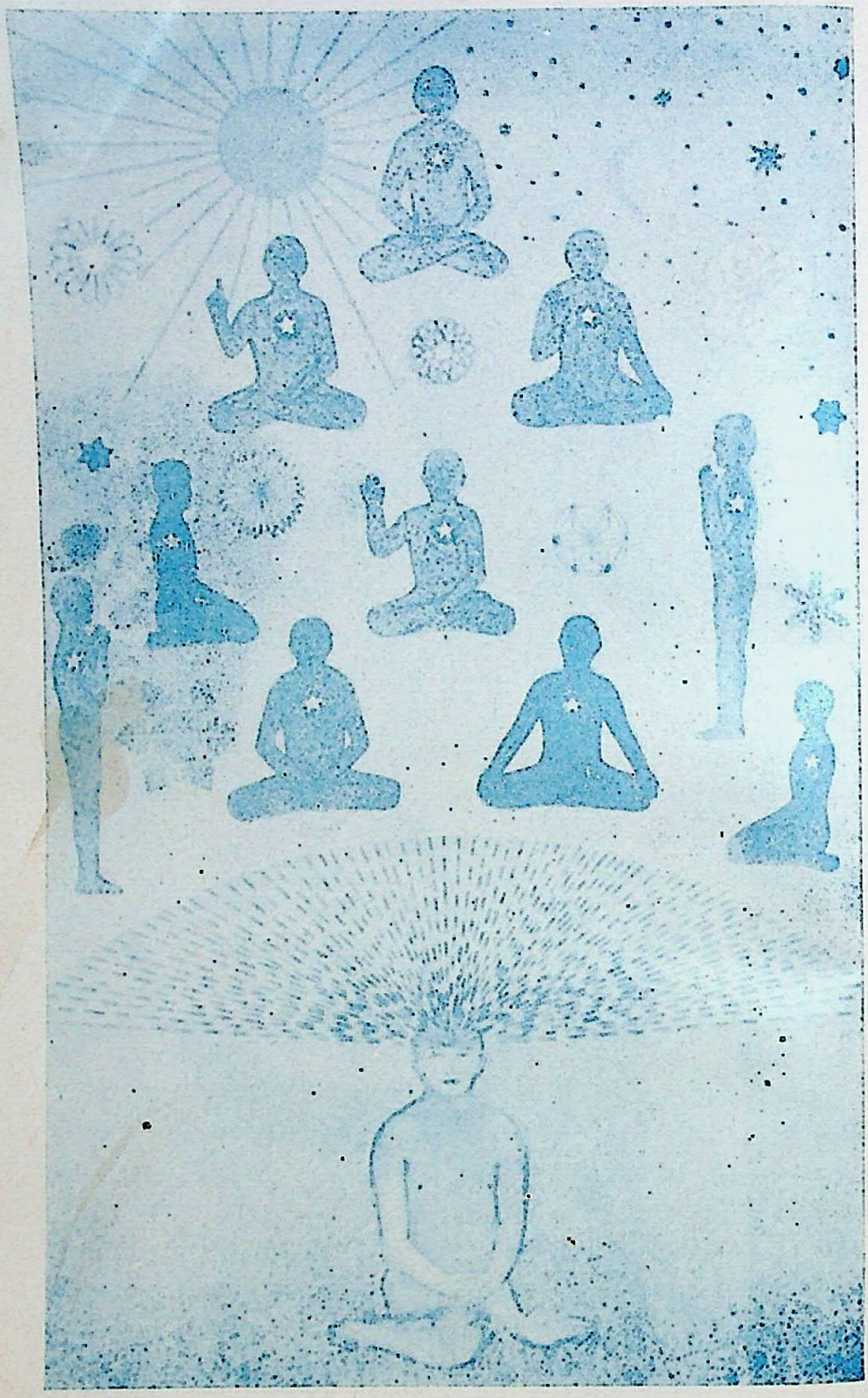

चित्र संख्या २

स्वर्ग लोक या सूक्ष्म जगत् में सूक्ष्म शरीरों द्वारा पंच तन्मात्राओं का उपभोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोग और मोक्ष में महान् उपकारक बनेंगे और कर्म ज्ञान तथा बन्ध मोक्ष का हेतु होंगे। यहां सूक्ष्म जगत् और सूक्ष्म शरीर में ये शब्द पहुंचकर अर्थ और ज्ञान का हेतु बनने प्रारंभ हो जाते हैं, या होने लगते हैं। स्वर्ग लोक में सूक्ष्म शरीर में शब्द तन्मात्राओं के दिव्य भोग प्राप्त होते हैं। यहां यह चित्र २ में दिखाया गया है।

इन शब्द अर्थ ज्ञान का भोग सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म जगत् में करने लगता है। यहां ये शब्द इन्द्रियों का विषय होने से सूक्ष्म रूप में सुख-दुःखात्मक हो जाते हैं, क्यों कि इनको ग्रहण करने वाली कर्णेन्द्रिय उत्पन्न होकर अपने विषय को ग्रहण करने में समर्थ हो जाती है। इस दिव्य लोक में भी ये शब्द विषयात्मक, आत्माओं के सुख दुःख के लिए सूक्ष्म रूप धारण करके भोग देने लगते हैं, भले ही यहां इस लोक अर्थात् सूक्ष्म जगत् में सुख दुःख सामान्य ही क्यों न हों। ये इस अवस्था में जैवी सृष्टि के लिए सुख-दुःखात्मक बन जाते हैं। ये सुख दुःख भी सामान्य ही होते हैं और लगातार एक समान ही रहते हैं। इसी को विद्वान् योगियों ने स्वर्ग के नाम से कथन किया है। यहां इस समय में हम सूक्ष्म जगत् की सृष्टि का वर्णन कर रहे हैं। जब कारण शरीर का सूक्ष्म जगत् में अवतरण होकर इसको अपना संयोगी बनाकर अनादि काल से जो इन्द्रियों के भोग भोगता आ रहा था, फिर सूक्ष्म जगत् में इसका अवतरण होता है। इसके पश्चात् करोड़ों वर्षों तक इसमें भोग करके क्रमपूर्वक स्थूल जगत् और स्थूल शरीर को धारण करने चलेगा भोगों के लिए।

स्थूल भूतों और स्थूल शरीर की जैवी सृष्टि में शब्द और ज्ञान प्रादुर्भाव

अब हम स्थूल सृष्टि के विषय में मनुष्यों के ये शब्द ज्ञान और कर्म का विषय एवं भोगों का विषय कैसे बनते हैं, इसका उल्लेख करेंगे। उन योगियों के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं जो इन शब्दों के द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करते हैं। इन शब्दों को बन्ध या मोक्ष, भोग या अपवर्ग का साधन बनाते हैं।

चित्र संख्या २—इस चित्र में सूक्ष्म जगत् है जिसे स्वर्ग लोक कहते हैं। इसमें पंच तन्मात्राओं के द्वारा स्वर्गीय आत्मायें दिव्य सुखों का उपभोग करती हैं। यह स्वर्गीय भोग परलोक में हिन्दु ईसाई मुसलमान सिख जैन बौद्धादि सब सम्प्रदाय मानते हैं। यह सुख जब तक सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत् का नाश या प्रलय नहीं होता तब तक भोगते हैं। यह प्रलय भी कई अरब वर्ष में होती है। अतः इस दिव्य लोक में मुक्त आत्मायें सूक्ष्म शरीर के द्वारा सूक्ष्म भोग करती हैं। चित्र में दर्शन करें स्वर्गीय पंचतन्मात्राओं के शरीरों को, जो बड़े मोहक और सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। योगी गोमुख आसन में बैठ कर ध्यान में देख रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्द की सर्वप्रथम उत्पत्ति कारण रूप प्रकृति में ब्रह्म के सन्निधान में होती है। तदुपरान्त कारण शरीर में जीवात्मा और चित्त के संयोग से, इसके पश्चात् सूक्ष्म शरीर में बुद्धि में आत्मा और सूक्ष्म शरीर के संयोग से, तदुपरान्त स्थूल शरीर और स्थूल पंच भूतों के जगत् में ब्रह्मरन्ध्र में आत्मा और मन बुद्धि के संयोग से शब्दों की उत्पत्ति होती है। यहां पहुंचकर सूक्ष्म बुद्धि मन और सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय का विषय अन्दर ब्रह्मरन्ध्र में और बाहर स्थूल कान और आकाश में शब्द विषय रूप बन कर स्थूल शरीर के भोग प्रारंभ करते हैं।

ये शब्द ब्रह्मरन्ध्र में उत्पन्न अव्यक्त रूप में सूक्ष्म से होते हैं और बाहर आकाश मण्डल में व्यक्त रूप में उत्पन्न होकर सर्वसाधारण के लिए भोग प्रदान करने लगते हैं। ब्रह्मरन्ध्र में विद्वान् योगियों को ध्यान समाधि की अवस्था में विवेक या तत्त्व-ज्ञान का हेतु बनते हैं। बाहर आकाश मण्डल और स्थूल कर्णेन्द्रिय में उत्पन्न होकर, ज्ञानी और अज्ञानी सब के लिए ही भोग प्रदान करते हैं और लोक व्यवहार चलाते हैं, बन्ध और मोक्ष का हेतु होते हैं।

दूसरी बात एक और अव्यक्त व्यक्त शब्दों की, जो स्थूल शरीरों के साथ सम्बन्ध रखती है। अव्यक्त शब्द वे हैं जिनका विद्वान् लोग भी अर्थ नहीं कर पाये क्योंकि ये अव्यक्त शब्द भी अनन्त हैं। और व्यक्त वे हैं जिनको व्यवहार में ले आये हैं, जैसे वेद ब्राह्मण ग्रन्थ उपनिषद् दर्शनशास्त्र स्मृति इतिहास पुराणादि। इसी प्रकार दूसरे अन्य सम्प्रदायों के भी ग्रन्थ हैं, जो व्यवहार में आ रहे हैं। अथवा हर समय बोलचाल व्यवहार में, लोगों के भिन्न-भिन्न भाषाओं के रूप में, लोक व्यवस्था चलाने में प्रयुक्त हो रहे हैं।

वर्तमान में भी नये-नये शब्द और अर्थ बनते जा रहे हैं, जो हमारे मनुष्यों के व्यवहार में आ रहे हैं। हम अन्य अर्थात् मनुष्यों से इतर प्राणियों के शब्दों की बात यहां नहीं लिख रहे हैं, केवल मनुष्यों के शब्द, व्यवहार की चर्चा कर रहे हैं। क्योंकि मनुष्य द्वारा हमारा विशेष ज्ञान या विवेक बढ़ता है।

शंका—शब्द अर्थ और ज्ञान की विशेषता मनुष्यों ने की है, अथवा परमात्मा या ब्रह्म ने की है, अथवा करायी है।

समाधान—परमात्मा में या उसके द्वारा ज्ञान की ऐसी बात देखने में नहीं आ रही है जो कि वह मनुष्य की तरह से विज्ञान वा आदान प्रदान करता हो, अथवा शब्द अर्थ और ज्ञान को मनुष्यों में प्रदान करता हो, या ज्ञान में विशेषता करता हो। जब उसमें कर्तृत्व धर्म ही नहीं है, न उसके शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदि साधन हैं, न वाणी है, तब उसकी देन या ज्ञान हम कैसे मान लें? तब वह शब्द अर्थ में विशेषता भी कैसे लायेगा या उत्पन्न करेगा?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम मनुष्यों को तो शब्द अर्थ ज्ञान में विशेषता लाते देखते हैं। परमात्मा की विशेषता शब्द अर्थ ज्ञान में देखने में नहीं आती। शब्दों के अर्थ और ज्ञान में विशेषता लाने के लिए पाठशालाएं विद्यालय अथवा स्कूल कालेज खुले हुए हैं। इनमें अध्यापक वर्ग अथवा मास्टर प्रोफेसर शब्द अर्थ और ज्ञान को सिखाते हैं। इन सब का सिखाना प्रत्यक्ष रूप में देखने में आ रहा है।

किन्तु ईश्वर प्रदत्त ज्ञान या शब्द अर्थ ज्ञान को हम या आप प्रत्यक्ष रूप में नहीं देखते। फिर हम कैसे स्वीकार कर लें कि भगवान् भी ज्ञान देता है? यह आपकी निरर्थक और मिथ्या कल्पना है कि भगवान् विशेष ज्ञान प्रदान करता है।

हम एक बालक या बालिका को तो माता-पिता, गुरु, समाज के प्रशिक्षण में रखते हैं। एक बालक को समाज से दूर जंगल या वन में रखते हैं। उसके पास कोई अन्य व्यक्ति न हो, केवल भगवान् ही होगा। २०-२५ वर्ष वह बालक भगवान् के संग में रहकर क्या सीख पढ़ जान कर आवेगा, यह आप ही बताओ? दूसरा बालक माता-पिता से बाल्य काल में पढ़ता सीखता है, तत्पश्चात् पाठशाला विद्यालय अथवा स्कूल कालेज में गुरुजनों के सम्पर्क में पढ़ सीख विद्वान् ज्ञानवान् मेधावी सभ्य बन कर आवेगा। वन में रहने वाला भगवान् का शिष्य जंगली वनचर पशु से भी बदतर बन कर आवेगा। मनुष्यों के सम्पर्क में रहकर विद्वान् योगी तत्त्व ज्ञानी बन कर निकलेगा और केवल भगवान् से पढ़ने वाला सीखने वाला भगवान् की गोदी में रहने वाला बिल्कुल जंगली ही लौट आवेगा, जो मनुष्य समाज के लिए भयदायक कष्टदायक दुःखदायी होगा।

इस दृष्टान्त से तो यही सिद्ध होता है कि भगवान् न किसी को कोई ज्ञान देता है न कोई पदार्थ देता है। न कोई विद्या सिखाता है। ये सब लोगों की भगवान् के प्रति मिथ्या ही धारणा और मिथ्या कल्पना बनी या बनायी गयी है। भगवान् न किसी को कुछ देता है, न किसी से लेता या मांगता है। न किसी की याचना प्रार्थना को सुनता है। न प्रार्थना से खुश होता है, और न ही प्रार्थना न करने से नाराज होता है। यदि आप उसकी स्तुति करें तो प्रसन्न भी नहीं होता और निन्दा करें तो नाराज या दुःखी भी नहीं होता है।

ये सब हमारी अपनी भावनाएं हैं। अपनी भावना या कर्म ज्ञान का फल हमें प्राप्त होता है। प्रार्थना में शब्द अच्छे नम्र मधुर दीनता को लिये हुए साधु प्रेम के शब्द होते हैं। इन शब्दों का फल भी मधुर सुख शान्ति दायक परिणाम भाव को प्राप्त होकर आना हुआ, क्योंकि ये शब्द मधुर सरल वाणी से मीठे होकर नम्रता और स्नेह को लेकर निकलते हैं, अतः इनका परिणाम फल भी तो वैसा हुआ। शरीर वाणी मन का अभिमान छोड़कर यदि अच्छा कर्म आपने किया है तो उसका फल भी तो वैसा ही प्राप्त होना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिए। सुख, शान्ति, आनन्द और हर्ष के रूप में प्रार्थना में भगवान् की कुछ भी देन नहीं है। यह हमारे मधुर नम्र शब्दों का फल है। यदि आप आम का वृक्ष बोवेंगे तो उसमें आम ही तो लगेंगे, निम्बू या सन्तरे या खट्टे या सब्जी तो नहीं लगेगी। उन शब्दों का उच्चारण रूप कर्म हमने किया, अच्छे शब्द का फल अच्छा ही होना चाहिए। हमारे शब्दों में भावना बीज रूप में अच्छी थी। अतः उनका फल भी अच्छा ही निकलना चाहिए।

प्रार्थना के शब्द परिणाम भाव को प्राप्त होकर स्वयं ही अच्छे फल के रूप में आये हैं। क्योंकि हमने स्नेह प्यार नम्रता निरभिमानिता को या अहंकार के अभाव को, न रहने को अच्छा माना है, अतः इस सब का फल अच्छा ही परिणाम होकर आना चाहिए। वह हमारे प्रार्थना रूप कर्म पुरुषार्थ स्नेह और प्यार में परिणत होकर अच्छे फल के रूप में हमारे सामने आया है। क्योंकि उपर्युक्त गुणों को हमने अच्छा माना हुआ है, अतः उन गुणों का फल भी अच्छा होना या मानना चाहिए।

दूसरा दृष्टान्त : आपने क्रोध में आकर भगवान् को खूब दिल खोलकर कोसा, अनेक गालियां दीं, भगवान् आपसे नाराज नहीं होगा, आपको कुछ कहेगा भी नहीं। प्रतिकार की भावना उसमें है ही नहीं। क्योंकि हम सब लोग व्यवहार या समाज में गालियों को बुरा समझते हैं, और मानते भी हैं। वे गाली रूप शब्द परिणाम भाव को प्राप्त होकर हमारे सामने आते हैं। जैसा बीज बोया है, फल भी वैसा ही तो मिलना चाहिए। इसमें परमात्मा की नाराजगी की कोई बात नही है। हम गाली देने और न देने में स्वतन्त्र हैं। उस गाली का फल प्राप्त करने के लिए भी हमें स्वतन्त्र रहना चाहिए। परमात्मा की इसमें नाराजगी या नाराज होकर फल देने की कोई बात नहीं है। जैसे गाली देने में स्वतन्त्र हैं, वैसे फल भोगने या लेने में भी स्वतन्त्र हैं। इसमें भगवान् के इन्साफ की कोई आवश्यकता नहीं है। शब्द में फल पहले से ही निहित होता है। उसमें न भगवान् के इन्साफ की आवश्यकता है। हां, फल देने में मनुष्य तो हो सकता है, क्योंकि वह भी आप के समान है।

तीसरा दृष्टान्त : एक व्यक्ति भगवान् को भी गाली देता है और एक मनुष्य को भी गाली देता है। मनुष्य अपनी गाली का इन्साफ कराने अदालत में जाता है। जज उसे हतक इज्जत की कुछ न कुछ सजा या जुर्माना कर देता है। यदि आप भगवान् को गाली देते हैं और एक व्यक्ति इस गाली के विषय में अदालत का दरवाजा खटखटाता है। क्योंकि वहां गवाह तो है परन्तु मुद्दयी नहीं है अतः गाली देने वाले को जज कोई सजा या जुर्माना नहीं करता है। मनुष्य मनुष्यों की बात या गाली का ही फैसला या इन्साफ करता है, क्योंकि मनुष्यों ने अपने समाज या व्यक्ति की व्यवस्था बनायी हुई है, ताकि कोई किसी को दुःख न दे, कष्ट न पहुंचाए। परन्तु भगवान् को न तो हमने जज बनाया है न वह स्वयं ही जजमैन्ट करने वाला बना है। वह किसी को अच्छे कर्म के लिए प्रेरणा नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करता और न बुरे कर्म के लिए कोई दण्ड देता है। केवल उसके भक्तों ने उसे इन्साफ करने वाला, दण्ड या फल देने वाला मान लिया है। उसने कभी हमारी जजमैण्टता स्वीकार भी नहीं की है। जैसे इस लोक में हम न्यायाधीश बनाते हैं और उसे फैसला करते वैसे भी देखते हैं। भगवान् के कोई फैसले करने या देखने में नहीं आते।

शंका--भगवान् के फैसले भी देखते हैं। जैसे एक बालक विकलाङ्ग माता के गर्भ में होकर जन्म लेता है और एक सम्पूर्ण अङ्ग सम्पन्न पैदा होता है।

समाधान—इसमें भी भगवान् के फल देने की बात नहीं बनती है। अङ्ग विकृत होना गर्भ में माता-पिता की गलतियों से होता है। माता के खानपान से या गर्भ में बालक को माता की उछलकूद से या खानपान की खराबी के अथवा खानपान की बदपरहेजी या अन्य गलतियों से अङ्ग या शरीर विकार बालक के हो जाता है या बीमारी से भी विकार हो जाता है। स्वकर्म फल रूप या माता-पिता की गलतियों या गलत कर्म करने से बच्चे के अङ्ग या शरीर में विकार हुआ है। बड़ा होने पर बीमारी आदि से भी तो बालक के अङ्ग विकृत हो जाया करते हैं। गर्भस्थ बालक और बाहर रहने वाले बालक को भगवान् कुछ नहीं करता है। मनुष्य भले ही कुछ नुकसान पहुंचा दें, भगवान् इन सब बातों से मुक्त है। हमने भगवान् के प्रति अपनी मनमानी मनोतियां सी बना ली हैं। जो मर्जी उससे करा लें। तब उसमें और मनुष्य में क्या अन्तर हुआ ?

चौथा दृष्टान्त : मनुष्य के कर्म या पुरुषार्थ का फल, देश-काल-निमित्त-सामग्री पुरुषार्थ से स्वयं ही कर्म का फल प्राप्त हो जाता है। और वह फल शरीर वाणी मन के द्वारा या इनसे भोगना पड़ता है। ये साधन होने से फल स्वयं मिल जाता है। अतः इस अवस्था में भी भगवान् के इन्साफ की कोई आवश्यकता नहीं रहती। और फिर जिन बुरे कर्मों का फल मनुष्य स्वयं भोगना नहीं चाहता है उनके लिए मनुष्य समाज ने न्यायालय बना रखे हैं। वहां न्यायाधीश नियुक्त किये हुए हैं।

पांचवां दृष्टान्त : एक चोर चोरी करने जाता है या डाका डालता है। इस कर्म को हम या आप अथवा समाज या देश अच्छा नहीं समझता है। कभी-कभी ऐसा भी देखने में आया है कि चोर चोरी को या डाके को अच्छा नहीं समझता होता है। परन्तु वह कई प्रकार की मजबूरियों से चोरी और डाका डालता है। उसे उस समय शंका, लज्जा और भय भी लगते हैं परन्तु वह चोरी और डाके में सफल भी हो जाता है। क्या भगवान् ने उसे चोरी डाके में सफल बनाया ? उसे तो चोरी और डाके का फल धन प्राप्त हुआ। क्या वह भगवान् की देन है या उसके चोरी डाके की देन है ? दूसरे व्यक्ति का सब धन लुट गया बिना किसी अपराध के और बेकसूर व्यर्थ में मारा गया। क्या भगवान् चोरों और डाकुओं को भी सफल बनाता है और जिसका धन लुटा है उसके अपराध को इतनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बढ़ी सजा देता है ? उस दयालु भगवान् के यहां भी बेइन्साफी है ? चोरों को कहता है तुम चोरी करो, डाके मारो और बेकसूरों का धन और पदार्थ चोरों डाकुओं से हरण करा देता है।

छठा दृष्टान्त : एक चोर जब चोरी करने जाता है, वह भगवान् से प्रार्थना करता है कि यदि मेरी चोरी लग गयी तो तेरे नाम का प्रसाद सौ रुपयों का बांटूंगा वह भगवान् में श्रद्धा भक्ति भी रखता है परन्तु किसी कारण विशेष या मजबूरी से चोरी करने लगा है। उसकी भी चोरी लग जाती है और चोरी में सफल होकर भगवान् के नाम से सौ रुपयों के लड्डू पेड़े भी बांट देता है। क्या भगवान् चोरों से भी रिश्वत लेता है और चोरों को सफल बनाता है ? क्या वह चोर और डाकुओं को प्रेरणा देता है और चोरी में सफल बनाता है ? इस प्रकार के भगवान् को चोर और डाकू तो भले ही मानें परन्तु समझदार व्यक्ति तो नहीं मानेगा। जिसके घर चोरी हुई हैं वह तो इस प्रकार के भगवान् को स्वीकार नहीं करेगा।

सातवां दृष्टान्त : एक भक्त है जो रात दिन भगवान् के नाम का जप पूजा आराधना करता है। वह रोगी भी देखने में आता है और निर्धन भी। सारा जीवन उसका कष्टों में बीतता है। भगवान् उस पर दया करके धन भी प्रदान नहीं करता और रोग से भी छुटकारा नहीं कराता है। वह उसके रोग और निर्धनता को क्यों दूर नहीं करता ? अपने भक्त पर तो उसे दया करके सर्व प्रकार के ऐश्वर्य और विभूतियां प्रदान कर देना चाहिए। परन्तु उसे जीवन भर में कुछ भी नहीं देता, सिवाय कष्टों और मुसीबतों के। अतः ऐसे बेरहम दयारहित भगवान् की कोई समझदार व्यक्ति आराधना पूजा सेवा भक्ति नहीं करेगा। कोई मूर्ख भले ही करे।

आठवां दृष्टान्त : यदि हम पुनर्जन्म को न मानें तो हमारे जीवन में बहुत कर्म ऐसे भी होते हैं या करते हैं जिनका फल ही भोग नहीं पाये, उनको अधूरे और निष्फल होकर संसार से जाना पड़ता है। उनके फलों को भगवान् ने क्यों नहीं दिया ? उनके साथ अन्याय या बेइन्साफी क्यों की गयी है ? एक व्यक्ति ने घर बनाया, विवाह किया, खूब धन और ऐश्वर्य भी कमाया, परन्तु जब इन्हें भोगने का समय आया तो कार में जा रहा था, एक्सीडैण्ट होकर कार भी टूट गयी और धक्के से उसका मरण भी हो गया। या पहाड़ पर जा रहा था, पैर फिसला, गिर गया पहाड़ से, मरण हो गया। इस बेचारे का कुछ भी अपराध न था, बेगुनाह का मरण हो गया। मकान धन विवाह के सुखों से वञ्चित होना पड़ा। ऐसी बेइन्साफी और अन्याय भगवान् के दरबार में क्यों होते है ?

नौवां दृष्टान्त : एक भक्त सारा जीवन भगवान् की भक्ति करता है। परन्तु उसे सारा जीवन भगवान् का मिलन या ज्ञान अथवा साक्षात्कार नहीं होता। वह इस जीवन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और संसार तथा भगवान से निराश होकर जाता है। भगवान उसके ऊपर दया करके दर्शन क्यों नहीं देता ? उसे ज्ञान क्यों नहीं कराता है। यह अन्याय या बेइन्साफी भगवान के यहां क्यों होती है ? ऐसे बहुत से भक्त और मनुष्य देखने या सुनने में आये हैं जो संसार से बिना ब्रह्म ज्ञान या दर्शन के मृत्यु देवी की गोद में चले गये हैं।

दसवां दृष्टान्त : बहुत से चोर डाकू लुटेरे लूटखसोट चोरी डाके करते देखे गये हैं। भगवान् को उन्हें कभी प्रत्यक्ष रूप में दण्ड देते नहीं देखा। परन्तु दूसरे पुरुष व पुलिस अथवा न्यायाधीश को तो सजा देते देखा गया है। यदि भगवान् ही पापियों को, गुनाहगारों अपराधियों को दण्ड दे दिया करे तो न तो पुलिस की जरूरत रहेगी न न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। क्योंकि भगवान् किसी को दण्ड नहीं देता है, रोकता भी नहीं है बुरा कर्म करते हुए, इसी लिए मनुष्यों को ही सब व्यवस्था करनी पड़ रही है। कर्म फल भोगने की अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी मनुष्य समाज ही व्यवस्था करती है।

हमारे इन दृष्टान्तों से यह सिद्ध हो गया है भगवान् स्वयं इच्छापूर्वक हम मनुष्यों की तरह कोई भी कर्म नहीं करता है, क्योंकि उसमें कर्तृत्व धर्म या गुण नहीं है। मानव स्वयं ही अपने लिए या दूसरों के लिए कर्म फल की व्यवस्था करता है, देश-काल-निमित्त-सामग्री और पुरुषार्थ द्वारा अपने लिए भी और समाज, ग्राम, नगर, देश, के लिए भी मानव स्वयं ही करता है।

शंका—बहुत से कर्म फल देश निमित्त काल पुरुषार्थ से भी तो प्राप्त नहीं होते। इसका आपके पास क्या समाधान है ?

समाधान—इसका बहुत सरल और सीधा समाधान तो यह है कि भगवान् को कर्मफलदाता मान लें तो उससे भी तो बहुत से कर्मों का फल जीवन में देखने में या देने में नहीं आता है। उसकी मौजूदगी में भी तो बहुत से मनुष्यों को बिना कर्म फल मिले जाते या मरते देखा है। मानव तो अल्पज्ञ है। इसके कर्म फल प्राप्त करने या देश काल निमित्त सामग्री और पुरुषार्थ में कमी रह जाती है। इस कारण से फल प्राप्त होने में कमी रह जाती है या देर लग जाती है परन्तु आपके सर्वज्ञ और सर्वव्यापक भगवान् में तो कोई कमी नहीं रहनी चाहिए, इन्साफ होना चाहिए, परन्तु उसके शासन या व्यवस्था में भी कमी देखने में आती है। ठीक इन्साफ उसके यहां भी नहीं होता है। उसके विधि विधान और कर्म फल प्रदान में तो कोई कसर या बेइन्साफी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वह महान् होने से सब कुछ कर सकता है। परन्तु उसे भी सर्वत्र सब जगह में फल देने में असमर्थ देखते हैं। उसके राज्य में और सब जगह मौजूदगी में बहुत से मनुष्यों को कर्म फल मिले बिना संसार से अधूरा जाते देखते हैं। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् के दरबार में भी मानव के कर्म फल की कोई व्यवस्था या जानकारी नहीं है और वहां भी बेइन्साफी होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंका—तो आप क्या भगवान् को नहीं मानते हैं ?

समाधान—हम भगवान् को अवश्य मानते हैं। परन्तु आप की तरह आंखें बन्द करके नहीं मानते। न हम अपनी मरजी से उससे कुछ कराते या चलाते हैं। मनमर्जी का हमारा भगवान् नहीं है। उसके द्वारा या संयोग से या व्याप्य-व्यापक भाव से, जो सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है उसके संयोग से जड़ प्रकृति चेतनवत् सी बनकर कर्मशील बनी हुई है। भगवान् के केवल सन्निधान की आवश्यकता है। उसके व्यापक होने से प्रकृति स्वयं ही संचालित बनी रहती है और कर्म करती रहती है, क्योंकि संसार और उसके कारण पंचभूतों के भी कारण मूल प्रकृति में भगवान् की सर्वव्यापकता से सर्वत्र कर्म होते रहते हैं। हमेशा कर्तृत्व धर्म एकदेशी पदार्थ में हुआ करता है। भगवान् या ब्रह्म सर्व देशों में वर्त्तमान है, अतः प्रकृति के सर्व देशों में केवल उसके संयोग से कर्म होता है। वह भगवान् पापियों के लिए और पुण्यात्माओं के लिए एक समान है। किसी की भक्ति पूजा आराधना से वह खुश नहीं होता है और न करने से वह नाराज नहीं होता है। ये सब बातें अन्धविश्वासी भक्तों ने भगवान् के लिए बनायी हुई हैं। भक्त लोग बिना सोचे समझे नाना प्रकार की उसमें मनमानी मनभाती व्यर्थ की कल्पनाएं कर बैठते हैं। मुझे भगवान् के विषय में बहुत कुछ अध्ययन करना पड़ा है। सन्तों महात्माओं के द्वारा भी उसके विषय में बहुत कुछ समझा जाना देखा है। बहुत वर्ष ध्यान और समाधि का भी उसे विषय बनाकर सोचा समझा देखा अनुभव किया है। वह सर्व धर्मों कर्मों से रहित, निष्क्रिय, निरवयव, निराकार निर्गुण देखने समझने में आया है। किसी के कहने सुनने प्रेरणा या भक्ति से वह कुछ नहीं करता है। किसी के सुनाने से वह सुनता नहीं, तो किसी की भक्ति सेवा पूजा से वह प्रसन्न होता है। न किसी को चोरी करने, डाका डालने, मारने के लिए प्रेरित करता है। न किसी की भेंट पूजा से वह खुश होकर कर्म फल प्रदान करता है।

शंका—जो कुछ नहीं करता, फिर ऐसे भगवान् की आवश्यकता क्या है ?

समाधान—हमें तो उसकी आवश्यकता इसलिए है कि उसके संयोग या सन्निधान के बिना यह दृश्यमान जगत्, सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि, उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। हम भी इनको बना नहीं सकते हैं या हमारे सन्निधान या संयोग से भी नहीं बन सकते। अतः इन बड़े-बड़े महान् पदार्थों के लिए भगवान् के संयोग या सन्निधान की आवश्यकता है, सर्वव्यापक चेतनता के हेतु से। बिना निमित्त कारण के कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। अतः भगवान् इस दृश्यमान लोक-लोकान्तर के उत्पन्न होने में सन्निधान मात्र से निमित्त कारण है। कर्तृत्व धर्म से निमित्त कारण नहीं है। उसे कर्त्ता भोक्ता मानने से वह आप के और हमारे समान ही हो जायेगा। सुख-दुःख भी उसमें मानने होंगे। ये तो देखने में नहीं आते हैं।

हम तो भगवान् को निर्विकार निष्क्रिय तथा निरवयव निर्गुण सिद्ध करना चाहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। और वह वास्तव में है भी ऐसा ही। जब इस प्रकार का भगवान् मान कर संसार की रचना हो सकती है, और हमारे भी सर्व कार्य हो सकते हैं, तब विकारवान् और कर्त्ता की क्या आवश्यकता है ? आशा है, आप को भगवान् का रूप अब समझ में आ गया होगा।

अब हम पुनः वास्तविक रूप में अपने सिद्धान्त पर पहुंचना चाहते हैं, जो कि हम पहले संक्षिप्त रूप में वर्णन कर चुके हैं। मानवी सृष्टि की उत्पत्ति के पश्चात्, जो अब तक केवल ईश्वर के सन्निधान से ही सर्व पदार्थ या कार्य संसार के उत्पन्न होते आ रहे थे, जैवी सृष्टि के सब कार्य या व्यापार अथवा पदार्थ एवं मनुष्य तथा इतर प्राणियों के द्वारा ही चलेंगे। उन सर्व प्राणियों में मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है, जो कि विशेष ज्ञान के द्वारा सब के पालन पोषण रक्षण में महान उपकारक सिद्ध होगा।

इस वर्तमान जगत् में जो कुछ आप देख रहे हैं, जो सब प्राणियों के कर्म और भोग में आ रहा है, प्रधान रूप में मनुष्यों के भोग और कर्म में, इसमें मनुष्य की ही प्रधानता है। निर्माण कार्य में ये जो भवन, ग्राम, नगर, बांध, कलाकौशल, कारखाने, बड़ी-बड़ी नहरें, तालाब, झीलें, कूवें, आदि हैं ये सब मनुष्यों का ही निर्माण हैं, अपने भोग और सुखों के लिए। अनेक प्रकार के अन्नों का उत्पादन, अनेक प्रकार की खाद्य सामग्री, मोटर, इंजन, रेलें, तार, यान, समुद्री बेड़े, अनेक प्रकार का निर्माण, यह सब मनुष्य की ही देन है। इसके द्वारा इन सब का निर्माण हुआ या हो रहा है।

शब्द का वायरलैस द्वारा, रेडियो, टेलिवीजन टेपरिकार्ड पुस्तकों द्वारा, कितना भारी विस्तार प्रचार किया है। स्कूल कालेज पाठशालाएं विद्यालय गुरुकुल आश्रम योग विद्यालय सब इसी शब्द विज्ञान का प्रसार हैं, अथवा शब्द अर्थ ज्ञान को परिणत करके संसार के लोगों के लिए उपभोग और उससे अनेक कार्य सिद्ध करने में लगे हुए हैं। संसार का कोई भी दृश्यमान या अदृश्यमान पदार्थ ऐसा नहीं है जहां स्थूल और सूक्ष्म रूप में शब्द वर्तमान न हो। भूमि में सर्वत्र शब्द देखने में आते हैं। इसी प्रकार जल अग्नि वायु में भी सूक्ष्म शब्द सर्वत्र वर्तमान हैं। प्रत्येक पदार्थ संयोग और वियोग में शब्द को उत्पन्न करता है। ऐसा देखने और समझ में आ रहा है या अनुभव में आ रहा है। अनन्त शब्दों में मनुष्य बहुत थोड़े शब्दों का अर्थ कर पाया या बना पाया है। अतः अनन्त शब्दों के अर्थ को और ज्ञान को यह मानव बहुत संक्षिप्त में समझ पाया है या अर्थ कर पाया है। सब शब्दों के अर्थ और ज्ञान को मनुष्य समझ भी नहीं पायेगा क्योंकि शब्दों का कोई अन्त ही नहीं है।

शंका—क्या शब्द अर्थ ज्ञान की परम्परा स्थिति प्रलय-उत्पत्ति विनाश में सदा चलती रहेगी या चलती रहती है या केवल शब्द की परम्परा इन चारों में चलती है।

समाधान—शब्द बीज रूप में है और अर्थ ज्ञान वृक्ष और फल के रूप में हैं। अर्थ और ज्ञान का विकास मनुष्यों द्वारा होता है और शब्द का प्रादुर्भाव प्रकृति ब्रह्म के संयोग से या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनके द्वारा होता है। अर्थ और ज्ञान का विकास मनुष्य शब्द से करता है। यदि मनुष्य शब्द से अर्थ और ज्ञान का विकास न करे या प्रसार प्रचार न करे तो इसके विना सदा मूल रूप में ही, प्रकृति और इसके कार्यों में ही, सदा पड़ा रहेगा। अतः मनुष्य शब्दों को अनेक अर्थों और विज्ञानों के रूप में कारण से कार्य भाव में लाता है। सर्व प्राणियों के भोग के लिए और अपने भोगों के लिए भी, विशेष रूप में व्यवहार सिद्ध करने के लिए भी, अथवा अर्थ और ज्ञान के लिए इनका विस्तार करता है। संसार में जो लाखों ग्रन्थ भिन्न-भिन्न भाषाओं में देखने पढ़ने में आते हैं, इनमें शब्दों का विस्तार अर्थ और ज्ञान के रूप में किया गया है। यह सब मनुष्य समाज की ही देन संसार के लोगों अथवा अन्य प्राणियों के लिए है। अतः अर्थ और ज्ञान की परम्परा मनुष्य ही चलाता है।

शंका—बहुत से संप्रदायवादी कहते हैं कि हमारे ऋषि मुनि अवतारों या पैगम्बरों को ज्ञान की प्राप्ति भगवान् से इलहाम के रूप में हुई ?

समाधान—हम तो उन ऋषि मुनि अवतारों या पैगम्बरों को ज्ञान की प्राप्ति तब समझें जब उनको पैदा होते ही जंगल में छोड़ दिया जाये, जहां पर किसी भी प्राणि या मनुष्य अथवा माता-पिता या गुरु या समाज का सम्पर्क न हों, और फिर ये भगवान् के सम्पर्क में रहकर या पास रहकर विद्वान् बनें या ब्रह्मज्ञानी बनें अथवा संसार के सब पदार्थों का ज्ञान इन्हें प्राप्त हो। ऐसा तो किसी को हुआ नहीं, सब को माता-पिता गुरुजनों से ही ज्ञान प्राप्त होता है या हुआ था।

भगवान् किसी को कोई ज्ञान नहीं देता है। किन्तु माता-पिता गुरुजन या अन्य विद्वान् शब्द के अर्थ और ज्ञान को बताते हैं, पढ़ाते हैं या समझाते हैं। भगवान् के ज्ञान प्रदान करने की केवल मनुष्यों की कल्पना ही है। वह किसी को कुछ देता या लेता नहीं है। ज्ञान गुरुजनों द्वारा ही प्राप्त होता है।

शंका—बहुत से विद्वान् या योगी कहते हैं कि हमें समाधि में भगवान् से तत्त्व-ज्ञान प्राप्त हुआ है ?

समाधान—समाधि में विद्वान् या योगी की बुद्धि ध्यानाभ्यास से इतनी सूक्ष्म या तीक्ष्ण अथवा ऋतंभरा के रूप में हो जाती है कि वह समाधि में स्वयं ही ऊहापोह तर्कवितर्क द्वारा पदार्थ के स्वरूप का स्वयं ही निर्णय कर लेता है, मनन-निदिध्यासन एवं समाधि से। अतः उस अवस्था में भी परमात्मा की कोई मेहरबानी या अनुकम्पा अथवा दया विशेष की बात नहीं होती। भगवान् में कर्तृत्व या दातृत्व धर्म या गुण न होने से देने की बात नहीं बनती है। वह तो योगी का स्वयं ही मनन-निदिध्यासन से साक्षात्कार होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंका—संसार में जो इस वक्त विज्ञान वर्तमान है या चल रहा है, यह कहां से आया या किसने दिया या पढ़ाया था ? इसका प्रारंभ कहां से और कैसे हुआ था।

समाधान—इस विज्ञान का विकास शनैः-शनैः मनुष्यों के अन्तःकरणों में ही हुआ, और इसके विकास में लाखों वर्ष लग गये। इसमें कुछ मूल कारण संस्कार पहली पूर्व कल्प की सृष्टि के भी हो सकते हैं या माने जा सकते हैं। वे संस्कार भी प्रथम सहायक हो सकते हैं। मनुष्यों में ज्ञान प्रादुर्भाव शनैः-शनैः शब्द, अर्थ और ज्ञान के रूप में विकास होता गया या बढ़ता गया। मनुष्यों के परस्पर व्यवहार और कर्म के द्वारा अर्थ ज्ञान का विकास हुआ। जैसे वर्तमान में पाठशालाएं हैं, उनमें बहुत से विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से ही बुद्धिमान् और बड़े समझदार होते हैं, बहुत शीघ्र बात या विज्ञान को समझ जाते हैं। परन्तु गुरु की उनको भी प्रारम्भ में आवश्यकता होती है, भले ही वे स्वाभाविक मेधावी हों। और बहुत से मन्दबुद्धि भी स्वाभाविक होते हैं। जैसे वर्तमान में बुद्धि का अन्तर होता है, इसी प्रकार आदि सृष्टि में भी बुद्धि का अन्तर होता है। पूर्व सृष्टि के या कल्प के आधार पर संस्कारों और बुद्धि का अन्तर होता है।

जो ज्ञानी योगी मुक्त होकर पहले स्वर्गलोक या ब्रह्मलोक में जाते हैं या चले गये थे, उन्होंने ही प्रलय काल के समय में कारण रूप प्रकृति में और ब्रह्म में प्रवेश किया था अथवा कारण शरीरों का त्याग किया था। उनका ही आगमन सर्वप्रथम होगा या हुआ। और वे ही बहुत श्रेष्ठ संस्कारों या चित्त बुद्धि इन्द्रियों और अन्तःकरण को लेकर लौटे हैं। उनका ही प्रादुर्भाव सर्वप्रथम पृथिवी के गर्भ में होता है। या वे ही सर्वप्रथम सूक्ष्म और कारण शरीरों को लेकर आते हैं। स्थूल लोक में भूमि के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। इसमें जल अग्नि वायु आकाश भी सहयोगी उपादान कारण होते हैं। अथवा दूसरी जलीय सृष्टि में जीवों का प्रादुर्भाव जलाशयों समुद्रादि में होता है।

परन्तु मनुष्यों का प्रादुर्भाव तो भूमि से ही मानना होगा, जैसे वर्षा ऋतु में भूमि में से असंख्य जन्तुओं का प्रादुर्भाव होता है और निकलते भी देखने में आते हैं। इन पंच भूतों से भिन्न इनमें भी प्रधान रूप में भूमि ही आदि सृष्टि में उपादान कारण होती है। वे स्त्री-पुरुष उत्पन्न होकर शनैः-शनैः परस्पर के व्यवहार से कुछ वाणी का प्रयोग या व्यवहार करने लगते हैं। एवं कुछ-कुछ भिन्न चेष्टाओं से शनैः-शनैः ज्ञान का प्रादुर्भाव या विकास होने लगता है तथा शनैः-शनैः वाणी और भाषा का विकास होने लगता है। परस्पर की भाषा बनने और उसे व्यवहार में लाने के लिए भी बहुत वर्ष लग जाते हैं और फिर भाषा के द्वारा विज्ञान की परम्परा चलने लगती है। भाषा के विषय में भी विद्वानों की भिन्न-भिन्न मान्यताएं हैं कि प्रथम कौन सी भाषा चली या प्रारंभ हुई। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग या देश-देशान्तरों के लोग अपनी-अपनी भाषा को ही महत्त्व देते हैं कि हमारी भाषा सर्वप्रथम प्रारम्भ हुई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से यही पता चलता है कि पहले संस्कृत भाषा का विकास हुआ और इसमें ग्रन्थ और साहित्य भी सब देशों की भाषाओं से अधिक उपलब्ध होते हैं। व्याकरण (ग्रामर) भी बहुत विस्तृत एवं सर्वाङ्गपूर्ण इसी भाषा का देखने में आता है। सब देशों की भाषाओं में संस्कृत के शब्द बहुत मिलते हैं, चाहे वे उच्चारण के भेद से अपभ्रंश हुए हों। अतः संस्कृत भाषा का ही सर्वप्रथम विकास मानना होगा। इसके द्वारा ही शब्दों के अर्थ और ज्ञान का विस्तार समझना चाहिए। इस संस्कृत भाषा में भी बहुत परिवर्तन हुए हैं और देखने में आते हैं। सर्वप्रथम संस्कृत भाषा वेद मन्त्रों की भाषा के समान थी। उसी में गद्य और पद्यात्मक मन्त्रों की रचना सर्वप्रथम हुई। इसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई और कुछ-कुछ भाषा में अन्तर हुआ। इसके पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों की भाषा कुछ और अन्तर लेकर चली। तत्पश्चात् उपनिषद् काल की भाषा में थोड़ा परिवर्तन आया जो आरण्यक ग्रन्थों की भाषा के साथ ही मिलती जुलती रही। उपनिषद् काल की भाषा तक अर्थात् वेदों से उपनिषदों तक एक समान मिलती-जुलती भाषा समान सी ही चलती रही।

इसके पश्चात् संस्कृत भाषा में बहुत परिवर्तन हुआ। सरल रूप में सूत्रों के रूप में दर्शनों का युग हुआ और सूत्रों की रचना में आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान को ओत-प्रोत किया। षड्दर्शनों से भिन्न सूत्रात्मक या सूत्रों में और भी कई ग्रन्थों की उपलब्धि होती है।

दर्शनों के युग के साथ मनु, याज्ञवल्क्यादि एवं स्मृति ग्रन्थों का भी प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् काव्य, नाटक, इतिहास, पुराणों का युग बहुत वर्षों तक चलता रहा। इन ग्रन्थों की रचना के साथ इनके भाष्यकार भी भिन्न-भिन्न युगों में साथ में होते रहे। जब से विदेशी लोगों का शासन भारत पर हुआ तब से उन्होंने अपनी भाषा को बड़ी कुशल नीति से भारतीयों पर ठोसने की बड़ी भारी चेष्टा की और अपनी भाषा तथा संस्कृति को भारत के प्रान्तों नगरों ग्रामों तक फैला दिया। लगभग ६-७ सौ वर्ष मुसलमानों ने शासन किया। इन्होंने अरबी फारसी उर्दू का प्रसार प्रचार किया और २०० वर्ष के लगभग अंगरेजों ने भारत में अपनी संस्कृति और भाषा तथा अपने धर्मों का खूब प्रचार किया। ऐसी जड़ें मजबूत कर गये हैं कि इन्हें उखाड़ना अब असंभव ही है। भारत का जो ऐश्वर्य, था, जो उठाकर ले जाया जा सकता था, उसको भी अपने देशों में ले गये और भारत को बिल्कुल खोखला करके छोड़ गये। भाषा के विषय में अब प्रधानता अंग्रेजी की है, और दूसरे दर्जे पर हिन्दी की और तीसरे पर उर्दू की। संस्कृत भाषा की पढ़ाई बहुत थोड़ी पाठशालाओं में चलती है। अधिकतर ब्राह्मण ही इस भाषा को पढ़ाते हैं। इन्होंने इसे जीवित रक्खा है।

वर्तमान युग में बहुत से प्रान्तों में हिन्दी बोली और कुछ पढ़ी भी जाती है। सामान्य रूप में बोल चाल एवं लिखने-पढ़ने की भाषा बनी हुई है। इसके प्रसार व प्रचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के विषय में कई प्रान्त विरोध कर रहे हैं। जब तक अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई को कम नहीं किया जायेगा तब तक हिन्दी का विकास नहीं होगा। वर्तमान के शासक भी अंग्रेजों के गुलाम के रूप में ही अभी कार्य चला रहे हैं, क्योंकि उनकी संस्कृति भाषा वेशभूषा शिक्षा सभ्यता में ही इनका पालन पोषण शिक्षण हुआ और अभी ३० ही वर्ष तो स्वतन्त्रता प्राप्त किए हुए हैं। २०० वर्ष की गुलामी का तौक तो निकलते-निकलते ही निकलेगा। बहुत से मुसलमान बादशाहों ने भारत में रहकर ही सर्व ऐश्वर्यों का भोग किया। परन्तु अंग्रेज कुछ इनसे समझदार निकले। इन्होंने भारत के ऐश्वर्यों को अपने देश में ले जाकर उपभोग किया और भारत को बिल्कुल खोखला करके छोड़ गये। भारतीयों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए पसीने और खून को बहाया, अनेक कुर्बानियां तन मन धन की दीं और फांसी के तख्ते पर भी लटक कर भारत को सन् १९४७ में स्वतन्त्र कराया था।

विषय चल रहा था भाषा के विकास का। वर्तमान में हिन्दी का विकास भारत में दूसरे दर्जे पर हो रहा है। इसी प्रकार अन्य देशों की भाषाओं का भी बहुत प्रचार विस्तार प्रसार हुआ है। परन्तु वर्तमान में विश्व में अंग्रेजी भाषा को बहुत देशों में स्त्री पुरुष बोलते पढ़ते लिखते हैं और इसी के द्वारा शिक्षा प्राप्त करते हैं। विश्व में दूसरे दर्जे पर चीनी भाषा के बोलने वाले व पढ़ने वाले लोग हैं।

भारत में हिन्दी भाषा बोली जाती है। राज्य को भी और प्रजा को भी इसका विस्तार फैलाव अधिक करना चाहिए ताकि अपने देश की भाषा में ही सर्व शिक्षा प्राप्त करें पढ़ें सीखें और बोलें। इसमें साहित्य और ग्रन्थों का, नाना प्रकार के विद्वानों का, भौतिक आध्यात्मिक ग्रन्थों का विद्वानों को लिख कर विस्तार करना चाहिए। क्योंकि भाषा भी तो शब्द विज्ञान ही का विस्तार है। इसके द्वारा शब्द अर्थ और ज्ञान की परम्परा चलती है। इसका विकास मनुष्य ने ही करना है। अब भी मनुष्य ही कर रहे हैं। और भविष्य में भी शब्दों के अर्थों और ज्ञान का विकास विशेष रूप में मनुष्य ही करेंगे।

शब्द, अर्थ और ज्ञान के विषय में परमात्मा की कोई कुछ भी देन नहीं है। यदि देन मान भी लें तो उसके संयोग या सन्निधान रूप से सर्वप्रथम प्रकृति में शब्द का प्रादुर्भाव हुआ और फिर जैवी सृष्टि में सर्वप्रथम अर्थ, ज्ञान का विकास या प्रसार अथवा प्रचार मनुष्यों द्वारा हुआ। शब्दों की उत्पत्ति मूल रूप में प्रकृति में ब्रह्म के सन्निधान से हुई थी। मनुष्यों ने मूल रूप शब्दों को अर्थ और ज्ञान के रूप में कार्य रूप में लाया या शब्द अर्थ ज्ञान के रूप में मनुष्यों ने ही विस्तार प्रसार या फैलाव संसार में किया।

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस
प्रणीत 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ का
द्वितीय अध्याय समाप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्र संख्या ३

दस प्रकार के शब्दों का सात्विक राजस तामस भेद से उपभोग का वर्णन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तृतीय अध्याय

शब्द और मन्त्र द्वारा आत्मा और ब्रह्म का साक्षात्कार

पंचभौतिक जगत् में जब मानव शरीर की रचना हुई, तब सर्वप्रथम शब्दों का उपादान कारण आकाश बना; शेष चार भूत सहकारी उपादान कारण बने। सर्वप्रथम शरीर की रचना पंचभूतों ने मिलकर पृथिवी से की, अर्थात् पृथिवी के गर्भ में शरीरों का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम हुआ।

आकाश भूत शरीर की रचना में शरीर के दश भागों में प्रधान रूप में स्थिर हुआ तथा भोग समापन और शब्दों को उत्पन्न करने के लिए प्रवृत्त हुआ। शरीर के इन दश स्थानों में आकाश, सात्विक राजस तामस भेद से ३० प्रकार का बनकर भोग प्रदान करने में समर्थ हुआ। सम्पूर्ण स्थूल शरीर में तीनों गुणों के आधार पर इसके तीन स्थान विभक्त हुए। ग्रीवा के ऊपर सम्पूर्ण मुख शिर तक, कंठ से लेकर नाभि तक, एवं नाभि से लेकर पाद तल तक, यदि सुखासन या पद्मासन से बैठें तो गुदा पर्यन्त इसके कार्यक्षेत्र बने। इनमें इसके जो कार्य या शब्द गुण थे, वे व्यापार करने में समर्थ या प्रवृत्त हुए।

चित्र संख्या ३—इस चित्र में दिखाया है कि जब शरीर की रचना हुई तब इस शरीर में आकाश भूत ने चार भूतों के साथ मिलकर सहकारी उपादान कारण बनकर शरीर के १० स्थानों में विभक्त होकर सात्विक राजस तामस भेद से शब्द को उत्पन्न किया। वे शब्द ही सर्व पदार्थों के कार्य-कारणात्मक तथा स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों के तथा व्यष्टि समष्टि पदार्थों के साक्षात्कार के हेतु बने। हमारे इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में आकाश और शब्द ही तत्त्व-ज्ञान के लिए, अथवा समस्त कार्य-कारणात्मक संसार और आत्मा परमात्मा के लिए शब्द या शब्दात्मक मन्त्र ही प्रधान रूप में साधन बने। इस चित्र में सात्विक राजस तामस भेद से ३० प्रकार के आकाश और शब्दों को साक्षात्कार के लिए मुख्य साधन माना है। यह दिव्य शब्द ही सर्वत्र सर्व पदार्थों के ज्ञान का मुख्य हेतु बनेंगे। दस आकाशों के शरीर में स्थान ये हैं—ब्रह्मरन्ध्रस्थाकाश में शब्द की उत्पत्ति, कर्णेन्द्रिय आकाश में शब्द विज्ञान, फुफ्फुसस्थ आकाश में शब्द का प्रादुर्भाव, हृदयस्थ आकाश में शब्द की उत्पत्ति और ज्ञान, यकृतस्थाकाश में शब्द का प्रादुर्भाव, आमाशयस्थ आकाश में शब्द की उत्पत्ति, पक्वाशयस्थाकाश में शब्द का प्रकट होना, बड़ी छोटी आंतों के मुख पर आकाशस्थ शब्द और नाभिस्थाकाश में सर्वप्रथम शब्द उत्पन्न होकर चलता है। इन स्थानों में शब्द द्वारा ही विज्ञान होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वप्रथम ब्रह्मरन्ध्रस्थ स्थूल शरीर के आकाश में शब्दों का व्यवहार होना प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् जो कर्णेन्द्रियस्थ आकाश ग्रीवा के ऊपर कर्णेन्द्रिय में है उसमें शब्दों का व्यापार प्रारम्भ हुआ। कर्णेन्द्रिय में शब्द की गतिविधि श्रवण और इसके कार्य प्रारम्भ हुए। इन दोनों में प्रधान आकाश मन और बुद्धि का है, क्योंकि बुद्धि और मन मिलकर ज्ञान और कर्म के कार्य करते हैं। इस प्रदेश के सात्विक आकाश में बुद्धि और मन के सात्विक व्यापार प्रारंभ हुए।

योगी शान्त और समाहित होकर ब्रह्मरन्ध्र के बुद्धि प्रदेश में प्रणव (ओ३म्) को लेकर चिन्तन मनन निदिध्यासन करने लगता है। परमात्मा या ब्रह्म का सर्वश्रेष्ठ नाम प्रणव (ओ३म्) है जिसकी वेद-उपनिषद्—दर्शनों में बड़ी महिमा गायी गयी है और इसे ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम प्रतिपादित किया है। हम भी उनका आदर करते हुए ओ३म् शब्द को ही प्रधान रूप से स्वीकार करते हैं।

ओ३म् शब्द की प्रशंसा में बहुत से प्रमाण हैं। अष्टाध्यायी में 'ओम् अभ्यादाने' सूत्र है। उपनिषद् में कहा है—'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यत् वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रह्मवीम्योमित्येतत्। कठ०, अ० १, वल्ली-२ मं० १५। सूत्र का अर्थ है कि मन्त्र के उच्चारण में प्रथम या कार्य विशेष में अथवा स्वीकार अर्थ में यज्ञादि कर्म में प्रथम 'ओ३म्' का उच्चारण करना चाहिए। उपनिषद् का कथन है कि चारों वेद जिस पद 'ओ३म्' को मानते हैं, तपस्वी लोग सब जिसे बोलते हैं या कहते हैं, और जिसकी प्राप्ति के लिए इच्छापूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करते हैं, उस पद को तेरे लिए संग्रहपूर्वक या विस्तारपूर्वक कहता हूं या उपदेश देता हूं या वर्णन करता हूं, वह 'ओ३म्' है।

इस ओ३म् को योगी शनैः-शनैः बुद्धि के द्वारा मन में जाप करे। तब मन्द-मन्द ध्वनि ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में व्यापक ब्रह्म को कम्पायमान सा कर देती है। तब बुद्धि के मण्डल में जो व्यापक ब्रह्म है वह चिन्तन रूप व्यापार से बुद्धि की लहरों या तरङ्गों के ऊपर तरङ्गित होता हुआ या स्थिर रूप में खड़ा हुआ अनुभव में आने लगता है या प्रतीत होने लगता है। उस वक्त बुद्धिस्थ आकाश भी कम्पायमान होने लगता है। पहले आकाश में प्रणव की हलचल होती है, फिर बुद्धि में हलचल ओ३म् शब्द की होती है, इसके पश्चात् ब्रह्म में भी होने लगती है। अथवा ब्रह्म अस्थिर या स्थिर रूप में अनुभव में आने लगता है।

इसको आप पुनः इस प्रकार समझें। ओ३म् शब्द का मानसिक उच्चारण करने से सर्वप्रथम ब्रह्मरन्ध्र का आकाश कम्पायमान सा होने लगता है, अपने शब्द रूपी गुण से, क्योंकि आकाश स्थूल है। वैसे तो शब्द भी स्थूल है आकाश से, अतः शब्द अपने उपादान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण को क्षुभित सा कर देता है और आकाश में सूक्ष्म सी लहरें उत्पन्न होने लगती हैं। इससे सूक्ष्म मन होता है, अतः मन प्रणव से प्रतिबिम्बित होकर गतिशील हो जाता है और शब्द के प्रतिबिम्ब को बुद्धि के मण्डल में निर्णय के लिए या अर्थ के ज्ञान के लिए समर्पण कर देता है। उस समय उस भावनात्मक सूक्ष्म ओ३म् शब्द से बुद्धि तरङ्गित हो जाती है और शब्द भी सूक्ष्म रूप में उसमें घुलमिल जाता है और वह अपने अर्थ ब्रह्म के साथ टकराने लगता है। उस समय ब्रह्म ज्ञान रूप अर्थ बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने लगता है। यहां पर योगी को ब्रह्मज्ञान बुद्धि में बिम्ब-बिम्बी भाव से प्रत्यक्ष रूप में अनुभव होने लगता है। यहां ब्रह्म का बुद्धि में भेदाभेद रूप से प्रत्यक्ष हो जाता है। यह मन साथ में होने से इस पर भी प्रतिबिम्ब या आभास पड़ने लगता है।

शंका—क्या आप निराकार का भी आभास पड़ना मानोगे ?

समाधान—वास्तव में निराकार नाम का कोई पदार्थ ही संसार में नहीं है। जब कोई पदार्थ सत्य रूप में है तो उसका कुछ न कुछ रूप तो आपको मानना या कल्पना करना ही होगा। अतः यहां भी भगवान् का या ब्रह्म का रूप अवश्य होता है। परन्तु उसके समान और उपमा वाला दूसरा पदार्थ सादृश्य ज्ञान वाला नहीं है कि जिसकी उपमा देकर समझा सकें। अतः इस समाधि की गहन अवस्था में जो भगवान् का रूप बुद्धि में देखने में आता है उसे वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता—'न शक्यते वर्णयितुं गिरा।'

और जो ब्रह्म में तरङ्गें सी बुद्धि के मण्डल में प्रतीत होती हैं, यह एक तरह से भ्रान्त्यात्मक दर्शन होता है, क्योंकि उस काल में बुद्धि में ब्रह्म तद्रूप हुआ होता है, क्योंकि वह 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' हो जाता है या भासने लगता है। बिना किसी पदार्थ के संयुक्त होने से केवल मात्र अकेला वह दर्शन का विषय नहीं बनेगा। और वह अकेला कभी रहा भी नहीं है, सदा संयोग में ही प्रतीत होता है। संयोगी पदार्थ एक-एक क्षण में इसके संयोग से परिणत होता रहता है। वह एक क्षण ही आप भले अलग होने का समझ लो, वरना वह कभी अपने व्यापक रूप स्वभाव को छोड़ नहीं सकता है। उससे भिन्न जो पदार्थ हैं, जिनके कारण-कार्य रूप अवस्था में उसका नित्य सम्बन्ध सदा बना रहता है, उनके साथ ही 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' होता या बनता रहता है। यह रूप परिवर्तनशील पदार्थों का होता है, न कि ब्रह्म का ब्रह्म सदा एक ही रूप है और वह भी समझ लो कि अनेक पदार्थों के भेद से अनेक रूप में भी भ्रान्ति प्रतीत होने लगती है। ये पदार्थों के रूपों के परिवर्तन होते हैं, ब्रह्म के नहीं। वह सदा एक ही रूप रहता है।

आकाश और ब्रह्म का व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध

ब्रह्म की व्याप्ति के लिए इससे अच्छा या बढ़कर और कोई दृष्टान्त नहीं है। अतः आकाश में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में ब्रह्म दर्शन होता है। सर्वसाधारण पुरुष को भी आकाश की महानता और अनन्तता देखने में आ रही है। जब केवल आकाश का दृष्टान्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्म की व्यापकता के लिए देते हैं तो मोटे रूप से सब की समझ में यह दृष्टान्त आ जाता है, भले ही सर्वसाधारण को आकाश में ब्रह्म न मिले या देखने में न आवे। परन्तु बुद्धिमान् योगी या विद्वान् को इस दृष्टान्त की बात खूब अच्छी तरह समझ में आ जाती है और सूक्ष्म रूप में ब्रह्म की व्याप्ति को भी समझने लगता है, क्योंकि आकाश में शब्दों की उत्पत्ति होते देखता है। अतः इतने बड़े विभु आकाश में सिवाय सर्वव्यापक चेतन ब्रह्म के शब्दों की उत्पत्ति में और कौन इतना बड़ा महान् पदार्थ हो सकता है जो सर्वत्र आकाश में शब्द उत्पन्न करने में संयोग या सन्निधान मात्र से निमित्त कारण हो? इन दोनों में, आकाश और ब्रह्म में, सूक्ष्मता और अनन्तता के नाते से कुछ समानता भी देखने में आती है। सर्वव्यापक ब्रह्म को सिद्ध करने के लिए और कोई पदार्थ भी आकाश के समान देखने में नहीं आता है और खोजने से भी नहीं मिलता है जिससे कि किञ्चित् सादृश्य हो। वैसे तो आकाश से भी सूक्ष्म इसका उपादान कारण शब्द तन्मात्रा या सूक्ष्म भूत आकाश है, परन्तु वह सर्वसाधारण व्यक्ति के देखने या ज्ञान का विषय नहीं बनता है। ऐसे व्यक्ति के लिए तो यह दृश्यमान स्थूल आकाश ही दृष्टान्त हो सकता है, जिसे यह प्रत्यक्ष रूप में देख सकता है।

वैसे इन दोनों में बहुत अन्तर है। ब्रह्म चेतन है और आकाश जड़ है। कुछ स्थूलता और सूक्ष्मता का भी अन्तर है। व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध रूप का भी अन्तर है। आकाश सावयव है और ब्रह्म निरवयव है। इन भेदों और अन्तर के होते हुए भी आकाश के सदृश अन्य कोई दृष्टान्त या उदाहरण नहीं मिलता है।

इस ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में भी ब्रह्म की व्यापकता है, और आकाश से बुद्धि सूक्ष्म भी है। यहां दो पदार्थों का संयोग बुद्धि और ब्रह्म का है, वह भी अव्यक्त शब्द को उत्पन्न करने लगता है क्योंकि शब्द की उत्पत्ति दो पदार्थों के संयोग से होती है। अव्यक्त शब्द की भी कुछ न कुछ ध्वनि तो होती ही है। अतः बिना प्रणव उच्चारण के भी दोनों के संयोग से अव्यक्त शब्द तो उत्पन्न होगा ही, चाहे शब्द व्यक्त हो अथवा अव्यक्त हो। वह अव्यक्त शब्द भी ध्वनि पैदा करके ब्रह्म को जाग्रत सा बना देगा या अत्यन्त सूक्ष्म रूप में बुद्धि प्रदेश में ब्रह्म के समीप कुछ न कुछ हलचल तो हो ही जायेगी और ब्रह्म दर्शन बुद्धि के दर्शन का विषय बन जायेगा।

शंका ---बिना प्रणव के बुद्धि का जो ब्रह्म के साथ संयोग है, और दोनों के संयोग से ब्रह्मानुभूति होती है, तब तो अव्यक्त शब्द भी सार्थक हो गया।

समाधान---वह जो बुद्धि के और ब्रह्म के संयोग में अव्यक्त शब्द उत्पन्न होता है, यह बहुत सूक्ष्मदर्शी योगी के लिए भी व्यक्त ही हो जाता। वास्तव में सब शब्द सार्थक हो सकते हैं, यदि उनका सम्बन्ध या अर्थ मनुष्य की या योगी की समझ में आ जाये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्विकल्प समाधि में भी वह अव्यक्त शब्द योगी के लिए सार्थक हो गया क्योंकि इसने ब्रह्म को प्रत्यक्ष करा दिया या ब्रह्म के प्रति ज्ञान का हेतु बन गया। एक प्रकार से योगी ने अव्यक्त शब्द को भी व्यक्त और सार्थक बना दिया ब्रह्म ज्ञान के प्रति।

सब शब्द सार्थक हो सकते हैं, यदि मनुष्य या योगी के द्वारा उनके अर्थ का निर्माण हो जाये। वह अर्थ फिर मनुष्य के व्यवहार में आने लगता है और सार्थक बन जाता है। जब तक शब्द का अर्थ निर्माण नहीं होता या समझ में नहीं आता, तब तक वह अव्यक्त या निरर्थक ही रहता है। विश्व में ऐसे असंख्य शब्द पड़े हैं। निरर्थक शब्द भी आकाश में पड़े रहते हैं और सार्थक भी। सार्थक व्यवहार में आते रहते हैं, अव्यक्त निरर्थक आकाश में पड़े या विचरते रहते हैं। इनकी सार्थकता मनुष्य ही बनाते हैं। बुद्धि और ब्रह्म के संयोग से जो शब्द उस काल में पैदा होते हैं वे बुद्धि में क्रिया बनाये रखते हैं।

जब से बुद्धि के साथ आत्मा का संयोग हुआ है तब से इसमें गति का अभाव नहीं हुआ। इसमें शब्द या संस्कार २४ घण्टे बने रहते हैं। बुद्धि और ब्रह्म का संयोग यहां अनित्य है। जब से यह स्थूल शरीर उत्पन्न हुआ है इसमें बुद्धि का संयोग बना ही रहता है और इसमें शब्द और संस्कार उत्पन्न होते ही रहते हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-समाधि में और भविष्य में जीवन पर्यन्त बने ही रहेंगे।

स्थूल शरीर के विनाश होने पर सूक्ष्म शरीर के साथ में बुद्धि भी धर्माधर्म संस्कारों को छोड़कर चली जायेगी। सूक्ष्म शरीर के साथ में मन और बुद्धि का संयोग भी गति कर्म ज्ञान का हेतु बना रहता है। जहां-जहां ये दोनों मन और बुद्धि जायेंगे वहां-वहां इन्हें आत्मा परमात्मा का संयोग प्राप्त होगा। बुद्धि तथा मन वहां गतिशील बने रहेंगे। जब कभी बुद्धि प्रलय काल में अपने उपादान कारण समष्टि बुद्धि में पहुंचेगी, तब इसका कार्य या कर्म तथा कर्तव्य भी समाप्त हो जायेगा। बुद्धि और ब्रह्म की व्याप्ति में भी बुद्धि में ज्ञान कर्म बने रहते हैं।

शंका—क्या बुद्धि बिना मन के भी ब्रह्म के साथ मिलकर कुछ चिन्तन करती है?

समाधान—बिना मन के अकेले बुद्धि में कुछ चिन्तन रूप कर्म तो भेदात्मक नहीं होना चाहिए। बुद्धि ज्ञानप्रधान है और मन कुछ कर्मप्रधान है। कर्म और ज्ञान का सदा सम्बन्ध रहकर ही इनके व्यापार चलते हैं। इनका सम्बन्ध नित्य भी और अनित्य भी होता है। जब बुद्धि ब्रह्म के साथ चिपकती है तब मन इसके पृष्ठ भाग में संयुक्त हुआ इसे कर्म करने रूपी धक्के देता है। अत्यन्त समीपवर्ती होने से बुद्धि आगे रहकर ब्रह्म ज्ञान का आनन्द लेती रहती है परन्तु सम्बन्ध रहता जरूर है। जब प्रलय काल में मन अपने उपादान कारण अहंकार में लीन होगा, तब बुद्धि अकेले स्वतन्त्र हो जायेगी और फिर वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी अपने उपादान कारण में लीन होने जायेगी। बुद्धि का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध हो जाने पर भी इसमें सूक्ष्म परिणाम क्रम बना रहता है। ज्ञानप्रधान होने से हर समय ज्ञानात्मक परिणाम इसमें होता रहता है। यह परिणाम विकास का नवीनता से पुराणता और पुराणता से पुनः नवीनता का हेतु बनता रहता है। यह ज्ञानात्मक परिणाम ब्रह्म साक्षात्कार का हेतु बनता है। उस काल में ज्ञानात्मक सूक्ष्म शब्द उत्पन्न होते रहते हैं। बुद्धि स्वयं ही ब्रह्म ज्ञान में हेतु होती है और इसके संयोग में जो ब्रह्म की व्याप्ति है वह उसके ज्ञान या साक्षात्कार में निरन्तर सहायक बनी रहती है।

वैसे तो ब्रह्म की व्याप्ति मन इन्द्रियों में है, परन्तु एकदेशी पदार्थों में तो क्रमपूर्वक ही अनुभव होगा। यदि विभु सी ध्यान की दृष्टि डाली जाये तब एककालावच्छेदेन भी व्यापकता का अनुभव होने लगता है। परन्तु वहां भी क्रम सूक्ष्म रहता है। तब प्रत्येक पदार्थ क्रमपूर्वक अनुभव होता चला जाता है।

यहां इन्द्रियों में प्रधानता कर्णेन्द्रिय की है, और शब्द का सम्बन्ध इसमें सर्वप्रथम होता है, क्योंकि अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा प्रधान रूप से शब्द का सम्बन्ध कर्णेन्द्रिय के साथ होता है। इस इन्द्रिय का सम्बन्ध भी ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में है। बाहर से जो शब्द कर्णेन्द्रिय पर आकर गिरता है, या जो शब्द अन्दर हृदय या नाड़ियों की धड़कन के होते हैं, इनका आघात रूप सम्बन्ध कर्णेन्द्रिय पर पड़कर ज्ञान होता है। अतः इसका आकाश भी ब्रह्मरन्ध्रस्थ ही जानना चाहिए।

ब्रह्मरन्ध्रस्थ सत्वप्रधान आकाश में बुद्धि द्वारा ब्रह्मानुभूति

ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश की सात्विक अवस्था में जब योगी सत्व बुद्धि द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार करता है, उस काल में बुद्धि के मण्डल में सात्विक भावना उत्पन्न होकर प्रणव शब्द को या किसी अन्य छोटे मन्त्र को—जैसे छोटा शब्द 'अस्ति' क्रिया है अथवा बहुत अक्षरों के बड़े मन्त्र को जैसे गायत्री मन्त्र है—बुद्धि द्वारा साधन या माध्यम बनाता है। जो शब्द या मन्त्र योगी को प्रिय हो उससे पुनः-पुनः अभ्यास द्वारा ब्रह्म का आह्वान करता है। इन शब्दों के द्वारा जो ब्रह्म का पुनः-पुनः आह्वान है इसे अभ्यास कहते हैं।

यहां उपनिषद् में वर्णित गायत्री मन्त्र के ध्यान बिन्दु द्वारा जप का फल कहते हैं—अजपा नाम गायत्री योगीनां मोक्षदा सदा। यस्यां संकल्पमात्रेण नरः पापैः विमुच्यते॥ अनया सदृशी विद्या अनयः सदृशो जपः। अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति॥ येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयंम्॥

अर्थ सरल है—ध्यान युक्त गायत्री योगी को मोक्ष करने वाली होती है। इतना महान् फल ध्यान में शब्द की आकृति बना कर करने से होता है। इसके समान विद्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं, इसके समान और कोई जाप नहीं। इसके समान अन्य पुण्य कर्म नहीं, न भविष्य में होगा। जिस विधि से भी इस गायत्री मन्त्र के मार्ग में चलेगा, उसमें ही सफलता प्राप्त होगी।

शंका—क्या भगवान् उसकी आवाज को सुनता है और उससे प्रभावित होता है ?

समाधान—इसका समाधान तो यह है। सुनना एकदेशी में, शरीरधारी में होता है और कर्णेन्द्रिय से होता है। वह ब्रह्म एकदेशी तो है नहीं जो आप की बात को सुनकर मान जाये या प्रभावित होकर दया कर दे। योगी की बुद्धि पर जो आवरण पड़ा था, पुनः-पुनः नाम का घोटा लगाने से बुद्धि में निर्मलता आने लगती है। उसके जो अन्य आवरण थे वे शनैः-शनैः बुद्धि से हटने लगते हैं। केवल नाम का ही धाराप्रवाह आलाप बनता है। जैसे किसी मैले बर्तन को मिट्टी राख अथवा किसी क्षार से बार-बार रगड़ा जाये तो वह पालिश सी उस पर होकर उसमें चमक आ जाती है, उसी प्रकार बुद्धि पर ब्रह्म का अभ्यास या प्रतिबिम्ब अथवा छाया सी पड़ने लगती है। उससे बुद्धि सत्त्व प्रधान निर्मल हो जाती है और आह्वान का शब्द भी अपना प्रभाव डालता है। इससे भी सत्त्व बुद्धि और सत्त्व आकाश मण्डल में शब्द भी सत्त्व प्रधान होकर आकाश मण्डल में ज्ञान रूप में चमकने लगता है। अतः बुद्धि निर्मल प्रज्ञालोक वाली ऋतंभरा हो जाती है।

अज्ञान का आवरण हटकर प्रज्ञालोक बुद्धि में प्रकाश और यथार्थ ज्ञान को कराने वाली ऋतंभरा बुद्धि बन जाती है। इस पर भगवान् का प्रतिबिम्ब या आभास निर्मल पड़ता है। ब्रह्म के विषय में जो अनेक आवरण और भ्रान्तियां थीं वे सब काफूर हो जाती हैं।

अब इस बुद्धि में जो आकाश सत्व प्रधान है वह भी शुद्ध पवित्र हो जाता है। इसमें यदि शब्द भी उच्चारण करेंगे तो वह भी स्वच्छ निर्मल पवित्र भासने लगता है और यह शब्द ही ब्रह्म ज्ञान का प्रकाशक या द्योतक हो जाता है क्योंकि शब्द अर्थ ज्ञान का सम्बन्ध होता है। तत्पश्चात् ब्रह्म भी निर्विकार स्वच्छ पवित्र स्फटिक मणि की तरह धवल होकर चमकने लगता है, और स्वच्छ आभास रूप में अनुभव होने लगता है। यह मन्त्र जाप का बड़ा भारी सर्वोत्तम फल आपको बताया गया है और यह कल्याण-कारी पावन करने वाला और मोक्ष देने वाला होता है।

त्रिगुणात्मक मनुष्य या योगी के लक्षण

इसमें शारीरकोपनिषद् प्रमाण है—अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमपरिग्रहः। अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं सन्तोषमार्जवम्। अनभिमानित्वमदम्भित्वं आस्तिकत्वमहिन्सता। एते सर्वे गुणा ज्ञेयाः सात्विकस्य विशेषतः॥ अहं कर्त्ताऽस्म्यहं वक्ताऽभिमानवान्। एते गुणःराजस्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रोच्यन्ते ब्रह्मवित्तमैः ।। निद्रालस्यमोहरागौ मैथुनं चौर्यमेव च । एते गुणास्तामसस्य प्रोच्यन्ते ब्रह्मवित्तमैः ।। मं० १-२-३-४ ।

सत्यं ज्ञानं सात्विकम् । धर्मज्ञानं राजसम् । तिमिरान्धं तामसम् ।।

भावार्थ—अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह-क्रोध न करना-गुरुसेवा-शौच-सन्तोष-सरलता-अभिमानरहित-दंभरहित-आत्मविश्वास-हिंसा रहित होना—ये गुण सात्विक योगी के हैं। अहंकारी, वक्तापन का अभिमान या अभिमानी होना—ये गुण रजोगुणी पुरुष के हैं। निद्रा-आलस्य-मोह-राग-मैथुन-चोरी कर्म—ये तमोगुणी पुरुष के गुण हैं। ये ज्ञानी पुरुषों ने मनुष्यों के बताये हैं। सत्य ज्ञान सात्विक में, धर्म ज्ञान राजसिक में, अन्धकार तमोगुणी में वर्तमान रहते हैं।

ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में जो स्वच्छ निर्मल सत्वप्रधान बुद्धि है उसने ब्रह्म से स्वरूप को भेद और अभेद रूप में दर्शन कराया है। यह सर्वोत्तम ब्रह्म का प्रत्यक्ष है और इस प्रदेश में शब्द के माध्यम से ही साक्षात्कार हुआ है।

रजःप्रधान ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में शब्द द्वारा बुद्धि के माध्यम से ब्रह्म साक्षात्कार

रजः प्रधान अवस्था में जो योगी ब्रह्म को समाधि का विषय शब्द द्वारा बनाता है वह शब्द या मन्त्र का उच्चारण बलपूर्वक करता है अथवा दीर्घ स्वर से उच्चारण करता है। तब ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश विशेष में क्षोभ उत्पन्न होकर आकाश में विशेष तरङ्गें उत्पन्न हो ईश्वर को भी कम्पायमान कर देती हैं। बुद्धि में तरङ्गें उत्पन्न होने से उसमें उत्पन्न हुए सूक्ष्म शब्द ब्रह्म में, जो कि बुद्धि में व्याप्त है, तरंङ्गें या लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। ब्रह्म में भी तीव्र क्षोभ उत्पन्न होने लगते हैं। यह दर्शन भी भ्रान्त्यात्मक होता है। इसी कारण से बुद्धि में भेदाभेदात्मक ज्ञान होने लगता है। कभी ब्रह्म के स्वरूप का बोध होता है कभी बुद्धि और आकाश का, एवं कभी शब्द का ज्ञान होने लगता है। ब्रह्म के स्थूल या सूक्ष्म होने की कोई बात नहीं है। शब्द और ब्रह्म के सम्बन्ध से क्षोभ होते हैं, ब्रह्म में नहीं, क्योंकि ब्रह्म तो निष्क्रिय और असङ्ग है।

शंका—शब्द द्वारा ही अनुभूति होती है, या बिना शब्द के भी ब्रह्म-साक्षात्कार होता है ?

समाधान—शब्द द्वारा ही अनुभूति होती है। जब बिना मन्त्र या शब्द उच्चारण किये ब्रह्म ध्यान या समाधि द्वारा अनुभव होता है तब केवल बुद्धि को ही माध्यम बनाकर ब्रह्म ज्ञान होता है। परन्तु बुद्धि और ब्रह्म के संयोग में कुछ बहुत सूक्ष्म अन्तर दूरी का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है। क्योंकि वे दो पदार्थ हैं और दोनों का संयोग भी है और व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध भी है। अतः दोनों के मध्य में कुछ, व्यवधान भी मानना होगा। यह भी सूक्ष्म रूप में दो पदार्थों का संयोग है। तब कुछ न कुछ सूक्ष्म शब्द ब्रह्म और बुद्धि के बीच में होंगे।

इतने बड़े अन्तर में भी देश, काल और आकाश का अंश या फरक मानना होगा। भले ही हमारा ध्यान इन छोटी बातों पर न जाये परन्तु ये होते तो जरूर हैं। इसमें दिशा काल आकाश की सूक्ष्मता प्रतीत होती है, कि ये तीनों कितने सूक्ष्म हैं। अतः इतनी सूक्ष्म अवस्था में भी ब्रह्म की अनुभूति योगी को होती है। बुद्धि के अन्तराल में या दोनों के मध्य में अथवा ब्रह्मचिन्तन में सूक्ष्म शब्द उत्पन्न होते हैं, जिनका अनुमान करना भी असंभव सा ही होता है। शब्द भी ब्रह्म का स्पर्श करते हैं। यह स्पर्श ही ब्रह्म का बोध कराता है। एक प्रकार से वे शब्द ज्ञान रूप में ही होते हैं।

उस अवसर में बुद्धि में ज्ञान रूप शब्दों के रूप में परिणाम क्रम होता है। वह ब्रह्म ज्ञान का कारण बनता है। उस समय बुद्धि में सत्व की अपेक्षा रजोगुण धर्म होने से विशेष चमक दमक चेतन में और बुद्धि में प्रतीत होती है, चाहे यह भ्रान्त्यात्मक होती है, जैसे ब्रह्म ही विशेष रूप में चमक युक्त या प्रकाश रूप या ज्योति युक्त रूप में अनुभव में आ रहा हो। ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में शब्द द्वारा बुद्धि में प्रखरता आती है। बुद्धि के आलोक से शब्द भी आलोकित होकर ब्रह्म को भी तद्रूप बना देते हैं। ब्रह्म भी 'ज्योतिषां ज्योतिः' रूप प्रत्यक्ष देखने में आने लगता है।

तमःप्रधान ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में शब्द और बुद्धि के माध्यम से आत्मा की अनुभूति

तमःप्रधान की अवस्था में कभी-कभी अभ्यास काल में आलस्य तन्द्रा निन्द्रा भी आ जाया करती है। परन्तु व्युत्थान काल में अभ्यास जारी रहता है। अभ्यास काल में भी गुणों का परिवर्तन होता रहता है। जैसे एक योगी को कई घण्टे अभ्यास में बैठना है। अभ्यास विशेष न होने से थकावट हो जाती है। इस अवस्था में गुणों का परिवर्तन तो होता ही रहता है। बहुत दीर्घ काल तक अभ्यास न होने से भी थकावट हो जाती है। कभी-कभी ब्रह्म साक्षात्कार की अवस्था में भी व्युत्थान और निरोध होने लगता है। कभी-कभी तन्द्रा भी आ जाया करती है। कभी कुछ मिनट ब्रह्मानुभूति होती है। कुछ सेकेंड तन्द्रा का झटका लग जाता है। जब सावधान होता है तो 'समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता' होती है या मिलती जुलती होती है।

व्युत्थान में प्रतीत होने लगता है जैसे आनन्द के सरोवर में डुबकी लगा कर आया हो। उस काल में ब्रह्म के अनुभव का ठीक स्मरण भी होता है। पुनः सावधान होकर उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आनन्द के सरोवर में या समुद्र में प्रवेश कर जाता है। समुद्र की उपमा तो केवल बड़ा और महान् होने से दी जाती है, परन्तु मधुर जल तो केवल सरोवर का ही होता है। अतः सरोवर की उपमा अधिक श्रेष्ठ है। ये बुद्धि और आकाश में उत्पन्न हुए शब्द ब्रह्म के साथ टकराकर ज्ञान के रूप में परिणत होते हैं। जैसे ब्रह्म के साथ टकराकर ज्ञान के रूप में परिणत हो रहे हों ऐसा योगी को अनुभव हुआ करता है। कभी सत्व की अवस्था आ गयी, कभी रजोगुण की अवस्था आ गयी और कभी तमस् का प्राधान्य हो गया। ये अवस्थाएं बदलती रहती हैं। बुद्धि पर अधिकार न होने से परिणाम होता रहता है स्वाभाविक रूप में, क्योंकि बुद्धि परिवर्तनशील है। परन्तु वहां लक्ष्य चेतन ब्रह्म के ही ज्ञान का होता है। व्युत्थान और निरोध क्रमपूर्वक चल ही रहा होता है। और गुणों का परिवर्तन भी स्वभाविक होता रहता हैं।

इसके पश्चात् योगी मनस्थ मण्डल के आकाश में प्रवेश करता है। ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश के मण्डल में प्रवेश योगी मन को माध्यम बना कर करता है यह स्थान बुद्धि के मण्डल से बाहर और उससे कुछ स्थूल है। इस मन के स्थूल होने से आकाश भी कुछ स्थूल सा भासने लगता है। मनस्थ मण्डल के आकाश में मन में प्रणव या मन्त्र जैसे ओम् नमः शिवाय, ओ३म् तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु, अथवा तत् सत् ब्रह्मणे नमः मन्त्रों का जाप प्रारंभ करता है। उस काल में और उस देश में शब्द उत्पन्न होकर मन और ब्रह्म को कम्पायमान कर देता है।

यदि योगी ने ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश को देख लिया है, और उसमें मन्त्र के द्वारा मानसिक जाप करता है, तब वहां उत्पन्न हुए मन में शब्द ब्रह्म के सन्निधान में होने से उस ब्रह्म को भी गतिशील सा बना देते हैं। जिस योगी ने एक बार ब्रह्म साक्षात्कार कर लिया हो, उसे तो कभी भी भ्रान्ति नहीं होती है। वरना ब्रह्मरन्ध्र में बहुत से पदार्थ होने से भ्रान्ति हो जाती है कि वास्तव में ब्रह्म का कौन सा रूप है।

अब सूक्ष्म पदार्थ से नीचे उसके ज्ञान की ओर आ रहे हैं। यदि योगी को मन का सामान्य ज्ञान हो, और वह क्रमपूर्वक पदार्थों का ज्ञान करता आ रहा हो, गुरु मुख से सुन कर कुछ ज्ञान भी प्राप्त किया हो, तो उसे मन के विज्ञान और कार्यकलाप में भ्रान्ति नहीं होती है। वरना भ्रान्त और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाया करता है। यह ब्रह्मविद्या भी गुरु के पास दीर्घकाल तक निवास और सेवा से प्राप्त होती है। उत्तंक ब्रह्मचारी को गौतम के पास ९० वर्ष में प्राप्त हुई थी। औपमन्यु को ४५ वर्ष में गौतम के पास निवास और सेवा से प्राप्त हुई थी। सत्यकाम जाबाल को भी गुरु की बहुत सेवा और गौवें चराकर प्राप्त हुई थी। नचिकेता को भी गुरु की बहुत सेवा करके प्राप्त हुई थी। सुखदेव मुनि जनक के द्वार पर २१ दिन खड़े रहकर तत्त्व ज्ञान प्राप्त कर सके थे। इस तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़ी कुर्बानी करनी पड़ती है। बहुतों को तो कई जन्म लग जाते हैं, उनमें मैं भी एक हूं। कम से कम दो जन्म तो मुझे भी ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके साधना करते हो गये हैं। ७५ वर्ष तो इस जन्म में भी कठिन साधना कर चुका हूं।

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये:' ये गीता के वचन हैं। अध्यात्म-ज्ञान सहस्रों में कोई विरला आत्मा-सिद्धि या तत्त्व ज्ञान प्राप्त कर पाता है।

सत्वप्रधान ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश के मन में सात्विक अवस्था होने पर ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति

शब्द या मन्त्र के द्वारा, सत्वप्रधान जब नील श्वेत वर्ण का प्रकाश मन में हो, तब ओ३म् शब्द का मानसिक जाप करें। तब कुछ काल के अभ्यास से मन में शान्ति का प्रभाव सा बहने लगता है। तब मन्द-मन्द शब्दों की ध्वनि नील वर्ण के मन के प्रकाश में उत्पन्न होकर ब्रह्म के साथ शब्दों में मधुर आलिंगन सा होने लगता है। शब्द के द्वारा ब्रह्म को अपने ज्ञान का विषय योगी बनाता है। तब ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने लगती है। सात्विक नील श्वेत वर्ण के प्रकाश में ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने लगती है। सात्विक नील वर्ण के श्वेत प्रकाश में गति या कम्पन सूक्ष्म रूप में बने रहते हैं। जब इस मन का सम्बन्ध ब्रह्म से करता है, उस वक्त पुनः-पुनः ब्रह्म के संयोग से भी मन और ब्रह्म के बीच में सूक्ष्म शब्दों की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म और मन का संयोग होने से बुद्धि के द्वारा ब्रह्म को अपने ज्ञान का विषय बनाया गया है। सर्वप्रथम बुद्धि में प्रेरणा हुई, उसने मन को प्रेरित किया, मन जाकर ब्रह्म के साथ संयुक्त हुआ। इस संयोग में भी मन में सूक्ष्म-सूक्ष्म शब्द उत्पन्न हुए, यहां दो पदार्थों में सूक्ष्म शब्द उत्पन्न हुए। प्रथम बुद्धि में और पश्चात् मन में उत्पन्न होकर ब्रह्म साक्षात्कार का विषय बन गये। ये शब्द ज्ञान के रूप में गमन करते हैं या क्रियाशील होकर ज्ञान रूप में बोध कराते हैं। तब ये शब्द यहां ब्रह्म ज्ञान के साधन रूप में हुए।

शंका—आप शब्दों के लिए बहुवचन का प्रयोग क्यों करते हैं, जब कि एक शब्द को आप उच्चारण करके ज्ञान का साधन बनाते हैं? शब्द तो एक ओ३म् ही होता है?

समाधान—शब्द शब्द का आरंभक होता है, और शब्द शब्द को उत्पन्न करते हुए आगे आगे बढ़ता है। उस पदार्थ के पास पहुंचता है जिस को आह्वान किया गया है। वहां पहुंचने में कुछ काल लगेगा। उस देश में पहुंचने के लिए शब्द को अवकाश चाहिए, और फिर ब्रह्म के साथ संयोग भी जाकर होना चाहिए। इस थोड़े से काल में शब्द को दिशा काल अवकाश की आवश्यकता होगी। इतनी तीक्ष्ण बुद्धि और मन होना चाहिए कि इतने काल में दिशा काल आकाश शब्द और ब्रह्म का ज्ञान हो जाये। जब मन ब्रह्म के साथ संयुक्त होगा, तब इसमें उत्पन्न सूक्ष्म शब्दात्मक वृत्ति भी तो बीच में उत्पन्न होगी ब्रह्म साक्षात्कार के लिए। एक प्रकार से इतने अल्पकाल में कर्म ज्ञान गति दिशा काल आकाश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और ब्रह्म का ज्ञान अनुभव में आता है। कितनी तीव्र गति मन की है! है तो यह क्रम-पूर्वक, परन्तु एककालावच्छेदेन प्रतीत होती है, जैसे मन एक प्रकार से विभु सा ही हो। परन्तु इतना छोटा मन ब्रह्मरन्ध्र में रहने वाला विभु कैसे हो सकता है? कितनी द्रुत गति यहां मन की और शब्दों की है!

अतः यहां ब्रह्म ज्ञान में हेतु शब्द ही ज्ञान रूप कर्म करेगा, ज्ञान और कर्म का सम्बन्ध या अन्योऽन्याश्रय भाव सम्बन्ध है। मन में ब्रह्म का भेदाभेदरूपात्मक ज्ञान भी साथ में होता है। इस अवसर में एकदेशी मन होते हुए भी, विभु की तरह एक क्षण में इतने पदार्थों को भेदन करता हुआ, देखता हुआ, अनुभव करता हुआ मन चलता है।

शंका—क्या मन ज्ञान करता है या कि इसके साथ बुद्धि ज्ञान करती है?

समाधान—बुद्धि की अपेक्षा मन में सामान्य ज्ञान होता है, क्योंकि बुद्धि भी साथ होती है और मन भी साथ होता है। ये दोनों ज्ञान और कर्म के रूप के साथ रहकर कार्य या व्यापार करते हैं, और तत्त्व ज्ञान का हेतु होते हैं। उपर्युक्त शंका का समाधान यह है कि एक ही शब्द के लिए भले ही वहां प्रणव (ओ३म्) एक शब्द है, क्योंकि बहुवचन या बहुत शब्द इसलिए प्रयोग किया है कि एक प्रणव में ही तीन अक्षर हैं और ये तीन अक्षर बहुत शब्द रूप ज्ञान के हेतु हो जाते हैं और शब्द को शब्द उत्पन्न करते हुए जा रहे हैं, इसलिए भी बहुवचन का प्रयोग किया है। प्रणव वहां तक पहुंचते हुए कई शब्दों को अर्थ सहित प्रकट करता है। एक शब्द के अनेक अर्थ भी होते हैं, इसलिए बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

बहुत से आचार्यों ने इसको विभु सा मानकर ही प्रयोग किया है, इसकी द्रुत गति को न समझकर। अतः इसकी महिमा अद्भुत है। एक काल में दशों इन्द्रियों के कर्म करता हुआ प्रतीत होता है। शब्द भी एकदेशी होकर विभु सा प्रतीत होता है। अमेरिका में हजारों मील दूर शब्द बोले जा रहे हैं और कुछ क्षण में भारत में सुनायी देने लगते हैं। टेलीफोन में बात करते समय बहुत दूर देश में साथ-साथ ही शब्द सुनायी देते हैं।

विषय चल रहा है ब्रह्मरन्ध्र के आकाशस्थ शब्द का, और मन का इसके अन्य भी साधन बताते हैं। दूर देश में बैठ कर कोई व्यक्ति ओ३म् का उच्चारण करता है, उसे योगी अपने ध्यान का विषय बनाता है। तब बुद्धि द्वारा ब्रह्म ध्यान का विषय बनता है। वह बाह्य विषय भी अर्थ ज्ञान का विषय बन जाता है। यहां भी शब्द और अर्थ ज्ञान मिलकर बुद्धि का विषय ब्रह्म को कराते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी साधन ब्रह्म ज्ञान के हैं। शब्द को न लेकर केवल अर्थ को ही ध्यान का विषय बनावें। इसमें बिना शब्द के अर्थ ही विषय होगा। अर्थात् केवल ब्रह्म ही अर्थ रूप में विषय ज्ञान का हेतु होगा। ज्ञान साक्षात्कार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के रूप में बन कर ब्रह्म ज्ञान करा देगा। और अन्य भी विधि हैं। यथा—ध्याता और ध्यान का अभाव सा होकर केवल ध्येयाकार ही हो जाये, ध्यान और ध्याता का ज्ञान भान न रहे। ध्याता ध्येय में ही विलीन हो जाये। यहां पहुंचकर भेद की निवृत्ति हो जाती है।

शंका—क्या ऐसी भी स्थिति कभी हो सकती है कि जब आत्मा के साथ मन का सम्बन्ध तो रहे किन्तु ज्ञान भान मन बुद्धि के सम्बन्ध का अभाव सा हो जाये ?

समाधान—यह स्थिति निद्राशून्य समाधि में कुछ अंश में होती है, सर्वथा नहीं। वैसे तो गाढ़ निद्रा में भी कुछ स्थिति ऐसी आती है जब कि किसी का कुछ भी पता नहीं रहता। अथवा शून्य समाधि में भी सर्व प्रकार के ज्ञान का अभाव सा हो जाता है, उठकर कहता है मुझे भी पता नहीं रहा। निद्रा से और शून्य समाधि से उठने के पश्चात् कि मुझे कुछ भी पता नहीं रहा। पता न होना भी एक अनुमान है। अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक ही होता है। अतः निद्राशून्य समाधि में सुख, दुःख और अभाव रूप ज्ञान का अनुमान करता है। परन्तु सम्पूर्ण जीवन में ऐसी स्थिति कभी नहीं आती जब तक आत्मा का शरीर के साथ में सम्बन्ध है, कि सर्वथा वृत्ति का अभाव हो जाये। यह तो आत्मा और शरीर का सम्बन्ध विच्छेद होकर मरण पश्चात् अवस्था आयेगी, और यह अवस्था भी उस प्रलय काल की अवस्था में आयेगी जब अन्तिम मरण होगा। उस समय हम और आप तथा अन्य कोई भी न होगा। और अन्तःकरण ज्ञान का साधन भी न होगा।

रजःप्रधान ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में शब्द और मन के द्वारा आत्मा या परमात्मा की अनुभूति

ब्रह्मरन्ध्र के आकाश में रजःप्रधान शब्द से मन में योगी बलपूर्वक दीर्घ स्वर से उच्चारण करता है शब्द या मन्त्र को। उस काल में ब्रह्म में क्षोभ सा प्रतीत होने लगता है, जैसे लोक में आकाश में शब्द की गूंज होकर क्षोभ हो जाता है।

इस प्रकार के अभ्यास के तरङ्गित हुआ ब्रह्म भी योगी के दर्शन का विषय बन जाता है। कभी योगी मन्त्र को जोर से उच्चारण करता है या भाषण करता है, उस वक्त भी समाधिस्थ सा हुआ या होकर बोलता है। साथ में ब्रह्माकार वृत्ति बनी रहती है। मुझे भी अनेक बार प्रवचनों में ऐसा अनुभव हुआ है। उस समय ऐसे लगता है कि जैसे ब्रह्म को सामने देखकर बोल रहा हूं। साथ-साथ में ब्रह्म के दर्शन भी होते रहते हैं और आनन्द भी आता रहता है या होता रहता है। ऐसी स्थिति हो जाया करती है।

कभी-कभी ऐसा भी देखने में आया है कि समाधि की अवस्था में किन्हीं बाह्य कारणों या क्षोभों से एक-एक क्षण में ब्रह्म दर्शन भी होते रहते है। उस काल में क्षण-क्षण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में व्युत्थान और निरोध भी होता रहता है। जिस योगी ने एक बार ब्रह्म दर्शन कर लिया है, वह तो प्रत्येक अवस्था में कुछ क्षण में ही ब्रह्म दर्शन भी कर सकता है।

जब योगी रजःप्रधान आकाश में रजःप्रधान मन से रजःप्रधान शब्द को ब्रह्मरन्ध्र में मन के द्वारा ब्रह्म का सम्पर्क बनाता है, तब दोनों में संयोग के अन्तराल में सूक्ष्म शब्दों के द्वारा ब्रह्म का स्पर्श होता हुआ प्रतीत होने लगता है। उस अवसर में मन्त्र या ओ३म् शब्द के जाप से उन शब्दों से चेतन ब्रह्म में क्षोभ या कम्पन सा प्रतीत होने लगता है। उस अवसर में चेतन ब्रह्म रूपी समुद्र में विशाल सी तरङ्गें प्रतीत होने लगती हैं। आकाशस्थ शब्द का और मन का ब्रह्म के साथ संयोग होने से नील वर्ण के प्रकाशयुक्त समुद्र जैसे महान् में गोते से लगने लगते हैं। अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होने लगती है। जैसे नील वर्ण के मधुर जल युक्त समुद्र में आनन्द के गोते लगा रहा हूं। उस काल में जो आनन्द और शान्ति का अनुभव होता है उसका वाणी से वर्णन नहीं हो सकता, भले ही रजःप्रधान अवस्था होती है। योग के तीव्र ध्यान बल से भी चेतन ब्रह्म में तरङ्गें या लहरें भी उठकर हर्ष और आनन्द को बढ़ाया करती हैं। यह ब्रह्म का मन के साथ भेदाभेदात्मक सम्बन्ध होता है। यहां उपनिषद् मन्त्र प्रमाण है—'प्रणवो हि धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्॥' अर्थ—ओम् को धनुष बनावे, आत्मा को तीर बनावे, और तन्मय होकर उसे वेधन या साक्षात्कार करना चाहिए।

तमःप्रधान ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में शब्द और मन के द्वारा ब्रह्मानुभूति

तमःप्रधान ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में मन और शब्द के द्वारा धुंधले से वर्ण का ब्रह्म दर्शन होता है। जब योगी ब्रह्मरन्ध्र में शब्द के द्वारा मन से ब्रह्म साक्षात्कार करता है तब तमः प्रधानावस्था में ज्ञान के लिए प्रयास करता है, भले ही उसमें आलस्य तन्द्रा निद्रा प्रमाद जैसी अवस्था क्यों न हो, क्योंकि ध्यान में लक्ष्य ब्रह्म का ही होता है। और समाधि में भी लक्ष्य ब्रह्म का ही होता है। तब भी ब्रह्म कभी-कभी झांकी के रूप में दृष्टिगोचर होता है या हो जाया करता है। वहां भी मन और ब्रह्म के संयोग से मन में उत्पन्न हुए ज्ञानात्मक शब्द ही दर्शन का हेतु बना करते हैं। ये सूक्ष्म से शब्द मन में ही उत्पन्न हुआ करते हैं। और उच्चारण और जाप भी मन में ही होता है। वैसी बहुत स्पष्ट अनुभूति होती ही नहीं, परन्तु होती अवश्य है। जैसे घोर अन्धकार की अमावस्या की रात्रि के समय आसमान में तारों की रोशनी हुआ करती है। यह आलोक भी कुछ पथ दिखाने वाला होता है। इसी प्रकार तमःप्रधान अवस्था में मन के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध होता है।

वह सम्बन्ध मध्यमालोक में भी सूक्ष्म शब्द मन और आकाश से उत्पन्न होकर परिणामात्मक गति और ज्ञान का हेतु भी शब्द ही होते हैं। अतः कोई भी पदार्थ और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थान ऐसा नहीं है जहां संयोग और शब्द उत्पन्न न हों और जहां ज्ञान का हेतु न हो। इस स्थान में चेतन सत्ता भी नील धूम्र वर्ण की अनुभव में आती है। वास्तव में चेतन सत्ता के ऊपर ये सब आवरण ही होते हैं। इन आवरणों को दूर करने या हटाने में योगी कठिन तप साधना अभ्यास करके इन्हें क्षीण करता है। योगी को महान् पुरुषार्थ करना पड़ता है। और अभ्यास द्वारा ब्रह्म की खोज करता है। फिर इसे निर्भ्रान्त ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

इस ब्रह्मरन्ध्र में बहुत से पदार्थ हैं। उन में ९० प्रकार की दिव्य ज्योतियों, ४५ प्रकार के सूक्ष्म प्राणों, १८ प्रकार के दिव्य शब्दों ने इस चेतन सत्ता को आच्छादित किया हुआ है। अतः "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये।" सहस्रों में कोई महानात्मा ब्रह्म ज्ञान कर पाते है।

प्रधान रूप में ब्रह्म ज्ञान के प्रति अन्तिम शब्द ही मुख्य हेतु होता है। एक प्रकार से ब्रह्म के सब से समीप शब्द ही होता है। कहीं शब्द को ही ब्रह्म भी कह दिया है। जिस पदार्थ के द्वारा हम ब्रह्म को जानना चाहते हैं वह शब्द को माध्यम करके ब्रह्म के पास पहुंचेगा। जब हम आकाश और ब्रह्म का व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध बनाते हैं, दोनों के बीच में आकाश में होने वाले शब्द एक प्रकार से ब्रह्म में ही उत्पन्न होते हैं। ब्रह्म को भी चलायमान या गतिशील बनाये रखते हैं। शब्दों की तरङ्गों पर ब्रह्म तरङ्गित होता हुआ दर्शन या ज्ञान का विषय योगी के लिए बन जाता है।

कर्णेन्द्रियस्थ आकाश ब्रह्मरन्ध्र में

यदि कर्णेन्द्रिय न हो तो उच्चारण किये गये शब्दों का ज्ञान कैसे होगा? जो जन्म से बधिर है वह दूसरों के कहे या उपदिष्ट शब्दों को सुनकर ज्ञान नहीं कर सकता है। न बोल ही सकता है। अतः शब्द ज्ञान के लिए कर्णेन्द्रिय ही प्रधान होती है। इस शब्द का उपादान कारण आकाश ही होता है। आकाश से उत्पन्न शब्दों को सुनने में यह कर्णेन्द्रिय ही समर्थ होती है। जैसे ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में बुद्धि और मन वर्तमान हैं। एतत् सम्बधी आकाश भी सात्विक राजस तामस भेद का होता है। इसी प्रकार कर्णेन्द्रियस्थ आकाश भी सात्विक राजस तामस भेद वाला होता है। यह भी ९ प्रकार का आकाश हो जाता है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द उत्पन्न होते हैं जो ज्ञान का कारण बनते हैं। यद्यपि इस कर्णशष्कुली का उपादान कारण पृथिवी है, क्योंकि यह जो कान इतने बड़े सिर के दोनों ओर देखने में आ रहे हैं यह गुरुत्व धर्म वाले पृथिवी से बने हैं, परन्तु इनमें जो शब्द सुनने की शक्ति है, इस शक्ति का उपादान कारण आकाश है और इसे ही वास्तव में कर्णेन्द्रिय कहते हैं जो आकाश में उत्पन्न हुए शब्दों को सुनती है। इन शब्दों को सुनने से आकाश की सार्थकता सिद्ध होती है। सर्व इन्द्रियों में कर्णेन्द्रिय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम है, और प्रधान भी है। इसका उपादान कारण आकाश है, यथा वेद मन्त्र है— 'सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रश्लोकं श्रूयासम्। अथर्ववेद, सू० १, मं० ४। अर्थ— (कर्णौ) दोनों कान (सुश्रुतौ) उत्तम सुनने वाले हों, (कर्णौ भद्रश्रुतौ) दोनों कान कल्याणकारी शब्दों को सुनें (भद्रश्लोकम्) कल्याणकारी स्तुति को मैं (श्रूयासम्) सुना करूं। इस मन्त्र में कर्णेन्द्रिय की स्तुति और गुणों का वर्णन किया है।

शंका--ब्रह्मरन्ध्र या अन्यत्र संसार अथवा शरीर में जो शब्द हो रहे हैं इन के सुनने में कर्णेन्द्रिय प्रधान है। शब्दों को सुनती है और ज्ञान भी कराती है। अन्य इन्द्रियां शब्द की बोधक इस प्रकार नहीं होती हैं जैसे कि कर्णेन्द्रिय ज्ञान कराती है। न ही ब्रह्मरन्ध्र में मन बुद्धि इस प्रकार स्थूल शब्दों को सुनने में समर्थ या बोधक होते हैं। वैसे बुद्धि में भी सूक्ष्म शब्दों का ज्ञान होता है, परन्तु वह एक प्रकार से अव्यक्त सा ज्ञान होता है। सर्वत्र सर्वसाधारण को वह सुनने या देखने में नहीं आता। परन्तु स्थूल कर्णेन्द्रिय से जो स्थूल शब्द सुनने में आते हैं वे तो मनुष्यों एवं अन्य प्राणियों के सुनने में आते हैं।

बुद्धि एवं मन में प्रादुर्भूत शब्द कर्णेन्द्रिय माध्यम से विषय बनकर केवल योगियों के ही ज्ञान का विषय बनते हैं। इस लिए ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे अत्यन्त सूक्ष्म होने से योगियों के ही ध्यान ज्ञान का विषय बनते हैं। इसलिए ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश के शब्दों और कर्णेन्द्रियस्थ आकाश के शब्दों और स्थान का भेद वर्णन किया है।

हंसोपनिषद् में शब्द के नाद के विषय में पाठ आता है। नाद शब्द की बड़ी प्रशंसा हंस आचार्य ने की है। दस प्रकार के शब्दों के नाद निम्न श्लोकों में वर्णन किये गये हैं—

चिणीति प्रथमः चिञ्चिणीति द्वितीयः। घण्टानादस्तृतीयः। शंखनादश्चतुर्थः। पञ्चमस्तन्त्रीनादः। षष्ठस्तालनादः। सप्तमो वेणुनादः। अष्टमो मृदङ्गनादः। नवमो भेरीनादः। दशमो मेघनादः। नवमं परित्यज्य दशमेवाभ्यसेत् ॥
प्रथमे चिञ्चिणिगात्रं द्वितीये गात्रभजनम्। तृतीये खेदनं याति चतुर्थे कम्पते शिरः। पञ्चमे स्रवते तालुःषष्ठेऽमृतनिसेवनम्। सप्तमे गूढविज्ञानं परा वाचा तथाऽष्टमे। अदृश्यं नवमे देहं दिव्यचक्षुः तथामलम्। दशंम परमं ब्रह्म भवेद् ब्रह्मात्मासन्निधौ ॥
तस्मिन् मनो विलीयते मनसि संकल्पविकल्पे दग्धे पुण्यपापे सदा शिवः ॥
शक्त्यात्मा सर्वत्रावस्थितः स्वयंज्योतिः शुद्धो बुद्धो नित्यो निरञ्जनः शान्तः प्रकाशते ॥

इन मन्त्रों का संक्षिप्त भावार्थ लिखते हैं। प्रथम या पहला नाद शब्द से होता है, अर्थात् हंस मन्त्र के जाप से उत्पन्न होता है। सर्वप्रथम जाप से पहला नाद चिणी नाम से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्र संख्या २ : भात बनने तथा भोग और भात की संयोजित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है। दूसरा नाद चिञ्चिणी शब्द के रूप में पुनः-पुनः सुनायी देता है। तीसरा नाद घण्टे की तरह सुनायी देता है, जैसे मन्दिरों में घण्टा बजा करता है। चौथा नाद शंख की तरह सुनायी देता है, जैसे आरती के समय में मन्दिर में शंख बजा करता है। पांचवां नाद तन्त्री की तरह, जो सितार से छोटी होती है, सुनायी देने लगता है। छठा ताल नाद, जैसे तबले पर थाप मारते हैं ऐसे सुनने में आया करता है। सातवां वेणु बांसुरी की तरह शब्द रूपी नाद सुनायी दिया करता है। आठवां मृदंग नाद ढोल की तरह बड़ा शब्द या नाद सुनने में आने लगता है। नौवां भेरी नाद होता है। दशम मेघनाद, जैसे बादल में गरज हुआ करती है उसकी तरह शब्द रूपी नाद निरन्तर सुनने में आया करता है। अब आगे इन नादों का फल बताते हैं। योगी के लिए उनका वर्णन करते हैं।

प्रथम नाद का फल शरीर के कानों में चिञ्चिणी शब्द या नाद होता है। दूसरे का फल शरीर में टूटन या दुखन सी होती है। तीसरे का फल खेद सा अनुभव होने लगता है। चौथे में सिर या गर्दन में कम्पन होने लगता है। पांचवें नाद का फल तालु में मधुर रस का स्राव होने लगता है। छठे का फल जैसे अमृत ही जिह्वा पर टपक रहा हो या टपक-टपक कर गिर रहा हो। इसकी अन्यत्र ग्रन्थों में बड़ी महिमा वर्णन की है। ब्रह्मरन्ध्र से मधुर रस का स्राव निकलकर जिह्वा पर स्वाद का अनुभव कराता है। इसे

चित्र संख्या ४—इस चित्र में दस प्रकार के नादों को वाद्य यन्त्रों द्वारा समझाया गया है। इन वाद्यों से ये नाद उत्पन्न होते हैं, जो योगियों के लिए प्रसन्नता, आह्लाद तथा हर्ष और आनन्द प्रदान करने वाले तत्त्व ज्ञान द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार के हेतु होते हैं। इन नादों के नाम निम्न प्रकार के होते हैं—चिणी, चिञ्चिणी, घण्टा नाद, शंख नाद, तन्त्री नाद, ताल नाद, वेणु नाद, मृदंग नाद, भेरी नाद, मेघनाद। ये नाद उत्पन्न होकर इन फलों के प्रदान करने वाले होते हैं—प्रथम नाद का फल शरीर में गुदगुदी या शिथिलता सी अथवा भारीपन का अनुभव होता है। दूसरे में शरीर टूटने सा लगता है। तीसरे का फल दुःख के रूप में प्रतीत होने लगता है। चौथे का फल शरीर कांपने लगता है। पांचवें का फल तालु में रस का स्राव होने लगता है। छठे का फल वह रस स्राव अमृत के समान फल वाला होता है। सातवें नाद का फल तत्त्व ज्ञान या अत्यन्त छिपा हुआ गूढ़ ज्ञान प्रकट होता है। आठवें नाद का फल चार प्रकार की वाणी में सर्वोत्तम परा नाम की वाणी सरस्वती के रूप में उत्पन्न होता है। नवम नाद का फल चक्षु दिव्य दृष्टि वाले बन जाते हैं। शरीर को कोई देख न सके यह भी योग्यता हो जाती है। और दसवें नाद का फल मन भगवान् के समीप हो जाता है और ब्रह्म में लीन करने की योग्यता आ जाती है। संकल्प-विकल्प शान्त होकर पाप-पुण्य से मुक्त हो जाता है। अतः साधक योगियों को उपर्युक्त नादों का अभ्यास करके तत्त्व ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अमृत रस पान भी कहा गया है। सातवें नाद का फल गूढ़ विज्ञान अर्थात् छिपा हुआ विज्ञान जो अत्यन्त गूढ़ होता है, जिससे आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार होता है, वह प्राप्त होता है। इसमें योगी को हर्ष, शान्ति, आनन्द की प्राप्ति होती है। आठवें नाद का फल चार प्रकार की वाणी परा-पश्यन्ति-वैखरी-मध्यमा का उदय होकर सर्व प्रकार के विज्ञानों का ज्ञान और उनके कथन करने की शक्ति प्राप्त होती है। नौवें नाद का फल योगी का शरीर अदृश्य होने योग्य बन जाता है। योगी सामने बैठा हुआ भी देखने में नहीं आता। अन्तर्-धान होने को सामर्थ्य हो जाती है और योगी के नेत्र दिव्य हो जाते हैं। दूसरों को देख सकता है परन्तु आप ओझल हो जाता है। दशम नाद का अन्तिम फल परम ब्रह्म का साक्षात्कार होकर ब्रह्मरूप ही हो जाता है। इसमें मन विलीन होकर मन के संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते हैं। वह योगी पुण्य-पाप से रहित होकर शिव रूप अथवा सर्वशक्ति रूप आत्मा अपने आप को विभु सा अनुभव करने लगता है। स्वयं दिव्य ज्योति स्वरूप होकर शुद्धज्ञानस्वरूप नित्य पवित्र शान्त रूप में प्रकाशमान अथवा ज्ञानस्वरूप हो जाता है।

यहां हंस उपनिषद् के नाद और उसके फल का वर्णन किया है, जो बहुत छोटा सा मार्ग है और तत्त्व ज्ञान प्रदान करके मुक्त करने वाला है। हंस शब्द से आत्मा का भी ग्रहण होता है और परमात्मा का भी ग्रहण होता है। इस हंस शब्द रूप मन्त्र का कई करोड़ वार जाप का विधान है। वह जाप जो कि वाचिक-उपान्शु-मानसिक होता है। उस अन्तिम मानसिक हंस मन्त्र के जाप से जो ब्रह्मरन्ध्र में नाद सुनायी देता है वह शनैः-शनैः उपर्युक्त फलों वाला होता जाता है। हमने अपने इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में शब्द के प्रधान रूप में दस स्थान शरीर में उत्पन्न होने के माने हैं। एक ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में कर्णेन्द्रिय के ऊपर समीप में ब्रह्मरन्ध्र में है जहां ये दश प्रकार के नाद होते हैं। ये नाद आत्मा, परमात्मा या ब्रह्म साक्षात्कार का हेतु बनते हैं और क्रमपूर्वक होते हैं। इन्होंने अन्तिम मेघनाद ब्रह्म साक्षात्कार का हेतु माना है। इससे पूर्व के नाद नौ सिद्धियों के हेतु होते हैं।

कर्णेन्द्रियस्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

कर्णेन्द्रियस्थ आकाश में शब्द की उत्पत्ति और शब्द सुनने की शक्ति वर्तमान रहती है। पंच भूतों में सब से सूक्ष्म और महान् तथा चारों भूतों में व्यापक आकाश है। ब्रह्मरन्ध्र के आकाश में मन और बुद्धि के मण्डलों से बाहर की ओर कर्णेन्द्रिय है। जब बाहर से उत्पन्न हुआ शब्द कर्णशष्कुली पर आघात करता है तब वह इन्द्रिय सावधान होकर शब्द को ग्रहण करती है। इसके साथ ही मन भी प्रति क्षण सावधान रहता है, इन्द्रियों के विषयों के ग्रहण करने के लिए। यह उस कर्णेन्द्रिय पर पड़े शब्द से प्रतिध्वनित होकर बुद्धि मण्डल में प्रवेश कर जाता है और तत्क्षण में ही निर्णय करा देता है कि इस शब्द का यह अर्थ और यह ज्ञान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्वप्रधान कर्णेन्द्रियस्थ आकाश में जब योगी मन्त्र या प्रणवादि शब्द को माध्यम बनाकर ब्रह्म के साथ सम्पर्क बनाता है, तब शब्द ब्रह्म में तरङ्गित होकर फैल जाता है, और प्रतीत होने लगता है जैसे सर्वव्यापक चेतन परमात्मा में भी गति सी होने लगी है। शब्द और ब्रह्म का वाच्य-वाचक भाव से सम्बन्ध होता है। शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीनों का विषय योगी को ब्रह्म को बनाना पड़ता है। ओ३म् हुआ शब्द; इसका अर्थ हम करने लगे सर्वरक्षक, सर्वव्यापक, सब का आश्रय, जड़ पदार्थों में गति कर्म का हेतु, इत्यादि। अब ज्ञान की बात आती है। ओ३म् के पुनः-पुनः मानसिक उच्चारण से उसके चेतन स्वरूप का साक्षात्कार यह ज्ञान हो जाता है। उस मानसिक सूक्ष्म शब्द को एक प्रकार से कर्णेन्द्रिय का विषय बनाते हैं। कर्णेन्द्रिय पर जो आघात होता रहता है, उसमें प्रति क्षण मन प्रतिबिम्बित होकर प्रति क्षण में साथ-साथ प्रत्यक्ष भी ब्रह्म को कराता रहता है।

इस बहुत अल्प काल में शब्द कर्णेन्द्रिय मन बुद्धि ने मिलकर ब्रह्म का अनुभव निरन्तर कराते रहना और धाराप्रवाह से ब्रह्म साक्षात्कार होते रहना, साथ में शान्ति आनन्द भी अनुभव करते रहना होता है। प्रवाह में इन साधनों का सम्बन्ध क्रमपूर्वक बना रहता है और यह कई घण्टे और दिन भी रह सकता है। यह अवस्था स्थूल शरीरधारी योगियों को भी प्राप्त होती है और सूक्ष्म शरीरधारियों को भी प्राप्त होती है। दोनों शरीरों और दोनों लोकों में किसी प्रधान योगी को ही प्राप्त होती है, आम योगियों को नहीं होती।

योगियों के भी तो वर्ग होते हैं। प्रथम मध्यम उत्तम योगी इस अवस्था को प्राप्त करते हैं। ये सब सत्वप्रधान योगी होते हैं। ये ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं। यह सात्विक अवस्था बड़े तप जप यम नियम अभ्यास ध्यान समाधि का अभ्यास दीर्घ काल तक निरन्तर करने से प्राप्त हुआ करती है। संसार में कोई विरले महानात्मा हुआ करते है। इस पथ पर चलने के लिए जीवन में अनेक प्रकार के विघ्न बाधाएं प्रलोभन सामने आया करते हैं। इनसे न घबराये, आसक्त भी न हो। इस प्रकार के योगी के सामने एक तरफ समस्त संसार के पदार्थ जड़ और चेतन होते हैं और एक तरफ चेतन ब्रह्म होता है। इस विषय की जगत् के इतिहास में बहुत कम महानात्मा हुए हैं जो संसार के सर्व पदार्थों को छोड़ कर त्याग कर जीवन मुक्ति के सुख को भोग आवागमन के चक्र से निकल कर परमधाम मोक्ष को पहुंच जाते हैं।

ब्रह्मरन्ध्र में रजःप्रधान कर्णेन्द्रियस्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्मज्ञान

जब योगी ब्रह्मरन्ध्र में कर्णेन्द्रिय को ब्रह्म साक्षात्कार का विषय बनाता है उस समय प्रणव या अन्य शब्द या मन्त्र को बलपूर्वक दीर्घ स्वर से उच्चारण करता है। तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस शब्द का प्रभाव कर्णेन्द्रियस्थ आकाश में पड़ता है। उस शब्द से मन प्रतिबिम्बित होकर बुद्धि मण्डल में क्रियाशील हो अर्थ और ज्ञान का निर्णय कराता है। अर्थ और ज्ञान से ब्रह्मानुभूति होने लगती है, उस योगी को जिसने कर्णेन्द्रिय मन बुद्धि के स्वरूप को समझ लिया हो और जिसको इनके कर्म व्यापार स्वरूप का ज्ञान हो गया हो। तब वह योगी क्रमपूर्वक शब्द इन्द्रिय मन बुद्धि के द्वारा ब्रह्म के स्वरूप को समझने में समर्थ होता है। इस काल में दीर्घ स्वर उच्चारण के शब्द से मन बुद्धि में विशेष क्षोभ या तरङ्गें सी उत्पन्न होती हैं और ब्रह्म तद्रूप भासने लगता है।

इसी प्रकार, अन्य व्यक्ति के दीर्घ स्वर से उच्चारण किया हुआ प्रणव शब्द हो तो उससे कर्ण पर तीव्र आघात होने से मन बुद्धि पर रजःप्रधान शब्द का आघात भी विशेष क्रिया का हेतु क्षोभ रूप में उत्पन्न हो जाता है। उस काल में ब्रह्म में भी विशेष कम्पन या लहरें सी प्रतीत होने लगती हैं। यहां दीर्घ स्वर से उच्चारण शब्द ने ही कर्ण मन बुद्धि और इनमें व्यापक भगवान् को भी तीव्र रूप में कम्पायमान सा बना दिया। इस अवस्था को शब्द कर्ण मन बुद्धि ने ब्रह्म में पैदा किया है। वास्तव में ब्रह्म में सामान्य या विशेष कम्पन नहीं होता है। इन पदार्थों के कम्पायमान होने से ब्रह्म भी तद्रूप भासने लगता है, 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' हो जाता है।

संसार में जितने भी पदार्थ हैं, सब में व्यापक होने से तद्रूप कह देते हैं। वरना ब्रह्म में परिवर्तन या तद्रूपता की कोई बात नहीं है। शब्द के उच्चारण के भेद से ही ये सात्विक राजस तामस भेद मान लिये गये हैं। एक वाणी के द्वारा ही उच्चारण का भेद हुआ है। अतः उसका प्रभाव भी भिन्न-भिन्न होता है।

मानसिक उच्चारण में इतना भेद नहीं होता जैसे कि वाणी के उच्चारण में स्पष्ट दीखता है और पृथक् भेद प्रतीत होता है, अपनी दृष्टि और दूसरों की दृष्टि में प्रतीत होने लगता है। होता है मानसिक उच्चारण में भी, परन्तु सूक्ष्म सूक्ष्मतर सूक्ष्मतम। वह स्वयं ही वेद्य और अनुभवगम्य होता है। इसीलिए प्रणव के वाणी और मन के जाप में अन्तर होता है। मानसिक उच्चारण गहनतम अवस्था में ब्रह्म के बहुत समीप में शीघ्र ले जाता है और वाणी के उच्चरित अभ्यास में बहुत समय ब्रह्म के पास पहुंचने में लग जाता है अथवा स्पर्श करने या ज्ञान करने में लग जाता है।

शब्द ही मूल कारण ज्ञान के प्रति है। चाहे कोई भी पदार्थ हो, प्रत्येक के प्रति शब्द के द्वारा ही पदार्थ का बोध होता है। सर्वत्र स्थूल सूक्ष्म जड़ चेतन में शब्द वर्तमान रहता है। ज्ञान रूप में, कर्म रूप में परिणत होकर सृष्टि के आदि काल से चला आ रहा है और भविष्य में भी परिणत होकर चलता रहेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमःप्रधान कर्णेन्द्रियस्थ आकाश में शब्द के द्वारा ब्रह्मज्ञान

जब योगी शब्द को या प्रणव को या अन्य मन्त्र को माध्यम बनाकर ब्रह्म को लक्ष्य बनाता है, उस काल में प्रत्येक पदार्थ के गुणों में परिवर्तन भी स्वाभाविक होता रहता है। एक गुण प्रधान और दो सहकारी रहकर गौण रूप में पदार्थ में परिणाम क्रम बनाये रखते हैं। यदि योगी अपने मनोबल से या बुद्धि बल से किसी गुण को परिवर्तन करके प्रधान न बनावे तो गुण स्वाभाविक क्रम से चलते रहते हैं, जब तक उस प्रधान गुण की समाप्ति न हो। जैसे, किसी भूतकाल के तामसिक कर्म के फल का भोग चल रहा है। यदि योगी उसको हटाने या निरोध करने के लिए उस तमःप्रधान कर्म फल को निरोध करके कुछ समय के लिए रोकना चाहता है, तो वह रुक कर थोड़े समय या अधिक के लिए बीच में फल देना बन्द कर देता है। विक्षेप आ जाने से उस कल में सत्व या रजोगुण प्रधान हो जाते हैं। फिर वह कर्म फल चलता भी रहे तो उन गुणों के प्रभाव के कुछ सुख-दुःख या कर्म भोग हलके निस्तेज से प्रतीत होने लगते हैं। उतने प्रबल रूप में फल वाले नहीं होते। कुछ सुखद से अनुभव होने लगते हैं। यह योगी के योग बल या गुण परिवर्तन की विशेष शक्ति या योग्यता पर निर्भर करता है।

यदि योगी में गुण परिवर्तन की यह विशेषता न हो, तब भूतकाल और वर्तमान काल के कर्म फल स्वाभाविक गमन करते हुए फल देते रहते हैं। योगी अपनी इच्छा से वर्तमान गुण को न बदलना चाहे तो वह भी अपना फल देकर समाप्त हो जायेगा। तत्पश्चात् दूसरा गुण आ उपस्थित होगा। इस प्रकार गुण अपने धर्म के अनुसार फल देकर चला जायेगा। तत्त्वदर्शी योगी उन गुणों के स्वाभाविक परिणामक्रम को देखकर हर्ष और शोक नहीं करता और तटस्थ सा रहकर इन के स्वाभाविक परिणाम क्रम को देखता रहता है। ब्रह्म के ज्ञान भान में कोई अन्तर नहीं होता।

इस अवस्था में यदि तमःप्रधान शब्द कर्ण शष्कुलि पर अपना प्रभाव भी डालता है, तो उससे योगी के लिए कोई विक्षेप विशेष का हेतु नहीं होता है। उस तत्त्वज्ञानी योगी के लिए तीनों गुण समान ही होते हैं। अतः तमःप्रधान अवस्था में भी ज्ञान बना रहता है। जिस योगी ने एक बार ब्रह्म के दर्शन कर लिये, फिर वह प्रत्येक स्थिति में और प्रत्येक गुण के वर्तमान रहने में एक क्षण में भी दर्शन कर लेता है। अतः तमःप्रधान शब्द का आघात कर्णेन्द्रिय पर होने से भले ही वह मन बुद्धि में से पार करता भी चला जाये तो कोई विशेष बाधक या विक्षेपक नहीं होता है।

कुछ न कुछ थोड़ा प्रभाव तो मन बुद्धि पर पड़ेगा ही। क्योंकि इन के धर्म, जो प्रत्येक प्रभाव को ग्रहण करने के हैं ही, वह गुण विशेष अपनी जाति वालों से मिलता जुलता हुआ ही तो वह शब्द गमन करता हुआ जायेगा। यह बात दूसरी है कि योगी उसकी उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काल में उपेक्षा कर दे। यह उपेक्षा योगी की अन्य सामान्य व्यक्तियों से विशेष ही होगी। यदि किसी बर्तन या बोतल में कोई दूध घी सैन्ट डाला जाये और फिर उससे निकाल लिया जाये, तो कुछ न कुछ उसका अंश तो बर्तन व बोतल में रह ही जाता है। फिर उसे जल मिट्टी साबुन आदि से साफ करके इस्तेमाल में लाते हैं। पात्र में पदार्थ डालना, निकालना, फिर साफ करना, फिर उसे उपयोग में लाना रूप व्यवहार जीवन पर्यन्त चलता ही रहता है। इसका अभाव शरीरधारी में देखने में नहीं आता। ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी हो, पुण्यात्मा हो या पापात्मा हो, दुःख सुख समझकर, अज्ञानता से रो पीट कर, ज्ञान से हंसकर मुस्कराते हुए करता रहता है और भोगता भी रहता है।

पुण्यात्मा योगी तटस्थ रहकर अथवा उदासीन रहकर भोगता रहता है। यथा सांख्य सूत्र है—'चक्रभ्रमणवत् धृतशरीरः।' जैसे कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते हुए चाक को डण्डे से घुमाकर छोड़ देता है, फिर वह चाक स्वयं ही वेगाख्य कर्म से संचालित किया हुआ देर तक घूमता है, इसी प्रकार प्रारब्ध कर्मों के अवशेष रहने पर शरीर कर्म करता रहता है और भोग भी करता रहता है। अज्ञानी की तरह आसक्त होकर कर्म नहीं करता है, परन्तु करता ज्ञानी भी जरूर है। जीवन पर्यन्त कर्म और ज्ञान का अभाव नहीं होता है। कर्म उसके लिए बन्धन का हेतु भी नहीं होता। स्वाभाविक समझकर करता रहता है। जैसे निद्रा खान-पान, मलमूत्र निस्सरण आदि स्वाभाविक कर्म है।

ज्ञानवान् योगी का लक्ष्य सर्वव्यापक चेतन सत्ता ब्रह्म की ओर होता है। वह समझता है कि जैसे भगवान् के सन्निधान से सब कर्म प्रकृति में हो रहे हैं और वह असङ्ग होकर निर्लेप रहकर तटस्थ सा बना हुआ है, हर्ष और शोक, राग और द्वेष से मुक्त है, और आप भी उसे मुक्त ही मानते कहते हैं, इसी प्रकार वह भी इस शरीर में रहते हुए निर्लेप और असङ्ग रहकर कर्मों का साक्षी सा बना रहता है और कहता है कि मेरा तो केवल शरीर के साथ सन्निधान मात्र है। जो कुछ शरीर, अन्तःकरण में व्यापार या कर्म हो रहे हैं वह चेतन आत्मा के सन्निधान मात्र से इसमें हो रहे हैं। सब योगियों, ज्ञानियों, तत्त्वदर्शियों की भावना होनी चाहिए कि मैं भी भगवान् की तरह इस शरीर में रहते हुए निर्लेप और असङ्ग हूं, मेरा तो केवल शरीर के साथ संयोग या सन्निधान मात्र है। जो कुछ कर्म या व्यापार शरीर में हो रहे हैं वह चेतन आत्मा के संयोग मात्र अथवा सन्निधान मात्र से हो रहे हैं।

जब भगवान् संसार में सब कुछ करते-कराते हुए आप की तरह रोते चिल्लाते नहीं हैं तो आपको भी उस भगवान् का ही अनुकरण करना चाहिए। सब कुछ करते-कराते भी अपने आपको सुख-दुःख रहित असङ्ग और निर्लेप अथवा निष्क्रिय समझना जानना चाहिए। योगी में यह निश्चयात्मक ज्ञान सदा बना रहना चाहिए। ये कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म सब अन्तःकरण शरीर के हैं। आत्मा बिल्कुल असंग निर्लेप शुद्ध बुद्ध मुक्त-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वभाव नित्य है। सर्व धर्मों कर्मों से रहित निर्लेप है। इस प्रकार की भावना रखकर योगी तत्त्वज्ञानी शेष जीवन व्यतीत करे। इस तत्त्वदर्शी के पुनर्जन्म की संभावना नहीं होगी। यह जीवनमुक्त के यथार्थ सुख का उपभोग इस शरीर के रहते ही करता रहेगा।

कंठ-मुख-नासिकास्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्मानुभूति

नासिका-मुख-कण्ठस्थ आकाश में भी शब्द द्वारा ब्रह्म ज्ञान किया जा सकता है। इन तीनों स्थानों में इनके अन्दर जो पोल हैं इनमें भी आकाश वर्तमान है और इनमें शब्द उत्पन्न होते-रहते हैं। कंठ से लेकर शिखा पर्यन्त आकाश की तीन संज्ञाएं मानी गयी हैं। ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश, कर्णेन्द्रियस्थ आकाश, नासिका मुख कंठ, इन तीनों में आकाश की संज्ञा इकट्ठी मानी गयी है, क्योंकि तीनों अत्यन्त समीप हैं और परस्पर सम्बन्ध समीपवर्ती है। यदि गहरी दृष्टि से देखा जाये तो ये तीनों स्थान भिन्न-भिन्न ही हैं। इन तीनों में भिन्न रूप मे भी ब्रह्म साक्षात्कार किया जा सकता है, क्योंकि तीनों के कर्म भी भिन्न-भिन्न हैं।

परन्तु जब हम प्रणव या मन्त्र उच्चारण करते हैं, तब ये तीनों कंठ मुख नासिका मिलकर शब्द बोलते हैं या उच्चारण में इकट्ठे सहायक होते हैं। इसीलिए इन तीनों कंठ मुख नासिका में एक ही संज्ञा आकाश की होती है। यहां भी आकाश का भेदाभेद सम्बन्ध शब्द से हो जाता है।

सत्त्वप्रधान कंठ-मुख-नासिकास्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

योगाभ्यासी मन्त्र द्वारा मुख से ओम् शब्द या शिव शब्द या राम शब्द द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार इन स्थानों में करना चाहता है। हमारा अभिप्राय यह है कि आकाश शरीर में सर्वत्र ही व्यापक है, और इसमें शब्द भी सर्वत्र उत्पन्न हो सकते हैं, परन्तु हमने स्थूल शरीर में मुख्य-मुख्य स्थानों में ही ब्रह्म का दर्शन या आत्म-दर्शन करने का अभ्यास करना है।

शंका—क्या प्रणव शब्द में ही यह विशेषता है कि ब्रह्म के इसी नाम से उसका आह्वान किया जाये या ज्ञान किया जाये ?

समाधान—प्राचीन आचार्यों ने इसी शब्द को विशेष महत्त्व दिया है। वैसे ब्रह्म ज्ञान के लिए हमें इसी नाम और शब्द में विशेष आग्रह नहीं है। अन्य नाम भी ले सकते हैं, परन्तु उनमें भी यही शंका उठायी जा सकती है जो प्रणव में उठायी जा रही है। भगवान् या ओम् ब्रह्म का अन्य नामों से भी आह्वान कर सकते हैं। राम-शिव-विष्णु-देव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मा-हरि-भानु-चन्द्र-देवेश-ईश आदि अनेक नामों या मन्त्रों द्वारा पुकार सकते हैं। मन्त्र हैं--शिवोऽहम्, नमः शिवाय, नमः ब्रह्मणे, नमः रामाय, रामाय नमः, तत्सत् ब्रह्मणे नमः, परमात्मने नमः आदि। परन्तु जब हम गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं तो इसके साथ राम-शिव आदि नामों का मेल नहीं खाता। केवल ओम् शब्द को उच्चारण करने में गायत्री मन्त्र के साथ प्रथम जोड़ते हैं। पाणिनि मुनि ने अपनी अष्टाध्यायी में एक सूत्र पढ़ा है 'ओम् अभ्यादाने'। अर्थात् मन्त्र के प्रारंभ में ओम् शब्द का प्रथम उच्चारण करके मन्त्र को बोलना चाहिये। वेद के सब मन्त्रों के उच्चारण काल में सब जगह ओम् का प्रथम उच्चारण किया जाता है। इसी कारण से इस शब्द की महिमा बढ़ गयी है। सूत्र 'ओम् अभ्यादाने' भी है। इसका अर्थ भी आरम्भ ही होता है। ओम् शब्द को स्वीकार अर्थ में भी संस्कृत भाषण करने वाले बोला करते हैं। इसी कारण से सब से आदि काल में जो वेद उत्पन्न हुए या बनाये गये थे, उस काल में ओम् शब्द को और गायत्री मन्त्र को बड़ा महत्व दिया गया था। गायत्री मन्त्र भी चारों वेदों में पढ़ा गया है या आता अथवा समावेश किया गया है। अतः हमें भी उन महापुरुषों का ही अनुकरण करना चाहिये।

उस काल में वर्तमान काल की तरह मत-मतान्तर भी नहीं थे। किसी धर्म के अन्दर पक्षपात की भी कोई बात न थी। इसी कारण से प्रणव (ओ३म्) को हमने भी बड़ा महत्व दिया है और गायत्री मन्त्र को भी श्रद्धा-भक्ति की भावना से बड़ा महत्व दिया है। बहुत वर्ष तक प्रणव और गायत्री मन्त्र के द्वारा भगवान् की उपासना मैं स्वयं करता रहा हूं। तीन वर्ष तक ३ घण्टे प्रातः गर्भ-आसन में रहकर गायत्री जाप नित्य प्रति करता रहा था, साधना के समय में।

जब हम सात्विक भावना से गायत्री मन्त्र को परमात्मा के ज्ञान का माध्यम बनाते हैं और मानसिक मन्त्र जाप प्रारंभ करते हैं और अर्थ की भावना को साथ रखते हुए ब्रह्म को ध्यान समाधि का विषय बनाते हैं, तब मन्त्र के अर्थ के समान साथ में ब्रह्म का अनुभव भी होने लगता है। उस काल में एक व्यापक सी दृष्टि ब्रह्म के प्रति होती है और अर्थानुकूल ब्रह्म भासने लगता है। यदि केवल प्रणव शब्द को ही लेकर ब्रह्म को समाधि का विषय बनाते हैं, और साथ में अर्थ चिन्तन नहीं करते, तब एक बहुत छोटे से देश के आकाश मण्डल में ब्रह्म की प्रतीति सूक्ष्म और एक छोटे से रूप में होने लगती है।

इन तीनों स्थानों में यदि क्रमपूर्वक प्रणव का मानसिक जाप रूप चिन्तन करते हैं, तब कण्ठ मुख नासिका में भिन्न-भिन्न रूपों में ब्रह्म साक्षात्कार होता है। यदि केवल मुख में ही करते हैं तो भी उस प्रणव का आघात तीनों स्थानों में होकर एककालावच्छेदेन तीनों स्थानों में प्रतीति होने लगती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस अवसर में सत्त्वप्रधान आकाश में शब्द सत्व रूप में उच्चारण होने से विशेष शान्ति और आह्लाद और आनन्द की अनुभूति ब्रह्म के सन्निधान में होती है। अत्यन्त सूक्ष्म ओ३म् का मानसिक जाप और ध्यान होता है। एक निर्विकल्प अवस्था या निर्विचार अवस्था ब्रह्म के सन्निधान में होती है। और वह अत्यन्त अनिर्वचनीय सी होती है। कंठ मुख नासिका प्रदेश में क्रमपूर्वक प्रणन का मानसिक जाप करते हैं, बिल्कुल सूक्ष्म रूप में, तब इनके भिन्न-भिन्न आकाश में प्रणव शब्द भिन्न-भिन्न रूप में उस देश में भासने लगता है। स्थान भेद से ब्रह्म का भेद भी प्रतीत होने लगता है। भेद न होने पर भी देश शब्द आकाश और ब्रह्म का भिन्न-भिन्न रूप में योगी को प्रत्यक्ष होने लगता है। इस ज्ञान के प्रति मन बुद्धि करण होते हैं।

रजःप्रधान कंठ-मुख-नासिकास्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

योगी जब दीर्घस्वर से शब्द या मन्त्र का उच्चारण करता है तब इन देशों के आकाश में जो ब्रह्म की व्याप्ति है उसमें विशेष हलचल सी होने लगती है। तब ब्रह्म में उत्ताल तरङ्गें सी उत्पन्न होती हुई सी अनुभव होने लगती हैं। उस आकाश मण्डल में विशेष क्षोभ से उत्पन्न होकर ब्रह्म को कम्पायमान करने लगते हैं। उस अवस्था में योगी दो प्रकार के रूपों में ब्रह्म को प्रत्यक्ष करने लगता है। शान्त और अशान्त रूप में। एक क्षण में गति और क्रिया, दूसरे क्षण में स्थिरता और निष्क्रियता। वहां वास्तव में एक समान स्थिति निष्क्रियता भी भगवान् का रूप होता है।

भले ही योगी के पास ऐसे शब्द उस काल में न हों जिनसे भगवान् के रूप का वर्णन कर सके अथवा उसके रूप की तुलना किसी अन्य पदार्थ के साथ कर सके, क्योंकि उसके रूप के समान उसने आज तक कोई रूप नहीं देखा। वह रूप स्वयं-वेद्य अनिवर्चनीय होता है। योगी की या आपकी ऐसी स्थिति हो जाय ब्रह्म-ज्ञान में कि प्रत्येक पदार्थ में उसकी अनुभूति होने लगे, चाहे जिस भी पदार्थ को आप माध्यम बनावें, या उसमें देखना चाहें, सर्वत्र सब पदार्थों में वह देखने में आवे। इसी कारण से मुझे इस ब्रह्म के ज्ञान के लिए अपने सब ग्रन्थों में प्रत्येक पदार्थ में ब्रह्म-ज्ञान का वर्णन करना पड़ा।

शंका—जब एक पदार्थ में ब्रह्म ज्ञान आप को हो गया, तब इतने पदार्थों के वर्णन करने की आपको क्या आवश्यकता है?

समाधान—क्योंकि संसार में अनेक भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं और प्रत्येक पदार्थ के गुण दोष भी भिन्न हैं। कोई पदार्थ किसी को अच्छा लगता है, कोई किसी को। जो पदार्थ जिसको अच्छा और रुचिकर व सुन्दर प्रतीत होता है, यदि उसी में उसे ब्रह्म ज्ञान कराया जाये तो ब्रह्म की उसमें मौजूदगी जल्दी समझ में आ जाती है। इसी कारण से प्रत्येक व्यक्ति के लिए हर एक पदार्थ में ब्रह्म की व्याप्ति की चर्चा और वर्तमानता कथन करनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिये, ताकि सर्वत्र सब पदार्थों में परमात्मा की सत्ता का ज्ञान या भान अथवा अनुभूति हो ।

इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में हमारा मुख्य ध्येय तो यही सिद्ध करने का है कि जो भी पदार्थ संसार में हैं, चाहे वे चेतन प्राणी हों या जड़ पदार्थ हों, स्थूल हों अथवा सूक्ष्म, अणु हों या महान् हों अथवा विभु हों, उन सब में क्रमपूर्वक शब्द के द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें कि ब्रह्म या परमात्मा इन सब के गर्भ में वर्तमान है । इन में व्यापक रूप से स्थिर है । क्योंकि ज्ञान रूप शब्द या शब्द रूपी ज्ञान, वास्तव में शब्द जो है यह ज्ञान का बीज या उपादान कारण है और एक प्रकार से शब्द ज्ञान का स्थूल रूप भी है । कहीं शब्द ज्ञान के प्रति कारण हो जाता है और कहीं कार्य भी हो जाता है । परस्पर कार्य-कारण भाव सम्बन्ध है ।

दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि शब्द और ज्ञान का कार्य-कारण भाव सम्बन्ध कैसे है । एक सूक्ष्मदर्शी भौतिकविज्ञानवादी योगी ने एक मशीन बनायी है । अथवा एक बड़ा विशाल भवन बनाया है । इन पदार्थों के बनाने का विज्ञान या नक्शा उसकी बुद्धि में पहले से ही वर्तमान था । कारीगरों को वाणी के द्वारा शब्दों में उपदेश देता है । उसके कथन के अनुसार वे मशीन अथवा भवन के निर्माण में लग जाते हैं, मशीन और भवन बना देते हैं । एक प्रकार से मशीन और भवन उसके विज्ञान का ही साकार रूप हैं । जो उसकी बुद्धि में मशीन व भवन ज्ञान रूप में वर्तमान थे उस ज्ञान को शब्दों के रूप में कथन करके अर्थ के रूप में ले आये । अतः शब्द, अर्थ और ज्ञान का परस्पर सम्बन्ध होता है ।

शंका—क्या इन मशीन व भवन के प्रति पंच भूत उपादान कारण हैं, अथवा धातुएं या भूमि पत्थर मिट्टी जल है ?

समाधान—उपादान कारण सर्व जड़ पदार्थ हैं, परन्तु निमित्त कारण किसी पुरुष को मानना होगा । बिना निमित्त कारण के उपादान कारण भी कार्य को उत्पन्न नहीं कर सकता है । कारण का कार्य रूप में परिवर्तन होना किसी निमित्त विशेष से ही होता है । निमित्त आप को चेतन ही स्वीकार करना होगा ।

कहीं-कहीं कार्यों में जड़ भी निमित्त होता है, अतः निमित्त भी दो प्रकार का होता है एक जड़ और दूसरा चेतन । जड़ निमित्त और चेतन निमित्त संयोग मात्र या सन्निधान मात्र से होते हैं । जैसे एक इंजीनियर धातुओं से मशीन तैयार करता है; यहां लोहा, पीतल, ताम्बा आदि उपादान कारण हैं । मशीन के पुर्जे या पार्ट संयोग मात्र से निमित्त कारण भी बने । क्योंकि बिना पुर्जे जुड़े मशीन तैयार नहीं होगी, अतः पुर्जे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निमित्त हुए और जिन धातुओं से पुर्जे बने हैं वे उपादान कारण हुई और जोड़ने वाला या इंजीनियर चेतन निमित्त कारण सिद्ध होता है। अतः निमित्त कारण जड़ भी होता है और चेतन भी, परन्तु प्रधान रूप में चेतन ही निर्माण में निमित्त कारण होता है। ये चेतन आत्मा और परमात्मा ही प्रधान रूप में निमित्त कारण होते हैं, और गौण रूप में जड़ भी निमित्त कारण होते हैं। उपादान कारण दो हुए और निमित्त कारण भी जड़ और चेतन दो हुए।

कहीं-कहीं निमित्त कारण तीन या बहुत भी हो जाते हैं। जैसे मशीन बनाने में बहुत से मिस्त्री एक ही मशीन को बना रहे हैं और भिन्न-भिन्न धातुओं के पुर्जे उसमें लगे हुए हैं। हथौड़ा, छेणी, पलास इत्यादि कई औजार बनाने में निमित्त जुड़ जाते हैं। कई मिस्त्री मिलकर बनाते हैं, कई चेतन भी निमित्त हो जाते हैं और उपादान कारण भी कई प्रकार की धातुएं मिलकर हो जाती हैं। हमारा अभिप्राय है कि जिन बहुत से धातुओं से मिलकर मशीन बनी है वे सब जड़ पदार्थ हैं। बहुत से कारीगरों या इंजीनियरों ने मिलकर एक मशीन तैयार की हैं, ये सब चेतन हैं। चाहे जड़ अनेक हों या चेतन अनेक हों, वहां जाति नहीं गिनी जाती है। व्यक्ति से अभिप्राय जड़ चेतन का है। अतः निमित्त चेतन सन्निधान से है। इसके सन्निधान या संयोग से जड़ पदार्थ स्वयं ही क्रियाशील होकर कर्म करने में प्रवृत्त हो जाते हैं।

आत्मा इस शरीर में रहकर निमित्त कारण होता है और परमात्मा ब्रह्माण्ड में रहकर निमित्त कारण सन्निधान मात्र से होता है। इन दोनों के बिना शरीर और ब्रह्माण्ड कर्मशील नहीं हो सकते हैं।

शंका—आप परमात्मा या ब्रह्म ज्ञान को ही क्यों इतना महत्त्व देते हैं? इस शरीर से सम्बन्ध तो जीवात्मा का है, इस आत्मा या शरीर का ज्ञान होना चाहिये, न कि परमात्मा का।

समाधान—आपका यह कथन तो शतांश में सत्य है कि जीवात्मा के बन्धन का कारण वास्तव में यह वर्तमान शरीर ही है। अतः इस शरीर और आत्मा का ही ज्ञान होना चाहिये। आत्मा बंधा भी शरीर से देखने में आता है, और प्रत्येक मनुष्य अपने को इससे बंधा हुआ भी समझता है और कहता भी है। परन्तु इन दोनों के ज्ञान होने पर भी कई शंकाएं ऐसी हैं जिनका समाधान इनके ज्ञान से भी नहीं होता। यथा, इस दृश्यमान संसार में ये जो बड़े-बड़े विशाल पर्वत देखने में आ रहे हैं उनको लाखों मनुष्य तो मिलकर भी नहीं बना सकते हैं। इनके पश्चात् सूर्य चन्द्र नक्षत्र को देखकर जिज्ञासा होती है कि इनके बनाने वाला कौन है। फिर जल अग्नि वायु आकाश को देख कर प्रश्न होता है कि इनके बनाने वाला कौन है, कहां रहता है और कैसे जगत् को बनाया है, इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान के लिए हमने एक वृहद ग्रन्थ लिखा है। उसमें इस जगत् के बनाने वाले निमित्त कारण भगवान् या ब्रह्म का बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से आपको संसार (ब्रह्माण्ड) और उसके बनाने वाले ब्रह्म का प्रत्यक्ष रूप में ज्ञान और साक्षात्कार हो जायेगा। उसमें इस ब्रह्माण्ड की ३२ अवस्थाओं की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है और केवल निमित्त कारण संयोग या सन्निधान से एक भगवान् के वास्तविक स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस ग्रन्थ का नाम 'ब्रह्म विज्ञान' है।

इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में केवल शब्द के द्वारा ब्रह्म ज्ञान या साक्षात्कार के बहुत से साधन बताये गये हैं। इसमें, शब्द, अर्थ और ज्ञान की महत्ता का वर्णन है क्योंकि शब्द, अर्थ, ज्ञान का समवाय सम्बन्ध कार्य-कारण भाव सम्बन्ध हैं। इसमें शब्द की महानता का विशेष वर्णन है, और शब्द के द्वारा इस जगत् के सर्व पदार्थों में ब्रह्म की व्यापकता जानने और सब में देखने के लिए अनेक साधन या उपाय बताये हैं या बता रहे हैं।

वास्तव में इस ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम शब्द का ही प्रादुर्भाव हुआ था। ब्रह्म और प्रकृति के संयोग से प्रकृति में सर्वप्रथम शब्द ही उत्पन्न हुआ और यह तीसरा पदार्थ (शब्द) ज्ञान के रूप में हुआ। क्योंकि जगत् का मूल कारण प्रकृति सर्व देश में वर्तमान थी अतः इसके सर्व देश या सम्पूर्ण प्रकृति में विभु सी अवस्था के रूप में यह शब्द प्रकृति का सर्वप्रथम परिणाम था। इस मूल प्रकृति की सर्वप्रथम कई अवस्थाएं समष्टि के रूप में होती रहीं, उनमें शब्द भी एक प्रकार से समष्टि के रूप में चलता रहा। जब वे समष्टि पदार्थ व्यष्टि भाव को प्राप्त होने लगे, नाना रूप में परिणत हुए, तब शब्द में भी अनेकत्व रूप आया। आदि सृष्टि का महान् शब्द या विभु शब्द अनेकत्व या अनन्त रूपों में उत्पन्न हुआ या वह विभु शब्द नानात्व भाव को प्राप्त हुआ और असंख्य भाव रूपों में प्रकट हुआ। यह प्रकृति का सर्वप्रथम परिणाम अनेकत्व भाव को प्राप्त हुआ।

तमःप्रधान कंठ-मुख-नासिकास्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

अभ्यास काल में बहुत बार ऐसा देखने में आता है जैसे हमने ६ घण्टे का आसन स्थिर कर लिया है, इस ६ घण्टे के अभ्यास में अवस्थाएं बदलती रहती हैं। उनमें कभी तमःप्रधान अवस्था भी आ जाती है। उस काल में शरीर में जड़ता शून्यता आलस्य प्रमाद भी आ उपस्थित होते हैं। मन्त्र या प्रणव जाप करते-करते एकाग्रता आ जाने पर कभी तन्द्रा भी उसमें आ जाती है। अभ्यासी को जब शरीर में या गर्दन में झटका लगता है तब वह पुनः सावधान हो जाया करता है। वह झटका कुछ सेकण्ड का ही होता है। कभी-कभी मानसिक जाप करते-करते जाप स्वयं बन्द होकर निर्विकल्प सी अवस्था भी हो जाया करती है। सविचार से निर्विचार अवस्था बन जाती है। उस निर्विचार अवस्था में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवलम्बन कुछ न रहने से प्रणव का अवलम्बन भी नहीं रहता। प्रणव से भी मन निरुद्ध सा हो जाता है। उस समय में कोई विचार भी नहीं रहता या उठता है। उस निर्विचार अवस्था में लक्ष्य का भान न रहने से कभी-कभी तन्द्रा या निद्रा या शून्यता की अवस्था में चला जाता है। समाधि निद्रा शून्यता तन्द्रा ये कुछ मिलती जुलती सी अवस्थायें होती हैं। यहां ज्ञानात्मक सम्प्रज्ञात समाधि की बात नहीं कह रहे हम, 'तदेव अर्थमात्रं स्वरूप-शून्यमिव' समाधि की बात कह रहे हैं।

जाग्रत अवस्था में, और वह भी सत्त्वप्रधान में मानसिक प्रणव जाप में, यह प्रणव जाप बन्द होकर अथवा इसका विस्मरण सा होकर निर्विचार अवस्था-सी हो जाती है, और वह बहुत देर तक रहने से तन्द्रा के रूप में और फिर शून्यता के रूप में परिणत हो जाया करती है। इन तमःप्रधान अवस्थाओं में भी कभी-कभी प्रणव के मानसिक जाप में भी शब्द सूक्ष्म ज्ञान के रूप में, चेतन आत्मा या परमात्मा के रूप में, ब्रह्म की अनुभूति या झांकी सी कुछ सेकण्ड के लिए हो जाया करती है।

जब चिरकाल के लिए योगी समाधि में बैठता है, निरन्तर सत्त्वप्रधान न रहने से कभी-कभी कुछ क्षण के लिए तम की अवस्था भी आ जाती है। उस काल में व्युत्थान और निरोध, सत्त्व और तम क्रमपूर्वक चलते रहते हैं, या बने रहते हैं। कभी ब्रह्म दर्शन कभी इसका अभाव और कभी पुनः प्रयत्न दर्शन के लिए इस प्रकार समाधि अवस्था में व्युत्थान निरोध होता रहताहै, क्योंकि मन और बुद्धि की चंचलता भी सब जगह प्रसिद्ध है। मार्ग में चलते हुए दशों इन्द्रियां कर्म करती हुई चलती हैं। मन इन सब का क्रमपूर्वक नियन्त्रण और नियोजन क्षण-क्षण में करता रहता है, कि इतनी तीव्र और द्रुत गति इस मन और बुद्धि की कर्म और ज्ञानात्मक है। इन्द्रियों का नियन्त्रण और नियोजन मन करता है और बुद्धि भी साथ में ज्ञानात्मक निर्णयात्मक इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान करती चलती है। इतनी तीव्र गति वाले मन और बुद्धि का सर्वथा बहुत काल के लिए निरोध करना महान् कठिन प्रयत्न और धर्म है।

योगी दूसरे के शरीर को भी अपनी समाधि का विषय बना लिया करता है। कोई भी गुण वर्तमान हो, उसके गुणों को भी और अपने गुणों को भी मनोबल और बुद्धि से परिवर्तित कर लिया करता है। जैसे वैद्य और डाक्टर औषधियों द्वारा रोगी के गुणों और धर्मों का परिवर्तन कर लिया करते हैं, इसी प्रकार उत्तम दर्जे का बलवान् योगी भी आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्रदान करने के लिए साधकों के मनों और बुद्धि के धर्मों को बदल दिया करता है और अपने अनुकूल बना लेता है।

कंठ मुख नासिका के प्रदेश में तीनों स्थानों में आकाश वर्तमान है। इन तीनों में शब्द के द्वारा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध बना कर पृथक्-पृथक् रूप में भी आत्मा या ब्रह्म की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुभूति की जा सकती है और इकट्ठों में भी, भले ही शब्द या मन्त्र एक होता है। किन्तु तीनों का अत्यन्त समीपवर्ती सम्बन्ध होने से विस्तृत सी ध्यान की दृष्टि डालकर एककालावच्छेदेन ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। इस देश या तीनों के देशस्थ आकाश में शब्द के द्वारा ब्रह्म ज्ञान होने पर योगी शरीर में नीचे की ओर उतरता है। कंठ देश से उरुस्थल की ओर। फुफ्फुसों में जो आकाश है उसमें ब्रह्म का दर्शन करना चाहता है, क्योंकि वहां श्वास प्रश्वास भरने के लिए अनेक कोशिकाएं हैं, इन सब में अवकाश है और ये स्पंज की तरह हैं, इनमें संकोच विकास रूप धर्म है।

फुफ्फुसस्थ आकाश में ब्रह्म साक्षात्कार

सर्वप्रथम योगी छाती के प्रदेश में जो आकाश है इसको समाधि का विषय बनाकर सब कोशिकाओं में या मोटे रूप में छाती के सम्पूर्ण देश में जो आकाश है उससे ब्रह्म का अनुसन्धान करे। इतस्ततः से वृत्तियों को हटाकर केवल मात्र छाती के प्रदेश में लगाये। इस छाती में जो फुफ्फुसों को कोशिकाएं हैं उनमें प्रणव या गायत्री मन्त्र अथवा किसी अन्य मन्त्र के द्वारा ब्रह्म की प्रार्थना, स्तुति या उपासना करे।

हम यहां ओ३म् को ही शब्द के रूप में लेते हैं। प्रणव शब्द प्राण से सूक्ष्म है, अतः ओ३म् शब्द प्राण को धक्का सा देता है। इन दोनों के संयोग से, शब्द और प्राण से फुफ्फुसों में धक्का लगता है। फुफ्फुसों में संकोच विकास रूप धर्म है। अतः एक ॐ शब्द नाना फेफड़ों की कोशिकाओं में परिणत हो जाता है और सब कोशिकाओं को कम्पायमान करके उनके अन्दर से निकलता हुआ ब्रह्म को भी कम्पायमान सा कर देता है। इन कोशिकाओं में ब्रह्म भी व्याप्त होकर ठहरा हुआ है। अतः इनमें प्रणव अपने अर्थ ओ३म् को जाग्रत सा कर देता है। फिर वह ज्ञान का हेतु बन जाता है।

शब्द ओ३म्, अर्थ ब्रह्म ज्ञान, ब्रह्म का साक्षात्कार तीनों का परस्पर सम्बन्ध रहता है। मानसिक ओ३म् की सूक्ष्म ध्वनि ब्रह्म के साथ टकराकर उद्बोधित सा करा कर साक्षात्कार का हेतु हो जाती है। यह क्रम भी ब्रह्म दर्शन का है।

सत्त्वप्रधान फुफ्फुसस्थ आकाश में शब्द द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार

मानसिक ओ३म् शब्द को उरुस्थल की कोशिकाओं में अत्यन्त शनैः-शनैः जाप करता है। उस समय मन और बुद्धि भी सात्विक होते हैं। उस देश के आकाश में भी सत्व प्रधान होता है। उस समय योगी आह्लाद प्रसन्नता और आनन्द में विभोर होकर केवल ओ३म् शब्द के द्वारा ब्रह्म को पुकारता है या इस शब्द से उसे स्मरण करता है। शब्द का सम्बन्ध होने से और साथ ही शब्द के होने से ब्रह्मज्ञान का विषय बन जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वहां उस काल में उन फेफड़ों में अनेक कोशिकाओं में, जो कि कोशिकाओं का जाल सा बिछा हुआ या बना हुआ है, जैसे एक बीहड़ जंगल में प्रवेश करके एक अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु को जो कि बाल के अग्र भाग से भी अति सूक्ष्म है, उसकी खोज करता है। इसी प्रकार फुफ्फुसों की कोशिकाओं में अत्यन्त सूक्ष्म आकाश में आकाश से भी सूक्ष्म ब्रह्म को देखना या जानना योगी चाहता है। उस वक्त आकाश और ब्रह्म के संयोग में आकाश में भी शब्द उत्पन्न होकर आकाश को भी गतिशील बना देते हैं। अर्थात् दोनों का परस्पर आघात या सम्बन्ध होकर शब्द उत्पन्न होता है; वह ब्रह्म ज्ञान में माध्यम या साधन होता है।

शंका—क्या आकाश में भी आप ऐसी अवस्था में गति मानते हैं जिसे आप विभु शब्द से कहते आ रहे थे ?

समाधान--आकाश को विभु प्रतिपादन करने का हमारा अभिप्राय केवल पृथिवी जल अग्नि वायु भूतों की अपेक्षा या इनमें व्याप्त होने से था, न कि प्रकृति और ब्रह्म से था। क्योंकि आकाश भी उत्पन्न हुआ है, अतः कुछ न कुछ गति तो इसमें माननी होगी। उत्पत्ति काल में भी पदार्थ में गति कम्पन आदि धर्म पैदा होते हैं। अतः समाधि का गहन अवस्था में फुफ्फुसस्थ आकाश भी गतिशील होकर शब्द उत्पन्न करता है। वह शब्द ब्रह्म का बोधक होता है। यहां भी ओ३म् शब्द ब्रह्म ज्ञान का कारण होता है।

यदि भगवान् या ब्रह्म को योगी किसी अन्य नाम राम-शिव-विष्णु से उरुस्थल में पुकारता है तब ये शब्द भी प्रणववत् कार्य करते हैं, क्योंकि शब्द का अर्थ और ज्ञान के साथ सम्बन्ध होता है। हम इस ग्रन्थ में बहुत ऊंची साधनाओं का वर्णन कर रहे हैं। पृथिवी-जल-अग्नि-वायु के गुणों की अपेक्षा आकाश और इसके गुण शब्द के द्वारा जो ब्रह्म ज्ञान है, यह एक प्रकार से सूक्ष्म और अन्तिम साधना द्वारा ब्रह्म ज्ञान की बात कही गयी है।

शब्द और ब्रह्म का वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध है। किसी भी देश का व्यक्ति किसी भी देश की भाषा में उस भाषा के शब्द द्वारा ब्रह्म या ईश्वर को पुकारेगा तो उसको भी परमात्मा के ज्ञान का फल वैसा ही मिलेगा जैसा कि प्रणव के द्वारा आपको फल प्राप्त होता है। एक व्यक्ति बहुत से देशों की भाषा को जानता है। वह योगी बन गया है, वह उपर्युक्त विधि से भगवान् की आराधना करता है। वह प्रत्येक भाषा के शब्द से ईश्वर को बुला सकता है, जान सकता है। भाषा केवल अन्तःकरण के भावों को प्रकट करने या वर्णन करने का काम करती है। बिना भाषा के मानव अपने हृदय के भावों को प्रकट नहीं कर सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रजःप्रधान फुफ्फुसस्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

जब योगी दीर्घस्वर से मन्त्र का उच्चारण करता है, और ध्यान का लक्ष्य छाती में फुफ्फुसों को बनाता है, तब इनमें मन्त्र द्वारा या शब्द द्वारा विशेष क्षोभ होता है या ये कांपने लगते हैं। कई बार मेरे व्याख्यानों में ऐसी अवस्था आयी है। जब मैं आत्मा या परमात्मा के विषय में शान्त समाहित होकर उनके स्वरूप का वर्णन कर रहा होता हूं तब इस प्रकार की स्थिति उस धाराप्रवाह प्रवचन में शब्द, अर्थ और ज्ञान की आ जाती है जैसे उस सर्वव्यापक चेतन में आनन्द के गोते लगा रहा हूं और प्रत्यक्ष रूप में साक्षात्कार भी कर रहा हूं। साथ-साथ में शब्द, अर्थ और ब्रह्म ज्ञान होता जा रहा है। भले ही यह अवस्था रजःप्रधान ही होती है। भाषण भी बलपूर्वक रजःप्रधान जोश में आकर उन शब्दों से आकाश भी रजःप्रधान और ब्रह्म भी रजःप्रधान से बने हुए होते हैं। आनन्द की भी साथ-साथ अनुभूति होती है। बुद्धि में भी उत्तेजना, शब्दों में भी उत्तेजना होती है। परन्तु फिर भी समाधि सी लगी होती है और भाषण विज्ञान भी धाराप्रवाह चलता रहता है। शब्द, अर्थ, ज्ञान, ब्रह्म भी रजःप्रधान बने हुए होते हैं। यही विशेषता ब्रह्म की होती है कि वह 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' होता है।

इसी प्रकार वक्षस्थल के फुफ्फुसों में दीर्घ स्वर से मन्त्र या प्रणव अथवा अन्य ब्रह्म के नाम को उच्चारण किया जाये, उस से सभी में रजोगुण की प्रधानता होती चली जायेगी, किसी न किसी रूप में ब्रह्म का अनुभव तो होगा ही। हम यह बात बहुत ऊंचे दर्जे के योगियों की कह रहे हैं, जो एक बार ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके हों। उनको प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक अवस्था में ब्रह्म की अनुभूति हो जाया करती है। सर्वसाधारण योगी को नहीं होती है।

तमःप्रधान फुफ्फुसस्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्मानुभूति

जब योगी कई घण्टे एक आसन पर बैठकर अभ्यास करता है, उस काल में छाती के आकाश में ब्रह्म को साक्षात्कार करने का प्रयत्न विशेष करता है। उस अवसर में व्युत्थान और निरोध होता रहता है और सत्व रज तम गुणों में भी परिवर्तन होता रहता है। कभी सत्व, कभी रज, कभी तम प्रधान होते रहते हैं। उस अवसर में कभी-कभी तन्द्रा निन्द्रा भी अपना प्रभाव आन जमाती हैं। उनके गमनागमन से सत्त्व, तम अवस्था भी होती रहती हैं। जो निरन्तर ब्रह्मानुभूति प्रवाह चल रहा था, उसमें कभी-कभी तन्द्रा का ब्रेक सा लग जाता है। झट योगी पुनः सावधान हो जाता है। उस वक्त ऐसा लगता है कि जैसे चेतन के समुद्र से गोता मारकर बाहर निकला हूं।

यदि इस उरुस्थल के अभ्यास में जालन्धर बन्ध लगा कर के अभ्यास किया जाये तो बहुत जल्दी सफलता प्राप्त होती है, तन्द्रा निद्रा का अभाव बना रहता है और ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साक्षात्कार सुगमता से हो जाता है। इसमें कुछ धुन्धला आलोक सा हुआ करता है, चेतन ब्रह्म में से प्रणव शब्द रिमझिम सा होकर निकला करता है या उदय होता हुआ प्रतीत होता है। उस समय फुफ्फुस आकाश के साथ ब्रह्म की व्याप्ति होती है और भेदाभेद रूप में शब्द के द्वारा अनुभव होता है।

हृदयस्थ आकाश में शब्द के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार

जब योगी हृदय में अभ्यास करता है और हृदयस्थ आकाश में ब्रह्म का अनुसन्धान करता है, इस विषय में छान्दोग्योपनिषद् का प्रमाण है—'स य आकाशं ब्रह्मेत्युपासते आकाशवतो वै सः।' अ० १ खण्ड ११ मं० २। जो आकाश में ब्रह्म की उपासना करता है वह आकाशवत् हो जाता है। तथा च मुण्डकोपनिषद् खण्ड २ मं० ४ है—'प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तत् लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।' भावार्थ—प्रणव (ओ३म्) शब्द को धनुष बनाकर आत्मा को तीर बनावे और ब्रह्म को लक्ष्य बनाकर समाहित चित्त होकर समाधि का विषय ब्रह्म को बनावे। तब ब्रह्म साक्षात्कार होता है। और भी इसके आगे पांचवें मन्त्र में कहा है—'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्तिवःपराय तमसा परस्तात्।' उपनिषद्कार प्रणव शब्द से ओ३म् का ग्रहण करते हैं। इस मन्त्र में ओ३म् का ध्यान करे और आत्मा शब्द से भी कथन किया, अथवा ओ३म् के द्वारा आत्मा का ध्यान करे जो अन्धकार से परे है और प्रकाशस्वरूप सर्वव्यापक दिव्य चेतन स्वरूप है।

हृदय प्रदेश में ओ३म् को माध्यम बना कर ब्रह्म को ध्यान का विषय बनावे, तब उसे साक्षात्कार होता है। इसके आगे और भी मुण्डकोपनिषद् में कहा है—'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि। दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योमन्यात्मा प्रतिष्ठितः।' इस मन्त्र में हृदय प्रदेश को ब्रह्मपुर कहा है, और इस हृदयस्थ आकाश को व्योम शब्द से प्रतिपादन किया है। इस हृदयरूपी आकाश में ब्रह्म की व्याप्ति मान कर सर्वज्ञ शब्द का भी प्रयोग किया है। इसकी महिमा समस्त संसार में सर्वप्रकार की विद्याओं से वर्णन की गयी है।

इसके आगे और मन्त्रों में भी कहा है—'अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः। इस शरीर में प्रकाशमान ज्योतिस्वरूप बिल्कुल शुभ्र चमकीला स्वच्छ परमात्मा जिसको यति लोग अर्थात् संन्यासी जितेन्द्रिय दोष-रहित होकर देखते हैं, अथवा प्राप्त करते हैं।

इस हृदयस्थ आकाश में जो आत्मा और परमात्मा का होना माना जा रहा है इसके विषय में बहुत वाद-विवाद विद्वानों में होते रहे हैं, और अब भी होते रहते हैं, और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भविष्य में भी होते रहेंगे। अत्यन्त सूक्ष्म और परोक्ष एवं अनिवर्चनीय होने से तथा अतीन्द्रिय होने से सदा वाद-विवाद का विषय बना रहेगा। संसार में कभी कोई विरला ही महानात्मा तत्त्वज्ञानी योगी उसको समझ या जान पाता है।

इस ब्रह्म के साक्षात्कार करने के दो ही प्रधान केन्द्र इस शरीर में हैं, एक ब्रह्मरन्ध्र में बुद्धि का स्थान और दूसरा हृदय में चित्त का स्थान। तीसरा गौण रूप में मूलाधार है। जब योगी को इन तीनों में से किसी भी स्थान में एक बार प्रत्यक्ष हो जाता है, तब वह शरीर के किसी भी देश में या अङ्ग में अथवा पदार्थ में सर्वत्र प्रत्यक्ष कर सकता है। तत्त्वज्ञानी शरीर में ही नहीं, शरीर से भिन्न बाहर संसार के सब पदार्थों में प्रत्यक्ष रूप में दर्शन कर सकता है। सर्वत्र उसकी एकरूप में व्यापकता की अनुभूति होती है।

सत्त्वप्रधान हृदयस्थ आकाश में परमात्मा और जीवात्मा का शब्द द्वारा प्रत्यक्ष

सत्त्वप्रधान हृदयस्थ आकाश में जब योगी अपने स्वरूप को जानना चाहता है तब 'अहमस्मि' मन्त्र का जाप अत्यन्त सूक्ष्म रूप में मस्तिष्क में करता है। तब ऊपर से अहम् शब्द के उच्चारण से ध्वनि पैदा होकर वह हृदय में पहुंचकर अस्मि के रूप में शान्त हो जाती है और धाराप्रवाह से निरन्तर पुनः-पुनः मानसिक जाप से उसका तारतम्य बना रहता है। कुछ काल के पश्चात् इस मन्त्र को योगी छोटा कर देता है, अर्थात् अहम् को छोड़कर केवल अस्मि मात्र का ही हृदय में अत्यन्य सूक्ष्म जाप करता है। उस काल में केवल अपने ही स्वरूप का निरन्तर बोध बना रहता है। अस्मि क्रिया जो है इससे कर्त्ता का बोध होता है, तो यहां यह भी सन्देह होता है कि कर्त्ता यहां अहम् है या आत्मा है। वास्तव में अहम् से भी कर्त्ता का ही बोध होता है, क्योंकि कर्त्ता अहं के द्वारा या अहंकार के द्वारा अपने स्वरूप को अनुभव करता है।

यदि स्वरूप के अनुभव के लिए अहंकार को माध्यम बनाते हैं, तब जीवात्मा में कर्तृत्व धर्म मानना पड़ता है। जब कर्तृत्व धर्म मानते हैं तब भोक्तृत्व धर्म भी मानना होगा। ये दोनों धर्म आत्मा में होने से अहंकार और चित्त के समान ही जीवात्मा हो जायेगा। यदि ये धर्म चित्त में मानते हैं, तब इसमें भी यह शंका होती है कि चित्त तो जड़ पदार्थ है, जड़ पदार्थ में ये धर्म नहीं हो सकते। इस प्रकार की शंका चित्त में भी बनी रहती है और आत्मा में भी बनी रहती है। यदि ये दोनों अलग-अलग हो जाते हैं, तब न चित्त में कर्तृत्व धर्म होता है न जीवात्मा में कर्तृत्व धर्म होता है। अतः ये जड़ और चेतन वाद-विवाद का विषय बने ही रहते हैं।

जब इन दोनों का संयोग होता है, तब कर्त्ता और भोक्ता की बात आन उपस्थित होती है। कर्त्ता भोक्ता चित्त को मानें या आत्मा को मानें? चित्त में क्योंकि परिणाम धर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, और चित्त का उपादान कारण भी है, यह उत्पन्न भी हुआ है, अतः भोगादि की बात इस चित्त में ही बनती है। परन्तु व्यवहार में यह बात भी कहता है कि मेरा चित्त इस बात को नहीं मानता है। अतः चित्त को अपनेपन से पृथक् कहता है, और सिद्ध भी करता है। इस व्यवहार से दो ही पदार्थ बनते हैं या सिद्ध होते हैं।

अब रही जीवात्मा की बात। यदि ये भोक्तृत्व और कर्तृत्व आत्मा में मानें तब आत्मा के गुण या धर्म मानने होंगे। इसमें परिवर्तन या अवस्थान्तर धर्म स्वीकार करना होगा। चित्त और जीवात्मा के विषय में संशय सदा बने ही रहेंगे। तब क्या सदा इस रूप में हमारी परंपरा सदा चलती ही रहेगी? और मोक्ष या मुक्ति नाम की कोई बात नहीं बनेगी? केवल मोक्ष भी एक अन्यार्थ कल्पना बन कर रह जायगा?

उपर्युक्त बहुत सी बातों का या शंकाओं का समाधान यह समझ में आता है कि आप भी परमात्मा की तरह बन जायें। जैसे भगवान् सब कुछ करते हुए भी कभी आप से यह नहीं कहता है कि मैं बंधा हुआ हूं या कर्त्ता भोक्ता हूं, हालांकि संसार को उसके बिना कोई अन्य व्यक्ति बना भी नहीं सकता है। यदि आप भी सब कुछ करते हुए यह भावना बना लें कि मैं कुछ नहीं करता, जब मैं कुछ करता नहीं तब भोक्ता भी कैसे हो सकता हूं? जब कर्त्ता और भोक्ता नहीं हूं तो बद्ध और मुक्त भी मैं नहीं हूं। इसी भ्रान्ति में मनुष्य पड़े हुए हैं। जब तक यह भ्रान्ति दूर नहीं होती है तब तक जन्म-मरण, बन्ध-मोक्ष, कर्तृत्व-भोक्तृत्व धर्म बने ही रहेंगे और इस आवागमन के चक्र में यह मनुष्य पड़ा ही रहेगा, इस संसार या शरीर में आता-जाता रहेगा।

जब तक यह शरीर है, तब तक कर्म का अभाव नहीं होगा। मनुष्य चाहे ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, कुछ न कुछ करता ही रहेगा। अतः सर्व कर्मों को एक ही समान समझकर करते रहें। पुण्य और पाप की, शुभ और अशुभ की, ज्ञान और अज्ञान की, धर्म और अधर्म की भावना को त्याग दो, सर्व कर्म एक ही समान हैं। पाप-पुण्य धर्म-अधर्म ये सब हमारे या मनुष्यों के ही बनाये हुए हैं—मनुष्य और समाज को सुव्यवस्थित तथा नियम और संयम में रखने के लिए, अथवा शासन के लिए, या व्यवहार को चलाने के लिए। वरन् मनुष्य पशु के समान ही बन जायेगा। मानव बुद्धिजीवी है, इसमें पशु की अपेक्षा विशेष ज्ञान की ही विशेषता है। वरन् और कोई अन्तर्दृष्टि में नहीं आता है। यह ज्ञान अर्थात् सामान्य और विशेष ज्ञान मनुष्य के लिए बन्ध और मोक्ष बनाता है या निर्माण करता है। रेशम के कीड़े की तरह स्वयं ही अपने अन्दर से तार बना-बनाकर अपने ऊपर स्वयं ही लपेटता रहता है और जाल तनता रहता है। उसी में स्वयं बन्द होकर मर जाता है। दूसरे लोग उस कीड़े को पानी में उबाल कर तार उतार कर रेशम बनाते हैं। यदि पानी में गर्म करके उबाला न जाये तो उस पर से तार नहीं निकलता है, तार टूट कर टुकड़े हो जाते हैं। पानी में उबालने से कोशस्थ कीट मर जाता है और नरम होकर तार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को छोड़ देता है। उससे मनुष्य तार उतार कर रेशम बनाते हैं। यही अवस्था संसार में इस मनुष्य की होती है।

चित्त और आत्मा का संयोग ही चित्त में कर्तृत्व धर्म या गुण उत्पन्न करता है, क्योंकि चित्त उत्पन्न हो कर महत् सत्त्व से आया है। स्वयं परिणामी, परिवर्तनशील, एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तनशील है। अतः ये सब धर्म चित्त में ही मानने या स्वीकार करने होंगे। आत्मा में कुछ भी कोई भी धर्म, कर्म या गुण उत्पन्न नहीं होता, अतः आत्मा को निष्क्रिय असंग निर्लेप निर्गुण मानना होगा। भ्रान्ति और अज्ञान से चित्त के धर्म जीवात्मा में आरोप करते रहते हैं। जैसे बच्चे के मुख में चन्द्रमा का आरोप करते लोक व्यवहार में; वैसे बालक के मुख और चन्द्रमा का कोई मेल नहीं खाता है। पदार्थ भेद से बहुत अन्तर है। परन्तु फिर भी उपमा चन्द्रमा के साथ बालक की देते हैं। वास्तव में ये गुण न जीवात्मा में हैं न परमात्मा में हैं। जो दोष जीवात्मा में गुण मानने से उपस्थित होते हैं वे ही दोष परमात्मा में मानने से भी उपस्थित होते हैं। अतः दोनों को ही निर्गुण निष्क्रिय असङ्ग मानना होगा।

प्रश्न—क्या जीवात्मा और परमात्मा भिन्न-भिन्न हैं ?

उत्तर—नहीं, भिन्न नहीं हैं। इस पांचभौतिक शरीर में परमात्मा सर्वव्यापक होने से चित्त के प्रदेश में इस परमात्मा की जीवात्मा संज्ञा हो जाती है। जब इस व्यष्टि चित्त के साथ परमात्मा का सम्बन्ध हुआ, उस देश के परमात्मा की ही जीवात्मा संज्ञा रख दी। यहां कारण शरीर में व्यष्टि चित्त के संयोग से परमात्मा की ही जीवात्मा संज्ञा हो जाती है। यहां चित्त में चेतना के संयोग से ही प्राण की उत्पत्ति होती है। यहां परमात्मा में न तो परिणाम हुआ है, न किसी प्रकार का परिवर्तन जीवात्मा बनने में हुआ, न कोई अवस्थान्तर धर्म उत्पन्न हुआ है। स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर में व्यापक होने से चित्त प्रदेश के परमात्मा की जीवात्मा संज्ञा रख दी है।

यदि दोनों को आप भिन्न पदार्थ मानेंगे, तब एक शरीर में दो भिन्न-भिन्न चेतन हो जायेंगे। इनकी चेतनता आप समान ही मानते हैं। जब एक चेतन से कार्य शरीर का चल सकता है, फिर एक शरीर में दो चेतन मानने की आवश्यकता नहीं है। दो को मानने से विरोध की संभावना भी हो सकती है। फिर दोनों में अन्तर मानना होगा। अन्तर तो कोई देखने में आता नहीं; शरीरों के भेद से भी परमात्मा में कोई भेद देखने में नहीं आता है। सब शरीरों का उपादान कारण परम्परागत प्रकृति है। परमात्मा प्रकृति में पहले से ही व्यापक था। परमात्मा में उस समय भी कोई विकार नहीं था या हुआ। प्रकृति परिणत होती हुई जब शरीर की अवस्था में पहुंची, तब भी परमात्मा में कोई विकार रूप धर्म या गुण उत्पन्न नहीं हुआ। ये सब अवस्थाएं प्रकृति की ही परिवर्तित हुई। परमात्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में कोई परिवर्तन न होकर केवल मात्र प्रकृति को परिणत होते हुए चित्तों बुद्धियों अहंकारों इन्द्रियों, कारण सूक्ष्म स्थूल शरीरों के रूप में पहुंचने पर आप को प्रकृति के परिणत होते हुए परमात्मा का इसके साथ कोई परिवर्तन नहीं मानना चाहिए। फिर आप को दोनों ही विकारवान् परिवर्तनशील मानने होंगे। उधर प्रकृति परिणाम भाव को परिणत होकर अपने कार्यों को उत्पन्न करेगी, इधर चेतन परमात्मा परिणत होकर अपने कार्यों को उत्पन्न करेगा। प्रकृति के तो अनेक कार्य प्रत्यक्ष देखने में आते हैं, परन्तु चेतन परमात्मा का कार्य रूप पदार्थ देखने में नहीं आता है।

हम वर्णन कर रहे थे हृदय प्रदेश में आत्मा या परमात्मा के साक्षात्कार की बातों का शब्द या मन्त्र द्वारा। पुनः हम उसी स्थान में आते हैं, जब कि मन्त्र या शब्द को माध्यम बनाकर हृदय में आत्मा की अनुभूति या साक्षात्कार हो। पहले प्रणव और गायत्री मन्त्र द्वारा ब्रह्म ज्ञान के साधन बनाये थे। अब ओ३म् और सप्त व्याहृति मन्त्र द्वारा ब्रह्मज्ञान करते हुए हृदय प्रदेश में ब्रह्मरन्ध्र से उतरते या पहुंचते हैं। प्रथम ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश, फिर कर्णेन्द्रियस्थ आकाश, तत्पश्चात छाती में फेफड़ों का या फुफ्फुसस्थाकाश और चौथे स्थान में हृदयस्थ आकाश आता है। तब सप्त व्याहृति में चौथा वाक्य 'ओम् महः' आता है। ओम् महः का उच्चारण ओ३म् की महानता या व्यापकता को सिद्ध करता है। यह परमात्मा महानता के रूप में वर्तमान है, उसकी महानता चित्त प्रदेश में सर्वप्रथम प्रकट हुई क्योंकि शरीर के हृदय प्रदेश में चित्त ज्ञानप्रधान है। यहां की प्रधानता से परमात्मा की या ब्रह्म की प्रधानता का सर्वप्रथम अनुभव हुआ।

यहां ओम् महः के उच्चारण से ब्रह्म या ओ३म् का महान् रूप में अनुभव होने लगता है। इस सप्त व्याहृति मन्त्र के द्वारा भी परमात्मा का हृदय में साक्षात्कार होता है। ओ३म् ही एक प्रकार से महान् ज्ञान के रूप में परिणत होने लगा। इस साक्षात्कार में यह शब्द की ही ज्ञान रूप में विशेषता है। शब्द में ही यह शक्ति है जो अर्थ रूप में परिणत होकर फिर ज्ञान रूप में आता है। अर्थ का परिणाम ज्ञान रूप में होता है। इस ज्ञान में परमात्मा भासने लगता है या यह ज्ञान परमात्मा को दिखाने लगता है।

चित्त प्रदेश में चेतन की व्याप्ति की अनुभूति होने लगती है। शब्द माध्यम बन कर चेतन को जाग्रत सा कर देता है। शब्द चित्त में सूक्ष्म कम्पन करता है, उसमें व्याप्त हुआ चेतन भी चित्त की तरङ्गों पर नृत्य सा करते हुए प्रतीत होता है, क्योंकि यहां चित्त और चेतन दो पदार्थों का संयोग है। यह संयोग ही भेद सिद्ध करता है। ब्रह्म के व्यापक होने से अभेद भी जान पड़ता है, क्योंकि चेतन चित्त से कभी पृथक् नहीं होता है। इसको हिरण्यमय कोश भी कहते हैं। यथा उपनिषद्—'हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तदात्मविदो विदुः।' मुण्डक खं० २ मं० ९। इस मन्त्र में चित्त प्रदेश को हिरण्यमय कोश कहा है। इसमें विशुद्ध निष्कल शुभ्र ज्योतियों की ज्योति ब्रह्म को प्रतिपादन किया है। इसको आत्मविद् योगी जानता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब हम स्थूल शरीर को ब्रह्म ज्ञान के प्रति आधार मानते हैं, तब स्थूल हृदय जो मांस की पेशी से बना है उसको मानना होता है। और जब सूक्ष्म शरीर के हृदय को लक्ष्य बनाते हैं, तब दोनों स्तनों के मध्य में कुछ वाम पार्श्व की ओर सूक्ष्म हृदय को उपलक्ष्य बनाते हैं। इसके अन्दर कारण शरीर का आवास है, इसमें चित्त और आत्मा निवास करते हैं। सर्वत्र इसी स्थान के चित्त को, जो कि अत्यन्त सूक्ष्म है, ग्रहण करते हैं। इस चित्त में आत्मा और ब्रह्म का साक्षात्कार किया जाता है।

इस विषय में उपनिषद् प्रमाण है—'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षःसर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवली निर्गुणश्च।' श्वेता० उ० अ० ६ मं० ११। भावार्थ—एक ही देव परमात्मा सर्व प्राणियों में गूढ़ रूप से छिपा हुआ है। सब में व्यापक सर्व प्राणियों का अन्तरात्मा सर्व कर्मों का अध्यक्ष सब भूत या सब प्राणियों का आवास स्थान या आश्रय सब का साक्षी चेतन केवल निर्गुण है।

सुबालोपनिषद् ने स्थूल शरीर के हृदय का इस प्रकार वर्णन किया है—'हृदयमध्ये लोहितं मांसपिण्डं यस्मिन् तद् दहरं पुण्डरीकं कुमुदमिवानेकधा विकसितं हृदयस्य दश छिद्राणि भवन्ति येषु प्राणाः प्रतिष्ठिताः।' इस का भावार्थ है कि हृदय के मध्य में बाएं स्तन के नीचे मांस का पिण्ड है। इस दहर आकाश या मांस पिण्ड में, जिसका आकार बग्गूगोशे की शक्ल में होता है, ऊपर का भाग पतला होता है जिसमें प्रधान तीन नाड़ियां लगी होती हैं जो रक्त का प्रक्षेपण लुपडप के रूप में धड़कती हुई करती रहती हैं। नीचे का भाग मोटा होता है, जिसमें कमल के फूल की तरह पंखुड़ियां सी होती हैं। इसके मध्य में छोटे अंगूठे के बराबर एक कोश सा होता है। बड़े अंगूर की तरह इस में ये दश छिद्र होते हैं। एक प्रकार से इन छिद्रों में जीवनी शक्ति का संचार प्राण रूप में होता है। स्थूल हृदय स्थूल शरीर का यही होता है। इसमें चोट लग जाने से फेल होने का भय रहता है। यह अंगुष्ठ मात्र मांस का छोटा टुकड़ा अंगूर की तरह होता है। बड़ा कोमल निर्मल गुलाबी रङ्ग का यह बीज कोश होता है। इसमें छिद्रों में से दस प्रकार के सूक्ष्म प्राण जीवन गति को लेकर निकलते रहते हैं।

यह तो स्थूल शरीर के हृदय पुण्डरीक की बात है। दूसरी बात, दोनों स्तनों के मध्य में सूक्ष्म शरीर का हृदय माना जाता है। इसमें सूक्ष्म चित्त का आवास और आत्मा का आवास माना जाता है, जो पुनर्जन्म का हेतु होता है और धर्माधर्म संस्कारों को लेकर परलोक में गमन करता है। इस का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से होता है।

अध्यात्मवादियों ने इस हृदय को अधिक महत्त्व दिया है। यह मांस आदि का पिण्ड नहीं होता, यह आकाश में गमन करने वाला वायु से भी सूक्ष्म सूक्ष्म-शरीर को साथ में लेकर चलता या रहता है। अध्यात्मवादियों ने इसी हृदय की प्रशंसा की है। इसके चित्त में आत्मा का वास माना है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्तमान के डाक्टर भौतिकविज्ञानवादी इस हृदय (हार्ट) को ही अधिक महत्त्व देते हैं। इसको ही जीवन का आधार मानते हैं। इसकी गति ठीक रहने और ठीक कार्य करने को महत्त्व देते हैं। प्रत्यक्ष विज्ञानवादी होने के कारण से, क्योंकि आंखों से तो यही देखने में आता है, मशीन की कसौटी पर भी यही उतरता है और देखने में आता है।

अध्यात्मवादी चित्त अन्तःकरण की कपोलकल्पित केवल अनुमान और शब्द प्रमाण की बातें ही कहते हैं। इन आनुमानिक बातों को प्रत्यक्षवादी डाक्टर स्वीकार नहीं करते हैं।

अब हम हृदय प्रदेश के कारण शरीर अन्तःकरण की ही चर्चा प्रारम्भ करते हैं, जो हमारा वास्तविक लक्ष्य है, जिसमें दिव्य शब्द द्वारा आत्म-साक्षात्कार होता है।

कारण शरीर के अन्तःकरण में दिव्य शब्द द्वारा आत्म-साक्षात्कार

हम कारण शरीर में सात्विक राजस तामस भेद से कुल १३ पदार्थ मानते हैं। आत्मा, सत्त्व प्रधान चित्त, रजःप्रधान चित्त, तमः प्रधान चित्त, सत्त्वप्रधान अहंकार, रजः प्रधान अहंकार, तमःप्रधान अहंकार, सत्त्वप्रधान शब्द या ज्ञान, रजःप्रधान शब्द या ज्ञान, तमःप्रधान शब्द या ज्ञान, सत्त्वप्रधान प्राण, रजःप्रधान प्राण, तमःप्रधान प्राण—ये अवस्थाएं इन पदार्थों की होती हैं। इन में आत्म-साक्षात्कार के विषय में चित्त के सात्विक राजस तामस और अहंकार के सात्विक राजस तामस भेद द्वारा कई स्थानों में आत्म-साक्षात्कार के साधन वर्णन कर चुके हैं। यहां तो केवल चित्त के जो सर्वप्रथम परिणामात्मक गुण या पदार्थ शब्द और प्राण हैं, इन के सात्विक राजस तामस भेदों में आत्मा के साक्षात्कार का वर्णन करते हैं।

सत्त्वप्रधान शब्द में आत्म-साक्षात्कार

जब आत्मा और चित्त या ब्रह्म का चित्त के साथ सर्वप्रथम सम्बन्ध होता है तब इसमें ज्ञान रूप शब्द का प्रादुर्भाव होता है। इसी प्रकार सर्वप्रथम जब ब्रह्म का प्रकृति के साथ सम्बन्ध होता है, वहां भी प्रकृति में सर्वप्रथम ज्ञान रूप शब्द का ही प्रादुर्भाव या परिणाम होता है। यहां चित्त और ब्रह्म के संयोग से चित्त में भी ज्ञान का रूप परिणाम ही होता है, इसे हमने सूक्ष्म रूप में होने से सूक्ष्म शब्द की संज्ञा ही दी है। अतः चित्त का सर्वप्रथम रूप परिणाम शब्द ही हुआ।

यह शब्द भी एक प्रकार से चित्त का सर्वप्रथम परिणाम सात्विक रूप न होता है। जब हम चित्त की सात्विक अवस्था को सम्मुख रखकर इसके सात्विक शब्द को 'अहमस्मि'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप में समाधि का विषय बनाते हैं, तब वहां दिव्य शब्द के रूप में 'मैं हूं' इस प्रकार का इस शब्द द्वारा बोध होता है। इस काल में समाधि की गहन अवस्था में इस दिव्य शब्द द्वारा सत्त्वप्रधानात्मक अपने रूप का शान्त और आनन्द रूप में विवेक या साक्षात्कार होता है। यह जो ज्ञान है अपने स्वरूप का, यह चित्त की सर्वप्रथम रूप वृत्ति जो ज्ञान या शब्द के रूप में है, इसके द्वारा ही यह आत्म-साक्षात्कार होता है।

वास्तव में योगी का लक्ष्य जो होता है वह यही होता है कि ब्रह्म ज्ञान से पूर्व अपने वास्तविक स्वरूप का पता लग जाये कि मैं कैसा हूँ, नित्य हूं या अनित्य हूं, जड़ हूं या चेतन हूं, सब शरीरों से मैं भिन्न हूं, ब्रह्म से भिन्न हूं या अभिन्न हूं। इस चित्त के सर्वप्रथम ज्ञान या शब्द रूप परिणाम से आत्मा निष्क्रिय असंग निर्लेप निरवयव देखने में आता है, चाहे इसकी अनुभूति चित्त के ही प्रदेश में हो अथवा चित्त की दीवार या दायरा भेदन करके बाहर को निकली हुई प्रतीत एक ही समान आत्मा की सत्ता की अनुभूति हो, आत्मा और परमात्मा का भेद ही, समाप्त हो जाये। जो आत्मा के विषय में अनेक जन्म-जन्मान्तरों से भ्रान्तियां चली आ रही थीं वे सब दूर हो जायें। यह आत्मविज्ञान रूप ज्ञान चित्त के प्रथम परिणाम शब्द या ज्ञान द्वारा इसका प्रत्यक्ष निर्भ्रान्ति साक्षात्कार होकर सर्व बन्धनों और अज्ञान से योगी मुक्त हो जाता है। 'क्षीणे पापपुण्ये ब्रह्मलोक वसन्ति', इसी स्थूल शरीर के रहते हुए योगी जीवन मुक्ति के सुख, शान्ति और आनन्द का उपभोग करते हुए संसार में विचरता है। 'चक्रभ्रमणवत् धृतशरीरः' के आधार पर जब तक इस शरीर के प्रारब्ध जन्म कर्म और भोग शेष रहते हैं।

शंका—जब तत्त्व ज्ञान हो गया, आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार हो गया, परम वैराग्य भी हो गया, सब कर्तव्य कर्म समाप्त हो गये और मुक्ति के सुख को इस स्थूल शरीर के रहते हुए भोगने लगा, तब इस स्थूल शरीर की क्या आवश्यकता है ?

समाधान—क्या आप इस शरीर के मरण को ही मुक्ति कहते हैं ? तब तो क्योंकि सब शरीरों का मरण या विनाश होता है, सब ही मरने के पश्चात् मुक्त हो जाने चाहियें। सो तो होता नहीं। जब तक ज्ञान और परम वैराग्य नहीं होते तब तक मोक्ष नहीं होता। अतः मोक्ष के प्रति ज्ञान और वैराग्य की ही प्रधानता है, शरीर की प्रधानता नहीं मानी जाती है। फिर तो आप सूक्ष्म और कारण शरीर के भी मरण के पश्चात् मोक्ष मानोगे। जब स्वर्ग लोक या ब्रह्म लोक में उन शरीरों के रहते हुए ही स्वर्ग लोक या ब्रह्म लोक के सुख शान्ति आनन्द का भोग मानते हैं तब स्थूल शरीर को क्यों मोक्ष के सुख में बाधक मानते हो ? अतः स्थूल शरीर के रहते हुए भी मोक्ष के सुख शान्ति आनन्द का भोग किया जा सकता है। परम ज्ञान वैराग्य हो जाने पर, चाहे कोई भी शरीर हो उसमें रहते हुए मुक्ति के सुख को भोगा जा सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे शरीर, इन्द्रियों और अन्तःकरण के स्वाभाविक धर्म। ये तो मूर्खों और आत्म-ज्ञानियों के भी रहते हैं। यथा भूख प्यास निद्रा जाग्रत स्वप्न टट्टी पेशाब शरीर का गमनागमन शरीर में वृद्धावस्था और इसमें कुछ ह्रास या कुछ व्याधि देश काल के कारण गर्मी आदि स्वाभाविक धर्मों कर्मों को रोका या दूर नहीं किया जा सकता है। ये तो अवश्य ही शरीर में आएंगे और भोग भी भोगने पड़ेंगे। इनका निवारण या निरोध करना असंभव ही है।

रजःप्रधान दिव्य शब्द या दिव्य ज्ञान द्वारा आत्म-साक्षात्कार

अन्त.करण के चित्त प्रदेश में रजःप्रधान शब्द या ज्ञान द्वारा आत्म-साक्षात्कार। जब योगी 'अहमस्मि' मन्त्र को वेगपूर्वक अथवा बलपूर्वक हृदय में उच्चारण करता है तब इस मन्त्र द्वारा चित्त प्रदेश में बड़ा क्षोभ होकर विशेष तरङ्गें चित्त और इसका परिणाम ज्ञान या शब्दात्मक वृत्ति भी क्षुभित होकर विशेष देदीप्यमान हो जाती है और इसमें विशेष ज्ञान रूप प्रकाश रजःप्रधान हो जाते हैं। इस अवस्था में आत्मा का स्वरूप जो अहम् अस्मि रूप होता है उसमें विशेष दीप्ति हो जाती है। सुख शान्ति और आनन्द भी विशेष उज्ज्वल रूप में भासने लगते हैं। भले ही यह रजःप्रधान अवस्था है, परन्तु शब्द ज्ञान रूप में तो है ही। अतः इस अवस्था में आत्मा विशेष देदीप्यमान होकर भासने लगते हैं। आह्लाद और हर्ष आनन्द में भी चमक दमक विशेष अनुभव में आने लगती है। यही विशेषता यहां रजःप्रधान शब्द की या ज्ञान की है। चित्त की सर्वप्रथम परिणाम अवस्था वृत्ति रूप में या शब्द तथा ज्ञान रूप में रजःप्रधान परिणाम की है।

इस चित्त के प्रथम ज्ञान रूप परिणाम की दूसरी अवस्था रजःप्रधान रूप में यह होती है। योगी को इसके द्वारा भी आत्म-साक्षात्कार करना चाहिये और इस स्वाभाविक चित्त के शब्द या ज्ञान के रूप में दूसरे परिणाम रजःप्रधान में भी अधिकारपूर्वक आत्म-साक्षात्कार करना चाहिये।

तमःप्रधान दिव्य शब्द द्वारा चित्त प्रदेश में आत्मा की अनुभूति

जब चित्त प्रदेश में तमःप्रधान दिव्य शब्द द्वारा आत्म-साक्षात्कार योगी करता है तब योगी की स्थिति तम के प्रभाव से उतनी शान्त या देदीप्यमान नहीं होती है जितनी कि सत्त्व और रज की प्रधानता में होती है, क्योंकि कुछ न कुछ तमोगुण का तो प्रभाव बुद्धि और चित्त पर होता ही है।

जब योगी मन्द गति से दिव्य शब्द को तम की अवस्था में 'अहमस्मि' मन्त्र को लेकर पुनः मन्त्र के अभ्यास द्वारा आत्मा को जागृत सा करना चाहता है, तब कुछ-कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्द और धुंधले से वर्ण का आत्मा का रूप देखने में आने लगता है। इस आत्मा में भी परमात्मा की तरह यह विशेषता है कि यह भी ब्रह्म की तरह 'वृत्तिसारूप्यमितरतरः' हो जाता है। अर्थात् जैसी वृत्ति सामने आती है, जैसा गुण या अन्य पदार्थ सामने आता है, यह भी तद्रूप हो जाता है। क्योंकि इस अवस्था में तमःप्रधान शब्द या ज्ञानात्मक वृत्ति या चित्त की अवस्था सामने आती है इस हेतु से आत्मा भी तद्रूप भासने लगता है।

परन्तु योगी को इस अवस्था में आत्म-दर्शन होने पर भी कोई बुरा महसूस नहीं होता है। इस योगी ने सत्त्व-रजः-प्रधान अवस्था में भी आत्म-दर्शन किये होते हैं। यह उन अवस्थाओं और इसमें आप में कोई अन्तर नहीं देखता है। केवल गुण का ही अन्तर देखता है और इसकी परिणत होती हुई अवस्थाओं को देखता है। इन चित्त या गुणों के रूप में पदार्थों का परिवर्तन स्वाभाविक देखकर इसे आश्चर्य या हर्ष या शोक नहीं होता है।

योगी को इन पदार्थों की परिवर्तन हुई अवस्थाओं में कोई शोक-हर्ष या सुख-दुःख अथवा लाभ-हानि नहीं होता है। ये स्वाभाविक धर्म पदार्थों के परिवर्तन होते रहते हैं। परन्तु आत्मा सदा निर्लेप असङ्ग विकार-रहित हर्ष-शोक से दूर रहता है और चतुर बुद्धिमान् खिलाड़ी की तरह प्रकृति के कार्यात्मक पदार्थों में भगवान् को लेकर या आत्मा को लेकर सदा खेलता रहता है।

यह हमने शब्द या ज्ञानात्मक परिवर्तन होकर आयी हुई चित्त की सात्त्विक राजस तामस अवस्थाओं में शब्द विज्ञान का वर्णन किया है। यह अवस्था गुण भी हो जाती है और स्वरूप से भिन्न पदार्थ भी हो जाता है। इसके सात्त्विक राजस तामस भेद भी देखने और व्यवहार में अनुभव भी हुए हैं। समाधि की अवस्था में भिन्न रूप में इन की अवस्थाओं को भी देखा है।

शंका—इस शब्द को स्मृति वृत्ति की तरह ज्ञान का ही परिणाम मान लें, भिन्न पदार्थ या अवस्था शब्द को न मानें, तब क्या आपत्ति है ?

समाधान—आपत्ति यह होती है कि सब पदार्थों को, जो दृश्यमान और अदृश्य संसार में हैं, दृष्टि से ओझल करके एक प्रकृति को ही मान लें, तब आपका और संसार का यह जो दृश्यमान सब खेल है यहीं समाप्त हो जाना चाहिये। परन्तु हम दृश्यमान संसार के और प्रकृति तथा इसके कार्यों को प्रत्यक्ष देखते हैं। तब चित्त के परिणामात्मक शब्द और प्राण को कैसे नजरन्दाज कर दें ? अतः शब्द और प्राण को आप को चित्त से भिन्न और अभिन्न पृथक् पदार्थ ही मानना होगा, जैसे कि प्रकृति के कार्यों को प्रकृति से भिन्न भी मानते हो और अभिन्न भी क्योंकि कारण कार्यों में अनुस्यूत रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण शरीर के अन्तःकरण में चित्त में दिव्य प्राण द्वारा आत्म साक्षात्कार

जब आत्मा और व्यष्टि चित्त का परस्पर संयोग होता है तब चित्त में जो सर्वप्रथम क्रिया परिणामात्मक होती है उसे क्रिया अथवा गति अथवा कर्म भी कह सकते हैं। इसका नाम सूक्ष्म प्राण है। यह सूक्ष्म प्राण भी, साम्यावस्था में जो प्रकृति में सूक्ष्म परिणामात्मक क्रिया बनी रहती है वह ही परिणत होती हुई यहां चित्त प्रदेश में प्राण के रूप में उदय हुई है और व्यष्टि भाव को प्राप्त हुई है।

सत्त्वप्रधान प्राण चित्त प्रदेश में कर्म के रूप में भी समझना चाहिये। जैसे ज्ञान रूप चित्त का परिणाम शब्द के रूप में आविर्भाव हुआ, इसी प्रकार कर्म रूप चित्त का परिणाम प्राण के रूप में उदय या प्रकट हुआ। इनको ज्ञान और कर्म को भी चित्त के परिणाम कहेंगे अथवा शब्द और प्राण नाम से प्रतिपादन करेंगे। प्राण और चित्त का कार्य-कारणात्मक सम्बन्ध है। जब योगी चित्त और प्राण के मध्य में ओंकार को इनके ज्ञान के लिए माध्यम बनाता है तब ये दोनों गतिशील होकर परिणामात्मक व्यापार करने लगते हैं। तब इनके स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। जब चित्त के ही प्रदेश में प्राण को माध्यम बनाकर भगवान् के नाम का पुनः-पुनः स्मरण करते हैं तब यह अभ्यास होकर ब्रह्मज्ञान का हेतु बन जाता है। वैसे प्राण स्वरूप से रजःप्रधान है, परन्तु क्योंकि चित्त में ही उसका वृत्ति रूप कर्म भी है इसलिए इसे सात्त्विक चित्त की अवस्था में इस प्राण और ब्रह्म के मध्य में प्रणव मन्त्र को ज्ञान का माध्यम बनाकर पुनः-पुनः परमात्मा का आह्वान करना चाहिये। तब इस भावना को लेकर कि कभी तो दीनदयाल के झनक पड़ेगी कान, का ख्याल रखते मन के द्वारा मानसिक प्रणव जाप से, श्रद्धा भक्ति प्रीति विश्वास से, भगवान् को पुकारें या स्मरण करें।

शब्द अर्थ का सम्बन्ध होता है। भले ही प्राण कर्मप्रधान है परन्तु कर्म भी तो ज्ञान का प्रधान साधन है। बिना कर्म के ज्ञान भी गतिशील होकर अपना विस्तार या स्वरूप भी है परन्तु बिना प्राण रूप गति क्रिया कर्म के यह अपने स्वरूप और भगवान् के स्वरूप को भी दिखा न सकेगा। इस चित्त की ये दो वृत्तियां प्रधान और सर्व प्रथम हैं। ज्ञान और कर्म इनका दूसरा नाम है। ज्ञान शब्द रूप में परिणत होता है और कर्म प्राण रूप में परिणत होता है। ये शब्द और प्राण अपने स्वरूप को भी दिखाने में समर्थ हैं। चित्त और आत्मा एवं परमात्मा को भी दिखाने में समर्थ हैं। यही नहीं, जगत् के उपादान कारण प्रकृति और इसके कार्यों का भी ये ही साक्षात्कार आपको कराएंगे। ये दोनों मूल प्रकृति के भी सर्वप्रथम कार्य हैं और मूल रूप चित्त के भी सर्वप्रथम कार्य आप समझें। भगवान् इन दोनों को साथ में लेकर संसार का निर्माण करने चलता है। और आत्मा इन दोनों को लेकर अपने भोग और अपवर्ग को सिद्ध करने चलता है। इन दोनों के द्वारा ही इसका जन्म मरण कर्म ज्ञान भोग और मोक्ष प्राप्त करना होता है। इनके बिना जीवात्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के कार्य का क्षेत्र भी नहीं बनता है और परमात्मा का भी संसार रूपी कार्यक्षेत्र नहीं बनता है। अतः इन दोनों शब्द और प्राण की, अथवा इनका दूसरा नाम ज्ञान और कर्म है इनकी, प्रधानता और बोलवाला संसार में है।

प्राण में सात्त्विक भावना कब बढ़ती है, जब इसके साथ ज्ञान की प्रधानता हो जाती है। ज्ञान की प्रधानता कब होती है, जब समाधि की अवस्था में सब ओर से चित्त समाहित होकर किसी पदार्थ का साक्षात्कार करता है अथवा आत्मा परमात्मा का दर्शन करना चाहता है। तब ज्ञान की प्रधानता और सात्त्विकता इसमें आ जाती है। तब इस प्राण में सत्त्व गुण प्रधान होने से प्राण मन्द पड़कर शान्त भाव से गति करते हुए जीवन सुरक्षित बनाए रखता है और आत्मा या परमात्मा के ज्ञानरूपी अमृत का मधुर पान कराके अक्षय सुख शान्ति और आनन्द प्रदान करता रहता है।

योगी लोग सदा इस सात्त्विक प्राण को रखकर, दीर्घ काल तक जीवन धारण करते हुए, जीवन मुक्ति के सुख शान्ति आनन्द का, इस शरीर के रहते मोक्ष के समान आनन्द का, भोग किया करते हैं। संसार में यह प्राण सर्वप्रिय है, क्योंकि सर्व प्राणी जीवन के आधार सर्व सुखों के दाता इसे प्यार करते हैं। इससे अलग होना पसन्द नहीं करते। इसके मुकाबले में संसार का कोई और पदार्थ इतना अच्छा प्यारा नहीं लगता। इसे हर समय आलिङ्गन और प्यार करने को सब का दिल करता रहता है। यही एक पदार्थ शरीर में ऐसा है जो २४ घण्टे हमारे साथ रहता है। एक क्षण भी यह आराम से नहीं बैठता। यह हमारा सेवक भी और मित्र भी और मालिक भी है। अथर्ववेद ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। यथा—'नमस्ते प्राण प्राणते नमोऽस्त्वपानते। प्राचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः। सर्वस्मै त इदं नमः॥' अथर्ववेद, मं० ८, सूक्त ४, का० १२। अर्थ—(प्राण प्राणते नमः) प्राणक्रिया या कर्म करते श्वास लेते हुए आपको नमस्कार है।)अपानते नमः अस्तु) श्वास त्याग करते हुए प्राण तुझे नमस्कार या प्रणाम है। (प्राचीनाय प्रतीचीनाय नमः) देह से बाहर जाते हुए तेरे लिए नमस्कार है। (सर्वस्मै ते) चराचर में विद्यामान आपके लिये नमस्कार है। (इदं नमः) यह हमारा आपके लिए सम्मान आ आदर भाव है।

अथर्ववेद में इस प्राण के द्वारा सहस्र वर्ष को आयु का उपभोग करने का विधान है। इसीलिए कहा है—'प्रजापते आवतो ब्रह्मणा चर्मणाहं कश्यपस्य ज्तोतिषा वर्चसा च जरदष्टिः कृतवीर्यो विहाय सहस्रायेः सुकृतश्चरेम। अ० वे०, मं० २७, सू० १, काण्ड० अर्थ—(प्रजायते) प्रजा के पालक मेरे भगवान् (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान रूप (चर्मणा) कवच से (आवतः) सुरक्षित (कश्यपस्य) सर्वद्रष्टा (ज्योतिषा) तेजोमय तेजस्वरूप (वर्चसा) प्रकाशयुक्त होकर (जतदष्टिः) वृद्धावस्था तक भोगने की शक्ति या कर्म करते सहने की शक्ति (कृतवीर्यः) बलवान् होकर या बल प्राप्त करके बलिष्ठ होकर (सहस्रायुः) हजारों वर्षों तक जीवन प्राप्त करूं (सुकृतः) पुण्य कर्म करते हुए श्रेय मार्ग पर चलते हुए धर्मात्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर (चरेम) संसार में लोकोपकार करते हुए जीवन मुक्त होकर विचरूं। कितना अच्छा विधान इस प्राण से दीर्घायु प्राप्त करके मानव जीवन का किया है! संसार में जीवन का आधार, दीर्घायु का साधन और सर्व सुख देने वाला यह सत्त्वप्रधान प्राण है।

रजःप्रधान प्राण कारण शरीर के अन्तःकरण में दिव्य शब्द द्वारा आत्म साक्षात्कार

रजःप्रधान प्राण के द्वारा संसार के सर्व व्यवहार किये जाते हैं। शारीरिक कार्य परिश्रम के कार्य इसी की प्रधानता में होते हैं। युद्ध के समय में, कृषि के कार्यों में, खेलकूद में, आसन प्राणायाम करते समय इस रजःप्रधान प्राण के बल की बड़ी आवश्यकता है। शरीर में बल शक्ति पराक्रम यह रजःप्रधान प्राण ही कायम रखता है। संसार के सर्व कार्य और व्यवहार में, सन्तान के उत्पन्न करने में रजःप्रधान प्राण की ही आवश्यकता होती है। संसार के सब कर्म और भोग कार्य और व्यापार तथा व्यवहार इस रजःप्रधान प्राण के द्वारा सम्पन्न होते हैं।

प्राणायाम भी रजःप्रधान प्राण की अवस्था में किये जाते हैं, जो कि दीर्घायु का हेतु होते हैं। जाग्रत अवस्था में लोक व्यवहार करते हुए इस रजःप्रधान प्राण की शक्ति हमें सफल बनाती है कार्य करने में। प्राणायाम के द्वारा इस प्राण के बल शक्ति पराक्रम को बढ़ाया जाता है। इस रजःप्रधान प्राण के लिए नमस्कार है, जो हमें कर्म करने में समर्थ बनाता है। हमारे सर्व कार्य सिद्ध करने के लिए इस बलवान् प्राण की आवश्यकता है। जिसके प्राण बलवान् होते हैं उनका मुख मण्डल सदा चमकीला तेजस्वी हुआ करता है। उसमें कर्म करने की बल शक्ति बनी रहती है। यह व्यक्ति निकम्मा निठल्ला निष्कर्म बेकार होकर बैठना पसन्द नहीं किया करता है। इस व्यक्ति के जीवन में आलस्य प्रमाद अपना डेरा बसेरा नहीं करते हैं। यह महापुरुष सदा विजयी हुआ करता है। भगवान् कृष्ण, राम, विष्णु आदि महापुरुष सदा इस रजःप्रधान प्राण के द्वारा शत्रुओं और संसार पर विजय प्राप्त करते रहे हैं। यह व्यक्ति शूरवीर तेजस्वी पराक्रमी सदा विजयी हुआ करता है। संसार की परम्परा और लोक व्यवहार सदा इसी के प्रभाव से चलते रहे हैं। देश का शासन, व्यवस्था, मर्यादा, रक्षा इस रजःप्रधान प्राण के बल से ही सदा चलते रहे और चल रहे हैं और भविष्य में चलेंगे। कर्म ज्ञान की व्यवस्था मर्यादा राजपुरुष इसकी अध्यक्षता में किया करते हैं। इनके सब व्यवहार इसी के आश्रय पर चलते हैं।

यह सत्त्व और तम प्राण का पोषक रक्षक है। व्युत्थान की अवस्था जब तक शरीर इन्द्रिय अन्तःकरण में रहती है तब तक इसकी ही प्रधानता जीवन में बनी रहती है। संसार इसी के बल पर चल रहा है और ठहरा हुआ भी है। बलवान् रहने से संसार के सर्व प्राणी इसके आगे मस्तक झुकाते हैं और इसे ही प्रणाम करते हैं। मनुष्य से इतर प्राणी में रजः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और तमः प्राण की प्रधानता रहती है। दिन भर के सब कर्म व्यवहार इसी के आश्रय पर चलते हैं। यदि यह न हो तब सत्त्वगुणी समाधि लगाकर बैठे रहेंगे, तमोगुणी सोते रहेंगे, या आलसी प्रमादी दीर्घसूत्री बनकर पड़े रहेंगे। अतः भोग और अपवर्ग में सर्वाङ्ग रूप में रजःप्रधान प्राण बहुत उपयोगी और सहायक है।

रजोगुण की प्रधानता में जब योगी आभ्यन्तरिक और बाह्य प्राणायाम करता है तब प्रणव के मानसिक उच्चारण से दिव्य ज्ञान रूप आलोक उत्पन्न होकर एक क्षण में आत्मा या परमात्मा के दर्शन करा देता है, भले ही यह आलोक या दर्शन थोड़े समय के लिए ही होता है, क्योंकि प्राण का निरोध बहुत लम्बे अवसर तक नहीं होता। परन्तु इस दिव्य आलोक से पूर्ण जो आत्म-दर्शन और ब्रह्म-दर्शन होता है, जीवन में उसकी स्मृति कभी भूलती नहीं है। इसमें आनन्द की उत्ताल तरङ्गें और दिव्य ज्योति का प्रकाश संसार की सर्व ज्योतियों को मात कर देता है।

अतः रजःप्रधान प्राण का भी बड़ा महत्त्व है। संसार में इसके उपासक संख्या में सबसे अधिक इच्छुक और देखने में आते हैं। संसार के लोक व्यवहार सब इसी के आश्रय पर चलते हैं। इसी की प्रधानता संसार में देखने में आती है। इसके आश्रय पर संसार के लोग जीवन को सुरक्षित और दीर्घजीवी बनाने की इच्छा या कामना करते हैं।

जीवन का इतना लम्बा संघर्ष इसी के सहारे होता या चलता है। मैं अपने को बड़ा भारी योगी समझे बैठा हूं, परन्तु जीवन का अधिकतर भाग इस रजःप्रधान प्राण के संघर्ष में ही बीता है। यह जो अपने ग्रन्थों में इतना विज्ञान लिखा है या पढ़ा है और लोगों को सहस्रों ही नहीं लाखों को सिखाया है या पढ़ाया है या उपदेश द्वारा बताया है, यह इसी रजःप्रधान प्राण की प्रधानता में हुआ है या किया है। अतः इस उपास्य देव प्राण को मैं नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूं।

सत्त्वप्रधान प्राण की अवस्था लाने में बहुत समय लगता है, परन्तु इसके लाने में मिनट ही लगते हैं प्राणायाम से शीघ्र रजःप्रधान करके ब्रह्म ध्यान ज्ञान साक्षात्कार जल्दी हो जाता है। परन्तु यह ज्ञान दूध के उबाल की तरह शान्त भी जल्दी हो जाता है। कोई पदार्थ थोड़े पुरुषार्थ से प्राप्त होता है तो थोड़े समय में चला या खत्म भी हो जाता है। सर्वश्रेष्ठ ज्ञान तो वही है, दर्शन वही स्थायी है, जब इच्छा हो दर्शन कर लिया। इतना अधिकार मन, बुद्धि और चित्त पर होना चाहिये। क्योंकि यह शरीर पंच भूतों से बना है अतः इसने तो इन भूतों और इनके विषयों की ओर दौड़ना या लगे रहना है।

परन्तु मन तो इनसे नहीं बना है। मन जिससे बना है, मन और बुद्धि का उपादान है अहंकार और रजःप्रधान महत्तत्व। ये दोनों अपने उपादान कारणों और अपने साथी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके कार्यों की ओर अधिक दौड़ेंगे या प्रवृत्त होंगे। अतः योगी को इन पर नियन्त्रण रखना चाहिये। बेलगाम के घोड़े और बिना अंकुश के हाथी के समान इन्हें नहीं रखना चाहिये। स्थूल शरीर और स्थूल लोक, सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म लोक ये सदा इनके विषय बने ही रहेंगे। अतः इन्हीं के निरोध के लिए योगी सदा यत्नशील बने रहते हैं। हां, कारण शरीर में जो अन्तःकरण में चित्त है इसको आत्मा परमात्मा की ओर लगाना चाहिये, क्योंकि इसका संसार बहुत छोटा और सीमित है। इसकी दौड़धूप के लिए इसका कार्यक्षेत्र बहुत छोटा सा सीमित है। यह अधिक समय तक आत्मचिन्तन व ब्रह्मचिन्तन कर सकता है। और यह रजःप्रधान प्राण भी इसके पास ही रहता है। इसके विषय भी बहुत कम और सूक्ष्म हैं। वैसे तो सम्पूर्ण संसार ही बीज रूप में इसमें वर्तमान रहता है परन्तु वह अधिक बाधक नहीं होता है। जब तक स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का इसके साथ सम्बन्ध रहता है तब तक इसकी परेशानियां बहुत होती हैं और ये दोनों शरीर, इनकी इन्द्रियां और मन बुद्धि आराम से नहीं बैठने देते। शरीर या इनके विषयों के झंझटों में लगे या फंसे रहते हैं। स्थूल और सूक्ष्म शरीर या जगत् का विस्तार भी इन दोनों का देखने में आता है।

कारण शरीर के अहंकार और चित्त आत्म-प्रत्यक्ष और ब्रह्म-प्रत्यक्ष में इनके बहुत समीपवर्ती हैं। ये तो एक प्रकार से ब्रह्मलोक और इस लोक का ही प्रधान रूप में चिन्तन करने योग्य या उपयोगी हैं। निद्रा और समाधि में यही काम आते हैं। निद्रा में स्वाभाविकतया अनायास जबरदस्ती ये ले जाते हैं और समाधि में प्रयत्न और अभ्यास से इन्हें लगाया या ले जाया जाता है।

अतः योगी को इस अन्तःकरण के क्षेत्र में अधिक रमण करना चाहिये। किसको? जिसके सांसारिक सब कर्तव्य धर्म कर्म लोक व्यवहार खत्म हो गये हों। वे इस चित्त के प्रदेश में अधिक विचर सकते और रह सकते हैं। ज्ञातज्ञेय योगी सदा इस छोटे से ब्रह्मलोक या ब्रह्मपुर हृदय प्रदेश में विचरण या निवास किया करते हैं। जिन योगियों को स्थूल शरीर का ज्ञान हो गया है, इसके अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश एवं विज्ञानमय कोश का साक्षात्कार हो गया है, एवं सूक्ष्म शरीर और इन्द्रियों मन बुद्धि का यथार्थ ज्ञान हो गया है, इस कारण शरीर और इसके पदार्थों का जिनको प्रत्यक्ष हो गया है, वे योगी इस चित्त प्रदेश की ब्रह्म या आत्म पुरी में भगवान् के या आत्मा के आनन्द का उपभोग करते हैं।

यह ब्रह्मपुर का प्रदेश ज्ञातज्ञेय जीवनमुक्त योगी के लिए आनन्द के उपभोग के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। जब तक यह स्थूल शरीर रहता है तब तक उस जीवनमुक्त युञ्जान योगी के लिए निरन्तर ब्रह्मलोक बना रहता है और ब्रह्मलोक के समान इसी स्थूल पञ्च भूतों के लोक में परमानन्द का उपभोग करता है। यदि कोई योगी इस लोक में ही ब्रह्म-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोक का सुख भोगना चाहता है, उसको 'दिव्य ज्योति विज्ञान' ग्रन्थ के तथा 'प्राण विज्ञान' ग्रन्थ के आधार पर एवं इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ के आधार पर साधना, अभ्यास और तत्त्व ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। वह योगी इसी जीवन और इसी शरीर में रहकर ब्रह्मलोक के समान शान्ति और आनन्द का उपभोग कर सकता है या ले सकता है।

हमने इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के बहुत सुगम और सरल साधन बताये हैं, और विद्वानों एवं ज्ञानियों के लिए सूक्ष्म और गहनतम विज्ञान प्राप्त करने के भी साधन बताये हैं। अतः दोनों प्रकार के योगियों अर्थात् सामान्य और विशेष योगियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

कारण शरीर के चित्त प्रदेश में तमःप्रधान दिव्य प्राण द्वारा आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार

वास्तव में कारण शरीर में जब तमःप्रधान प्राण अपना कार्य करता है तब कुछ धुन्धले से वर्ण का प्राण होता है। यदि योगी इसमें प्रणव या अन्य मन्त्र को प्राण या आत्मा के अथवा परमात्मा के मध्य में साधन बनाता है तो इसे आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो सकता है।

यदि योगी ६ घण्टे निद्रा लेता है तो दिन के २४ घण्टों का चौथाई भाग तो तमःप्रधान प्राण के कार्य में लगातार एक समान क्रिया करने में ही बीत जाता है। यदि योगी शयन से पूर्व निद्रा और तमःप्रधान प्राण को अपनी समाधि का विषय बना ले तो यह तमःप्रधान प्राण की अवस्था भी निर्विकल्प समाधि के बराबर बनी रहती है। इसमें निद्रा भी पूर्ण हो जाती है और सुख शान्ति आनन्द का भी अनुभव होता रहता है। मैं युवा अवस्था में कई-कई मास शयन के समय निद्रा को ही अपनी समाधि या ध्यान का विषय बनाकर सोया करता था। उस काल में १० से १२ बजे रात्रि के समय सोया करता था। स्वप्न भी कम आते थे और निद्रा भी सात्त्विक समाधि जैसी सुख शान्ति आनन्द की अनुभूति हुआ करती थी। दिनचर्या पर भी बड़ा अच्छा प्रभाव इसका पड़ता था। अमृतसर में मोती राम की बगीची और हरिद्वार में मोहन आश्रम में रहते हुए कई वर्ष इस प्रकार का अभ्यास करता रहा था।

योगी को तीनों गुणों पर अधिकार करने और इनको भी समाधि का विषय बनाने के वास्ते यह सबसे अच्छा साधन है। निद्रा को समाधि के रूप में बदल देना, यही योगी की विशेषता है। अतः साधारण योगी को जब तक ज्ञान प्राप्त न हो, इस निन्द्रा के समय रात्रि को सोने से पूर्व प्रणव जाप मानसिक करते हुए वह निन्द्रा में प्रवेश कर जाये। अथवा किसी पदार्थ के ज्ञान का विषय बनाकर पहले उस ददार्थ का चिन्तन करे, जब कुछ मिनट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में स्थिति ज्ञान रूप सी बन जाय तब उस पदार्थ को सम्मुख रखते हुए निद्रा रूप समाधि में प्रवेश कर जाये। मैं साधना काल में इस प्रकार से और इस क्रम से बहुत साधना करता रहा था। उन दिनों क्योंकि सिवाय साधना के और कोई कार्य भी नहीं करता था, बड़ा यम नियम संयम का जीवन व्यतीत करता रहा। इसका परिणाम यह निकला कि मेरी मेधा (बुद्धि) अत्यन्त सूक्ष्म होने लगी और पदार्थों का यथार्थ निर्णय करने में कुशल हो गयी। इससे विशोका ज्योतिष्मती और प्रज्ञालोक बुद्धि एवं ऋतंभरा बुद्धि बनने लगी और मैंने ग्रन्थ लिखने के लिए कलम उठायी। सर्वप्रथम स्वर्ग आश्रम में सन् १९५९ में 'आत्म-विज्ञान' ग्रन्थ लिखा जो दुनिया के लोगों को बहुत पसन्द आया। फिर इसका स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती के शिष्य स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी ने मेरे आग्रह पर अंग्रेजी में बहुत अच्छा अनुवाद किया। इस ग्रन्थ के लोगों पर पहुंचने से सैकड़ों व्यक्तियों ने आग्रह किया कि यह ग्रन्थ तो बड़े तत्त्वविज्ञान का ग्रन्थ है, इसमें प्रवेश के लिए और अन्य सरल ग्रन्थ की आप रचना करें, सर्वसाधारण की समझ में यह ग्रन्थ नहीं आता है। इसके पश्चात् 'बहिरङ्ग योग' ग्रन्थ का निर्माण किया। इसमें योग के पांच अङ्गों का निरूपण किया। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का विषय आत्म-विज्ञान को रक्खा। 'बहिरङ्ग योग' का निर्माण स्वर्गाश्रम ऋषिकेश में अपने ३-४ शिष्यों को साथ में लेकर उनके आसन, प्राणायाम और मुद्रा के चित्र इस ग्रन्थ में दिये। उन वर्षों में बुद्धि का प्रवाह बड़े विज्ञान के क्रम से बहुत अच्छा चल रहा था। मेरे पास चालीस के लगभग बहुत योग्य शिष्य थे, जो कई वर्ष से साधना कर रहे थे। इन दिनों में ब्रह्म विज्ञान के क्रम से साधना चल रही थी। यह मेरे और अभ्यासियों के विज्ञान का बहुत उत्कर्ष का समय था। इस अवसर में अधिकतर वे ही अभ्यासी थे जो आत्मविज्ञान प्राप्त कर चुके थे और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए साधना कर रहे थे।

इन्हीं वर्षों में मैंने संन्यास धारण करके बद्रीनारायण जाकर ४ मास रहकर 'ब्रह्मविज्ञान' ग्रन्थ की रचना की थी। मेरे साथ में मेरे प्राईवेट मन्त्री के रूप में पं० शंकर लाल जी शर्मा और गणनाथ सेवक थे। यह युग मेरे लिए शरीर और बुद्धि में भरपूर जवानी और विज्ञान का युग था। ६ घण्टे निरन्तर एक आसन पर बैठकर 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ लिखा करता था। ६ घण्टे प्रातःकाल ६ से १२ तक और बाद दोपहर २ बजे से ६ बजे तक ग्रन्थ का लेखन कार्य किया करता था। तीन मास में 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ लिखकर समाप्त कर लिया था। पश्चात् एक मास में उसका समावलोकन करके संशोधन करके प्रेस कापी तैयार कर ली थी। यह सन् १९६२ की घटना श्री बद्रीनाथ की ४ मास की है।

वर्तमान के तीन वर्षों में पहलगाम के योग निकेतन में रहकर ३-४ मास का साधना शिविर चलाते हुए 'प्राण विज्ञान', 'दिव्य ज्योति विज्ञान', 'दिव्य शब्द विज्ञान' तीन ग्रन्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिखे हैं। अपने अनुभव से प्रायः मैंने जितने भी ग्रन्थ लिखे हैं ये सब मेरी नवीनतम खोज के आधार पर ही लिखे गये हैं।

मैं वर्णन कर रहा था तमःप्रधान प्राण के द्वारा आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार का। अभ्यास काल में ध्यान और समाधि की अवस्था में आलस्य प्रमाद निन्द्रा तन्द्रा थकावट प्रायः आन उपस्थित होती हैं। तमः की अवस्था और इन आलस्य प्रमाद तन्द्रा थकावट को दूर करने के लिए योग दर्शन के सूत्र का अवलन्बन करना चाहिये— 'तत्प्रतिपेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।' इनके प्रतिपेध के लिए एकतत्त्व, आत्मतत्त्व या ब्रह्मतत्त्व का अभ्यास करना चाहिये। शरीर और मन की आदतें ही हैं, इन को वदला जा सकता है। तमःप्रधान प्राण की अवस्था प्रायः निद्रा तन्द्रा में अधिक रहती है। इसे प्रणव के द्वारा वदला जा सकता है। उपर्युक्त सूत्र के आधार पर, आलस्य प्रमाद तन्द्रा थकावट में भी तमः प्रधान रहता है। एक तत्त्व जो ब्रह्म तत्त्व या आत्म तत्त्व है, ओम् और परमात्मा का वाच्य-वाचक भाव सम्वन्ध है। अथवा 'अहमस्मि' मन्त्र के द्वारा भी इन विक्षेपों को दूर किया जा सकता है।

चित्त की तमःप्रधान अवस्था को और प्राण की भी तमःप्रधान अवस्था को 'अहमस्मि' अथवा 'त्वमसि' मंत्र के द्वारा निवारण किया जा सकता है। यदि योगी सावधान होकर इन मन्त्रों को ध्यान का विषय वनावे तो आत्मदर्शन और ब्रह्मदर्शन तमः अवस्था में भी धुन्धले से रूप में होने लगते हैं। यह धुन्धला रूप ही सत्व रजःअवस्था से भेद को करने वाला होता है। इस अवस्था में कभी-कभी जैसे अन्धकार से परदा उठकर झांकी के रूप में आत्मदर्शन हो जाता है।

अथवा प्रणव मन्त्र या 'ओम् त्वमसि' मन्त्र को लेकर भी उस तम के आवरण को हटाया जा सकता है। 'केवल ओ३म् से भी आलस्य प्रमाद तन्द्रा निन्द्रा का प्रतिरोध या निवारण किया जा सकता है। अथवा 'ओम् त्वमसि' मन्त्र के द्वारा तमोगुण को दूर करके सत्त्वप्रधान अवस्था पैदा की जा सकती है। यदि सत्त्वप्रधान अवस्था न हो तो तमः की अवस्था में भी धुंधलेपन रूप में ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है। अतः योगी में तमःप्रधान अवस्था को वदलने की योग्यता या शक्ति होनी चाहिये। यदि यह शक्ति न हो तो तब तमः को लक्ष्य वना कर इसी से ज्ञान प्राप्त करने एवं ब्रह्म का हृदय में अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिये।

यह तमःप्रधान प्राण प्रकृति की प्राण रूप में क्रिया तीसरे दर्जे पर स्थिति रूप में होती है। इस अवस्था में मन्द-मन्द कम्पन या क्रिया प्रकृति में बनी रहती है। तमःप्रधान प्रकृति की अवस्था में इसको भी समाधि का विषय बनाकर ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिये। तमःप्रधान अवस्था में प्राण रूप क्रिया भी तमःप्रधान हो जाती है और यह प्रकृति में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नवीनता या पुरातनता के बनाये रखने या उत्पन्न करने में सहायक होती है। अतः प्रकृति की सम्यावस्था को भी इस तमःप्रधान प्राण को और इसके ऊपर ब्रह्म को अपने साक्षात्कार या विज्ञान का विषय बना सकते हैं। इस अवसर में सम्पूर्ण प्रकृति की सूक्ष्म अवस्था और उसमें सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है, भले ही सत्त्वप्रधान प्राण और रजः प्रधान जैसी अवस्था में ब्रह्म का जो साक्षात्कार होता है वैसा साफ स्वच्छ उज्ज्वल चमकीला न हो, परन्तु होता अवश्य है।

इसी प्रकार प्रणव और 'त्वमसि या तत्त्वमसि' अथवा 'त्वम् ब्रह्मासि' इन मन्त्रों को माध्यम बना कर भी हृदय प्रदेश में तमःप्रधान प्राण की अवस्था में भी ब्रह्म विज्ञान या साक्षात्कार किया जा सकता है। इस अवस्था में भी योगी को सन्तोषजनक ब्रह्मानुभूति हो जाती है। हमने तीनों प्रकार की सूक्ष्म प्राण की अवस्थाओं में सत्त्व रज तम में ब्रह्म साक्षात्कार के प्रकृति की साम्यावस्था में बहुत से साधन प्राण द्वारा बताये हैं।

इसी प्रकार चित्त की प्रत्येक अवस्था में और उसमें सात्विक राजस और तामस प्राण की अवस्था में आत्म-ज्ञान या साक्षात्कार के अनेक उपाय बताये हैं। आशा है, साधकवृन्द और पाठकवृन्द इन उपर्युक्त सब साधनों द्वारा आत्मा, परमात्मा और प्रकृति तथा उसके कार्यात्मक पदार्थों में तत्व ज्ञान प्राप्त करके सर्व मनोरथ सफल करेंगे और तत्त्व ज्ञान में पारंगत होकर मुक्ति या सुख शान्ति आनन्द का उपभोग करते हुए अपने को कृतकृत्य बनायेंगे या समझेंगे।

प्रकृति के आकाश में शब्द द्वारा आत्मानुभूति

इसके आगे प्रकृति के आकाश में शब्द द्वारा आत्मानुभूति का प्रकरण प्रारंभ करते हैं। हृदय से नीचे, नाभि से ऊपर तीन स्थान ऐसे हैं जो खाद्य पेय पदार्थों के पाक का कार्य करते हैं। यकृत, आमाशय, पक्वाशय ये तीनों ग्रन्थियां हृदय व मस्तिष्क की तरह ज्ञानप्रधान नहीं हैं। परन्तु इन ग्रन्थियों में भी आकाश तत्त्व है। इनके आकाश में शब्द द्वारा आत्मा और परमात्मा का अनुसन्धान करके साक्षात्कार करेंगे।

यकृतस्थ आकाश में शब्द द्वारा आत्मानुभूति

इस यकृत ग्रन्थि में सातवां आकाशस्थ शब्द उत्पन्न होता है। वैसे इस प्रदेश में स्वाभाविक शब्द भी उत्पन्न होते रहते हैं। रस निर्माण के कारण रस का उथलपुथल होना ही हुआ, पाक होने के कारण, अतः अत्यन्त सूक्ष्म शब्द उत्पन्न होने हुए। ये शब्द प्राण को भी इस ग्रन्थि में गति प्रदान करते रहते हैं। प्राण तेज को गति प्रदान करता है। इससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्नि रूप तेज यकृत में रस में पाकज रूप धर्म बनाये रखता है। रस का विभाग भी प्राण और तेज करते रहते हैं और इतस्ततः पहुंचाते रहते हैं।

इस ग्रन्थि में नील से वर्ण का क्षार बनता है एवं दूसरे क्षारों को भी यह ग्रन्थि बनाती है। नील वर्ण का क्षार तेजाब की तरह पाचन के कार्य करता है। यह दूसरी ग्रन्थियों में अर्थात् आमाशय पक्वाशयं में पहुंचकर पाकज कार्य में उपयोगी होता है।

यह ग्रथि आमाशय के रस ग्रहण करके पका कर क्षार के रूप में आमाशय और पक्वाशय को प्रदान करती है। इसका क्षार रूप से आमाशय की ग्रन्थि से विशेष सम्बन्ध रहता है।

इसके अन्दर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के सूक्ष्म शब्द उत्पन्न होते रहते हैं, जोकि अव्यक्त से होते हैं, किसी खास उपयोग में नहीं आते। जब कोई मशीन चलती है उसमें गड़गड़ाहट या धक-धक शब्द तो उत्पन्न होते हैं। जहां गति है वहां पदार्थों की परस्पर टक्कर से शब्द तो उत्पन्न सर्वत्र ही होते हैं।

यकृत ग्रन्थि भी एक प्रकार से आमाशय में पिसे या रगड़े खाद्य पेय लेह्य चौष्य पदार्थों से रस ग्रहण करती है। जैसे जूसर मशीन द्वारा फलों से रस निकालते हैं, इसी प्रकार यह आमाशय से रस ग्रहण करती है।

आमाशय में खाये पीये पदार्थों के दो विभाग होते हैं। एक पतला, एक कुछ गाढ़ा मोटा। यह मोटा भाग पक्वाशय की ग्रन्थि में पिसने या पाक होने के लिए चला जाता है। पतला रस सा यकृत की ओर मधुर क्षारादि रस बनने वास्ते जाता है जो भिन्न-भिन्न रूप में दूसरी ग्रन्थियों में पाक आदि कार्य करता हैं तथा पोषण और बलशक्ति का कार्य भी करता है। मोटा भाग पक्वाशय में पहुंच पाक होकर कुछ पतला भाग प्लीहा की ओर रक्त बनने के लिए जाता है। मोटा भाग बड़ी आंतों में मल बनने और कुछ क्षार युक्त भाग गुर्दों की ओर पेशाब बनने के लिए जाता है।

इस यकृतस्थ आकाश में प्रणव शब्द को उच्चारण करके इसका सम्बन्ध इसमें व्याप्त ब्रह्म के साथ बनाना चाहिये। शब्द का सम्बन्ध अर्थ से होता है। भी ब्रह्म ज्ञान को जाग्रत सा कर देता है। इस ग्रन्थि के आकाश में शब्द तरङ्गें उत्पन्न कर देता है, अतः आकाश और ब्रह्म कम्पायमान से होकर गतिशील से हो जाते हैं। यह गतिशीलता ब्रह्म दर्शन का हेतु हो जाती है। योगी की इतनी सूक्ष्म मेधा या ऋतंभरा बुद्धि हो जाती है जो ब्रह्म दर्शन करा देती है। निरर्थक शब्दों को भी योगी ब्रह्म ज्ञान में माध्यम बनाकर ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञान कर सकता है। यदि उन शब्दों को योगी प्रणव के समान समझकर उनके उपादान कारण आकाश में व्यापक सी दृष्टि डालता है तो प्रथम आकाश में ही योगी की दृष्टि जाती है। उस काल में उसमें व्यापक चेतन ब्रह्म के साथ सम्पर्क हो जाता है। उस यकृत में भी व्यापक चेतन ब्रह्म का साक्षात्कार होने लगता है।

शंका--आकाश और चेतन के मध्य और भी तो सूक्ष्म पदार्थ होते हैं। क्या आकाश से उन सब पदार्थों को उल्लंघन करके सीधे आत्मा के साथ सम्पर्क हो जाता है?

समाधान—इस अवस्था में इस आत्म-साक्षात्कार के समय दो क्रम विज्ञान के होते हैं। एक तो आकाश के उपादान कारण को आकाश प्रत्यक्ष के पश्चात् देखना या जानना होता है। उसके पश्चात् उसके उपादान कारण शब्द तन्मात्रा या सूक्ष्म भूत आकाश का प्रत्यक्ष करना होता है। तत्पश्चात् तमःप्रधान अहंकार और उसके पश्चात् तमःप्रधान महत्तत्व और फिर अन्त में प्रकृति का ज्ञान करना होता है। यह क्रम स्थूल से सूक्ष्म के ज्ञान करने का है। इन सबके पश्चात् सर्वव्यापक ब्रह्म का ज्ञान अन्तिम अवस्था में करना चाहिये।

दूसरा ज्ञातज्ञेय योगी का सीधा लक्ष्य होता है। वह आकाश में व्याप्त ब्रह्म को सीधा ही देखने लगता है। इसके लिए क्रम या सीढ़ी की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस योगी ने पहले एक बार या अनेक बार ब्रह्म या सर्व आत्मा को प्रत्यक्ष कर लिया है। अब उस योगी के अज्ञान या अविद्या के सब आवरण छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। उसके लिए किसी साधन विशेष या माध्यम अथवा सीढ़ियों या क्रम की आवश्यकता नहीं रहती है।

आमाशय ग्रन्थि में आकाशस्थ शब्द के द्वारा आत्म-साक्षात्कार

इस शरीर को जीवित रखने के लिए आहार सेवन की आवश्यकता प्रत्येक प्राणी को रहती है। इसके लिए खाद्य पेय लेह्य चोष्य पदार्थ मुख के द्वारा सेवन करते हैं। ये कंठ से होते हुए आहार नलिका से सीधे आमाशय की ग्रन्थि में पहुंच जाते हैं। वहां पहुंच कर इन पदार्थों को यह ग्रन्थि रगड़ना या पीसना प्रारंभ कर देती है। इस ग्रन्थि में, जैसे खरल में रगड़ कर घोट कर औषधि पीसते हैं। इस तरह पतला बारीक दलिया सा या खिचड़ी सी जैसे सब पदार्थ बन जाते हैं। लगभग ३-४ घण्टे इस ग्रन्थि में पिसता रहता है। इसमें से बहुत पतला भाग यकृत की ओर सरकता जाता है और मोटा भाग पक्वाशय की ओर पहुंच कर पाक भाव को प्राप्त हो जाता है। इस आमाशय में भी पाक होने और पिसने में सूक्ष्म-सूक्ष्म शब्द होते रहते हैं जिनसे व्यक्ति का कोई प्रयोजन नहीं होता है।

जिस आकाश के देश में प्राण या तेज परस्पर संघर्ष करेंगे, वहां स्वाभाविक ही सूक्ष्म-सूक्ष्म शब्द होते रहेंगे, क्योंकि दो या बहुत से पदार्थों का संयोग ही शब्द को उत्पन्न करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। इसी प्रकार खाद्य और पेय पदार्थ पृथवी और जल के ही वनते हैं या इन दोनों के परिणाम विशेष होते हैं। इनके भी गतिशील वने रहने पर आमाशय में सर्वत्र शब्द उत्पन्न होते रहते हैं। यह शब्द प्रक्रिया हमारे यत्न से नहीं होती, स्वाभाविक रूप में इस ग्रन्थि की रगड़ से होती है। आमाशय तथा अन्य ग्रन्थियों एवं शरीर में तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग में चेतन के संयोग से होती है और अहर्निश २४ घण्टे वनी रहती है।

जव योगी इस पाकस्थली के आकाश में शब्द को माध्यम वनाकर आत्म-साक्षात्कार करना चाहता है तव स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाले शब्दों की तरफ ध्यान न देकर, विशेष शब्द जो सार्थक होता है उस शब्द वाक्य मन्त्र को इच्छापूर्वक उच्चारण करके आमाशयस्थ आकाश में वाचिक उपान्शु या मानसिक जाप करता है। तव वहां ये विशेष शब्द आकाश और आत्मा में विशेष प्रक्रिया प्रारंभ करके आत्म-साक्षात्कार में हेतु वनते हैं। योगी यदि सीधा ही आमाशयस्थ आकाश को माध्यम वनाकर इसमें जो वहुत से सूक्ष्म शब्द उत्पन्न होते रहते हैं उनमें व्यापक सी यौगिक ध्यान की दृष्टि डालता है तो एककालावच्छेदेन आत्म या ब्रह्म प्रत्यक्ष होने लगता है। ये वहुत से सूक्ष्म शब्द उस दिव्य ज्योतिमय आकाश में ऐसे प्रतीत होने लगते हैं जैसे रात्रि के समय में आकाश में तारागण टिमटिमाते होते हैं।

शंका—आप आकाश को दिव्य ज्योति रूप दे रहे हैं। ज्योति उसमें कहां से आयी ?

समाधान—विशोका ज्योतिष्मती या प्रज्ञालोक योगी की वुद्धि से आकाश भी वहां देदीप्यमान हो जाता है।

शंका—इस शब्द को आप आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान में इतना वड़ा महत्व क्यों दे रहे हैं ?

समाधान—शब्द ज्ञानात्मक है। इस शब्द में अर्थ और ज्ञान छिपे हुए रहते हैं। शब्द की प्रक्रिया विशेष से अर्थ और ज्ञान यथार्थ करना होता है। अतः ज्ञान के प्रति शब्द की विशेष प्रधानता होती है। शब्द चाहे वाचिक हो या मानसिक, दोनों ही स्थूल सूक्ष्म रूप से आत्म-साक्षात्कार के प्रधान साधन होते हैं। शब्द ज्ञान का मूल कारण है, इसके गर्भ में अर्थ रूप पदार्थ छिपा हुआ होता है। जव शब्द को व्यवहार में प्रयुक्त करते हैं तव पदार्थ आलोकित हो जाता है। ज्ञान के द्वारा इसका प्रकाश हो जाता है।

इस आमाशयस्थ आकाश में शब्द या मन्त्र द्वारा आत्मा को प्रकाशित किया जाता है। यहां आत्मा शब्द से जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण होता है। हृदय-देशावच्छिन्न आत्मा और इससे परे या आगे परमात्मा को समझ लेना चाहिये; केवल चित्त की तो दीवार आपने खड़ी की हुई है। परन्तु सूक्ष्म और व्यापक होने से परमात्मा चित्त रूपी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीवार को पार करके निकल जाता है। अथवा शरीर में आत्मा और शरीर से बाहर ब्रह्माण्ड में परमात्मा या ब्रह्म समझ लेना चाहिये।

आमाशयस्थ आकाश में शब्द के द्वारा आत्मा की अनुभूति करनी चाहिये, क्योंकि आत्मा भी शरीर में सर्वत्र वर्तमान रहता है। इसके किसी भी देश अङ्ग-प्रत्यङ्ग में आत्मा को देख सकते हैं। यही योगी की विशेषता होती है। शरीर के प्रत्येक भाग में चेतन का प्रत्यक्ष होना चाहिये। एक देश में ज्ञान होने पर समस्त शरीर या पदार्थ के देश में योगी को ज्ञान हो जाता है, स्थालीपुलाक न्याय से। जब योगी क्रमपूर्वक सम्पूर्ण शरीर के ऊपर से लेकर नीचे के अङ्गों में आकाश को दश स्थानों में देखता है तो सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति हो सकती है।

पक्वाशयस्थ आकाश में शब्द द्वारा आत्मानुभूति

आमाशय से भोजन पिसकर पक्वाशय में पहुंचता है। यह ग्रन्थि पिस्टल के आकार की है। इसमें पाचन क्रिया क्षार मधुर तिक्तादि रसों से होती है। इसके अन्दर भी पोल रूप आकाश वर्तमान है। इससे रस बन कर कुछ-कुछ रक्त पीत रूप में तैयार होकर प्लीहा को प्राप्त होता है। यह उसे हृदय में पहुंचा देती है। इस पक्वाशय के आकाश में जब योगी मन्त्र द्वारा—जैसे ओम् नमः शिवाय—शनैः-शनैः सूक्ष्म रूप में उच्चारण करता है तब मन्त्र रूपी शब्द के आघात से मुख में ओम् का उच्चारण करे, नमः का हृदय में उच्चारण करे, शिवाय की मानसिक भावना पक्वाशय में तद्रूप होकर करे। तब इस प्रकार के सर्वव्यापक भगवान् में मन्त्र के आघात से पक्वाशय के पोल रूपी आकाश में मन्त्र से चमक दमक और कम्पन सा होने लगता है। एक प्रकार से आकाश चमकती हुई लहरों का या कम्पन थरथराहट सी होकर चेतन सत्ता अनुभव का विषय बन जाता है। जिस प्रकार की सत्ता बुद्धि मण्डल या चित्त रूपी मण्डल में या ब्रह्मरन्ध्र और हृदय में अनुभव में आयी थी तद्रूप ही चेतन सत्ता इस पक्वाशय में भी वर्तमान है। उसी को स्मरण करते हुए पक्वाशय को भी अपने आक्षात्कार का विषय बनाना चाहिये। अथवा बहुत छोटा शब्द प्रणव ओम् के द्वारा उसे आह्वान या भावना करनी चाहिये। दर्शन करने के लिए ओम् शब्द के अर्थ सर्वव्यापक ब्रह्म को इस ग्रन्थि में भी साक्षात्कार करना चाहिये।

पक्वाशय में जा पाक आदि कर्म हो रहे हैं, खाद्यपेयादि पदार्थों से जो रस रुधिर के प्रथम रूप में तैयार हो रहा है, ये सर्व क्रियायें भी देखनी अनुभव करनी चाहियें। परन्तु प्रधान कार्य इस ग्रन्थि के आकाश में भगवान् के दर्शन, हृदय के चित्त के समान यहां भी ब्रह्म का अनुसन्धान कर साक्षात्कार करे। यकृत आमाशय पक्वाशय ग्रन्थियों में भी सात्विक राजस तामस भेद से भी अभ्यास द्वारा साक्षात्कार करना चाहिये। यहां विस्तार भय से इनके भेदों का उल्लेख नहीं किया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह अष्टम पक्वाशयस्थ आकाशस्थ ब्रह्म का शब्द और मन्त्र द्वारा साक्षात्कार का क्रम प्रतिपादन किया है। साधकवृन्द उपर्युक्त विधि से इस ग्रन्थि में भी ब्रह्म साक्षात्कार करें। हमने इस ग्रन्थि में शरीर के प्रधान-प्रधान आकाशों में शब्द या मन्त्र द्वारा ब्रह्म ज्ञान के साधन बताये हैं।

छोटी बड़ी आंतों के मुख द्वार में पोल रूपी आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्मानुभूति

इन दोनों प्रधान नाड़ियों के सिरों का मुख खुला है और इनके अन्दर आकाश रूपी पोल भी है। उसको योगी को शब्द या मन्त्र द्वारा अपनी समाधि का विषय बनाना चाहिये। इन दोनों में जो आकाश है, उस आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्माभ्यास करना चाहिये। 'ओम् खम् ब्रह्म' इस मन्त्र को लेकर पहले बड़ी आंत के आकाश में इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। इस आंत का अन्तिम छोर गुदा है। इसका नीचे का द्वार भी खुला है। ओम् का मस्तिष्क में और खम् का हृदय में और ब्रह्म का बड़ी आंत में उच्चारण करे तो मुख के द्वार से आकाश के साथ ब्रह्म भी बहता हुआ गति करता हुआ अन्तड़ी के अन्दर अनुभव में आयेगा। भले ही इस आंत के अन्दर से मल बह कर निकलता है, और यह गन्दी भी है, परन्तु हमारा सम्बन्ध तो इसके मुख द्वार पर जो आकाश है उसको ब्रह्म ज्ञान का विषय बनाना है।

इसी प्रकार छोटी आंत का जो मुख द्वार है, इस आंत का सम्बन्ध गुर्दों और शिश्न या योनि से है। इसके द्वार से पेशाब बनकर निकलता है। परन्तु इसमें भी हमारा मतलब इस नाड़ी के आकाश से है। इसके मुख के द्वार पर भी 'ओम् खम् ब्रह्म' मन्त्र का उच्चारण करके आकाश में ब्रह्म की खोज करे। जैसा ब्रह्म पहले स्थानों के आकाश में समझा देखा या अनुभव किया है, उसी प्रकार के ब्रह्म का समाधि द्वारा या मन्त्र के द्वारा इस देश के आकाश में भी ज्ञान प्राप्त करे। इन ग्रन्थियों के आकार प्रकार रङ्ग रूप कार्य व्यापार का हमने विशेष वर्णन नहीं किया है, क्योंकि इनके विषय में हम 'आत्म-विज्ञान' के अन्नमय कोश में बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं। वहां आप देख सकते हैं। यहां तो केवल इनके आकाश से हमारा कार्य सिद्ध हो रहा है। इन ग्रन्थियों के आकाश में ब्रह्म का मन्त्र द्वारा अभ्यास करके साक्षात्कार करने से तात्पर्य है। इन दोनों नाड़ियों से एक ही आकाश का ग्रहण होता है, क्योंकि दोनों के सिरे या मुख साथ-साथ ही हैं, अतः दोनों के मुख के द्वार के आकाश में ओम् शब्द का पुनः-पुनः मानसिक उच्चारण करके ब्रह्म के साथ शब्द का सम्बन्ध बनाना चाहिये। यह स्थान जहां पक्वाशय खत्म होता है वहां इसके साथ सिरे पर हीं इन दोनों आंतों का मुख और यहीं से इनका प्रादुर्भाव होता है। भले ही ये आंतें बहुत लम्बी हैं और इनका कार्य भी मल मूत्र निर्माण और उसका निःसरण है, ये रस का भी निर्माण करती हैं और शरीर से रस चूस कर मल मूत्र के रूप में पका कर बाहर फैंकती हैं या निकालती हैं, खाद्य पेय पदार्थों का शेष भाग निस्सार जो होता है यह इनके द्वारा ही बाहर निकलता है, क्योंकि वह भाग शरीर के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसी उपयोग में नहीं आता है। अतः इनके आकाश में परमात्मा की व्याप्ति का साक्षात्कार करना चाहिये। इनके सात्त्विक राजस तामस आकाश में शब्द द्वारा सात्विक राजस तामस रूप में ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिये।

नाभिस्थ आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्मानुभूति

नाभिस्थ आकाश का दशम स्थान है। इसका प्रधान स्थान नाभि से मूलाधार पर्यन्त है। जब योगी सुखासन या पद्मासन पर बैठता है तब इसका देश, शरीर में नीचे का भाग जहां रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है वहां तक नाभि देश का आकाश समझना चाहिये। इस स्थान में अनेक शब्द इसके आकाश में उत्पन्न होते रहते हैं। यह नाभि देश शरीर के बहुत से अङ्गों का आधार है। इसके साथ सम्बन्ध गुदा उपस्थ योनि गुर्दों और तीन चक्रों स्वाविष्ठान मणिपूर मूलाधार का है। अतः यह अन्तिम नाभिस्थ आकाश भी बड़े महत्त्व का है।

इस नाभिस्थ आकाश में चेतनात्मा की अनुभूति होनी चाहिये। इस स्थान में अनेक शब्द उत्पन्न होते रहते हैं। एक प्रकार से यह नाभि शब्द की उत्पत्ति का मूल स्थान है। जब वाचिक शब्द का उच्चारण प्रारंभ करते हैं तब इच्छाजन्य अभिघात सर्वप्रथम नाभि में होकर शब्द यहां से प्रारंभ होता है। नाभिस्थ आकाश में शब्द प्रारंभ होता है। जब योगी ध्यान में बैठकर ओम् शब्द का प्रारंभ अर्थात् ओंकार का मानसिक जाप प्रारंभ करता है तब मुख से उच्चारण होकर शनैः-शनैः नाभि देश के आकाश में पहुंचकर उसे कम्पायमान करता है और विद्युत् जैसी तरङ्गें सी उत्पन्न कर देता है। इस देश के आकाश में ब्रह्म की अनुभूति होने लगती है। अथवा नाभि देश के आकाश को ही ध्यान का विषय बनाकर उसमें व्यापक चेतन ब्रह्म की खोज करें, कि इसमें एक निष्क्रिय चेतन सत्ता अडोल खड़ी है या वर्तमान है।

इस स्थूल शरीर में १० प्रकार के स्थान आकाश के हैं और इनमें शब्द की उत्पत्ति होती है। उन शब्दों द्वारा सर्वव्यापक चेतन ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। शब्द अर्थ ज्ञान ही चेतन ब्रह्म या आत्मा के बोधक होते हैं। शब्द ज्ञान रूप में पदार्थ का मूल रूप होता है। बिना शब्द के पदार्थ का ज्ञान भी नहीं होता है। अतः संसार में शब्द की ही प्रधानता है। नाभि के देश में जो आकाश है, इसमें अन्य जो जो पदार्थ हैं, उनके ज्ञान का कारण भी शब्दात्मक ज्ञान ही होता है। नाभि प्रदेश में भी सात्त्विक राजस तामस भेद से ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिये। ये ३० प्रकार के भेद हो जाते हैं।

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस
प्रणीत 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ का
तृतीय अध्याय समाप्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ अध्याय

सूक्ष्म शरीरस्थ आकाश में शब्द द्वारा आत्मानुभूति

इससे पहले अध्यायों में स्थूल शरीर में दस प्रकार के शब्दों द्वारा, जो कि सात्त्विक राजस तामस भेद से ३० प्रकार होते हैं, आत्मा परमात्मा के ज्ञान के बहुत से साधन बताये हैं। अब इसके आगे सूक्ष्म शरीर में आत्म-ज्ञान के साधनों को शब्द के द्वारा कथन करेंगे। जिस प्रकार स्थूल शरीर में दस प्रकार के आकाश में शब्द द्वारा आत्मा परमात्मा के ज्ञान की विवेचना की गयी है, इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के आकाश में भी, जो कि इसमें भी दस प्रकार के ही हैं, उनके माध्यम से आत्मानुभूति होनी चाहिये।

सूक्ष्म शरीरस्थ आकाश में शब्द द्वारा आत्मानुभूति

सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध स्थूल और कारण शरीर से सदा रहता है। इसमें शब्द द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहें तो दोनों अवस्थाओं में हो सकता है। वैसे स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध रहते हुए तो पहले अध्यायों में भी कई स्थलों में वर्णन कर चुके हैं। परन्तु पुनः क्रमपूर्वक साधकों के लिए विस्तारपूर्वक करना चाहते हैं।

सूक्ष्म शरीर में शब्द द्वारा आत्मानुभूति सूक्ष्म शब्दों द्वारा ही ठीक से हो सकती है। हम स्थूल शरीर को छोड़कर, इससे उपेक्षा सी करके, केवल सूक्ष्म शरीर में आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान ही लिखेंगे। जब योगी समाधि की सूक्ष्मतम गहन अवस्था में उपस्थित होता है तब ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाश में सूक्ष्म शब्द द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहता है। तब वह ब्रह्मरन्ध्र के सूक्ष्म आकाश को सूक्ष्म मानसिक शब्द द्वारा माध्यम बनाकर आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। तब वह 'अहमस्मि' अथवा 'ओम्'त्वमसि' शब्द या मन्त्र से स्व या पर को आह्वान करता है। तब ब्रह्मरन्ध्र के आकाश में मानसिक सूक्ष्म शब्द से सूक्ष्म तरङ्गें उत्पन्न होकर हलचल सी उत्पन्न कर देती हैं। इन तरङ्गों में चेतन सत्ता उभरती हुई तरङ्गित होती हुई भासमान होने लगती है। ये तरङ्गें आकाशस्थ शब्द की ही उत्पन्न होती हैं। आकाश भी उत्पत्ति वाला है, अतः इसमें तरङ्गें होना अनिवार्य है। भले ही आकाश में सर्वसाधारण व्यक्ति को तरङ्गें प्रतीत नहीं होती हैं, सिवाय सूक्ष्मदर्शी योगी के, क्योंकि आकाश भी सावयव है और शब्दों का उपादान कारण और आकाश तन्मात्रा का कार्य होने से गतिमान मानना होगा। और इसमें लहरें भी,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवश्य उत्पन्न होती हैं। आत्मा परमात्मा आकाश से भी सूक्ष्म हैं। इनको भी शब्द कम्पायमान कर देता है। भले ही इनमें कम्पन नहीं होता है, परन्तु भ्रान्ति से ये कम्पायमान से प्रतीत होने लगते हैं। सर्वव्यापक चेतन में आकाश भी कम्पायमान होने लगता है और क्षोभ से होने लगते हैं। उन तरङ्गों या क्षोभों के ऊपर जैसे चेतन उछल-उछल कर ऊपर आ रहा हो, इस प्रकार प्रतीत होने लगता है।

ब्रह्मरन्ध्र के आकाश में कई पदार्थ होने से उनकी गतिविधि या क्रियाओं से अनेक शब्द सूक्ष्म-सूक्ष्म होने लगते हैं। परन्तु जब योगी परमात्मा के नाम का मानसिक उच्चारण करने लगता है तब वह सार्थक होता है। सार्थक होने से पदार्थ के ज्ञान का हेतु होता है। अतः यहां ब्रह्मरन्ध्र में ओम् शब्द भी ईश्वर का बोधक होता है और अहमस्मि स्वरूप का बोधक भी होता है। पदार्थ के ज्ञान में मुख्य हेतु शब्द होता है। योगी ओम् को उच्चारण करके उसे ब्रह्म में पिरो सा देता है। वह शब्द अर्थ रूप में परिणत होकर ज्ञान रूप में आ जाता है। एक प्रकार से शब्द ही सब ज्ञान के उपादान कारण होते हैं। शब्द कहीं कारण रूप में होता है और कहीं कहीं कार्य रूप में हो जाता है।

शंका—यह शब्द द्रव्य रूप में है या गुण रूप में है ?

समाधान—जब शब्द कारण रूप में होता है तब द्रव्य कहलाता है, और जब परिणाम भाव को प्राप्त होता है तब गुण रूप में कहलाता है। वह गुण भी कार्य रूप में ही होता है, क्योंकि हम द्रव्य और गुण को अलग-अलग पदार्थ नहीं मानते हैं। द्रव्य से गुण अलग नहीं होता। अर्थात् कारण, जिसे आप द्रव्य कह रहे हैं या पदार्थ कह रहे हैं, यह अपने कार्य से अलग नहीं होगा। यहां पदार्थ और गुण का संयोग सम्बन्ध नहीं है, कारण-कार्य भाव सम्बन्ध है। कार्य रूपी वस्त्र में रूई उपादान कारण से वर्तमान है, इसलिए हम कार्य-कारण भाव सम्बन्ध को मानते हैं। द्रव्य और गुण को सर्वथा पृथक् नहीं मानते, जैसे आप द्रव्य गुण को स्वरूप से अलग-अलग मानते हैं। कारण रूप पदार्थ कार्य में परिणत हुआ है। कणाद मुनि द्रव्य और गुण को स्वरूप से भिन्न-भिन्न मानते हैं, और यह भी कहते हैं कि गुण हमेशा द्रव्य के आश्रित रहता है। द्रव्य भी नित्य हुआ और गुण भी नित्य हुआ। इन का संयोग भी नित्य ही मानना पड़ेगा, जब कि हम नित्य संयोग नहीं देखते हैं।

शंका—आपके सिद्धात में भी एक दोष आता है। आप कारण और कार्य का भी तो एक प्रकार से नित्य ही संयोग बताते हो, जब कारण को अपने कार्य के साथ सम्बन्धित मानते हो।

समाधान—जब तक कार्य उत्पन्न नहीं हुआ, कारण अपने स्वरूप में वर्तमान रहता है। जब इस कारण में परिणाम क्रम उत्पन्न होता है तब यह कारण ही एक अवस्था से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरी अवस्था में जाता है। उस दूसरी अवस्था को हम कार्य कहते हैं। कपास ही रुई धागे के रूप में बदल कर वस्त्र के रूप में पहुंची है, अपने स्वरूप से वह नष्ट नहीं हुई है। हम पृथ्वी से गन्ध को पृथक् पदार्थ नहीं मानते या जल के रस को अलग नहीं मानते और न गन्ध और रस को पृथिवी और जल से पृथक् बताते हैं। दो पदार्थों का संयोग गन्ध और पृथिवी को कहते हैं। हम आकाश का गुण शब्द को कहते हैं। क्योंकि आकाश से ही शब्द उत्पन्न होता है, अतः आकाश का कार्य ही शब्द को मानना होगा। शब्द के प्रति और अन्य पदार्थ उपादान कारण वहां नहीं होता है, सिवाय आकाश के। अतः आकाश को शब्द के प्रति उपादान कारण मानना होगा। ये दो पदार्थ स्वरूप से पृथक्-पृथक् नहीं हैं, और न पृथक् होने से दोनों का संयोग ही है। अतः आकाश को शब्द के प्रति उपादान कारण मानना ही समीचीन होगा।

आप द्रव्य और गुण के संयोग को, इसमें दोनों के संयोग को कारण कहते हैं। हम आकाश में शब्द की उत्पत्ति में संयोग को निमित्त कारण कहते हैं। एक और दूसरा निमित्त चेतन भी होता है। जैसे, एक कुम्हार या लुहार बर्तन बनाता है। उस बर्तन के बनने में दण्ड और हथौड़ा भी निमित्त कारण होते हैं। परन्तु मिट्टी और धातु उपादान कारण होते हैं और बनाने वाला निमित्त कारण होता है। निमित्त जड़ और चेतन दो होते हैं, परन्तु प्रधान रूप में निमित्त कारण चेतन ही होता है। जड़ पदार्थ गौण रूप में निमित्त होता है। आप गुण को द्रव्य के आश्रय और अलग पदार्थ सिद्ध करते हैं। हम कारण रूप पदार्थ के अवस्थान्तर परिणाम को गुण या कार्य कहते हैं। जैसे पृथिवी के अन्दर ८ गुण हैं और जल के ८ गुण हैं। ये इन पदार्थों के ही धर्म हैं। हम धर्म-धर्मी का अभेद मानते हैं और आप भेद और अलग पदार्थ कहते हैं। जब गुण द्रव्य के साथ मिला हुआ गुणान्तर भाव को प्राप्त होता है तब अलग मानने की क्या आवश्यकता है? क्यों न एक ही पदार्थ मान लिया जाये? जैसे पृथिवी से लोहा-तांबा-जस्ता-सोना-चांदी आदि अनेक पदार्थ निकले हैं, सब का उपादान कारण एक पृथिवी ही है। अतः पृथवी से गन्ध पृथक् पदार्थ नहीं और जल से रस अलग पदार्थ स्वरूप से नहीं हैं। पृथवी और जल के गन्ध रस आदि विकार हैं या अवस्थायें हैं।

शंका—आप भी तो प्रकृति और ब्रह्म का नित्य संयोग मान कर प्रकृति के अनेक परिणाम होकर अनेक कार्य रूप पदार्थ मानते हैं। इन दोनों का संयोग नित्य मानते हैं। यदि हमने द्रव्य और गुण का आश्रय-आश्रयी भाव सम्बन्ध मान लिया तो क्या आपत्ति है? आप भी तो प्रकृति और ब्रह्म का एक प्रकार से आश्रय-आश्रयी भाव सम्बन्ध ही मानते हैं, क्योंकि दोनों कभी अलग नहीं होते।

समाधान—प्रकृति और ब्रह्म सर्वदेशी हैं, सर्वत्र वर्तमान रहते हैं, इनसे भिन्न और कोई पदार्थ भी नहीं है। अतः इन में यह दोष उपस्थित नहीं होता है। परन्तु द्रव्य और गुण तो दोनों ही एकदेशी हैं और द्रव्य की जाति वाले अन्य भी पदार्थ हैं और गुण की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाति वाले अन्य गुण भी हैं। परन्तु प्रकृति और ब्रह्म की तो कोई जाति नहीं है। जाति वाचक अनेक होते हैं और एकदेशी होते हैं। पृथिवी द्रव्य है, अनेक परमाणुओं का समुदाय कार्य है, अतः नित्य नहीं हो सकती। इसके भी उपादान कारण अनेक या अनन्त परमाणु हैं। अतः द्रव्य और गुण के नित्य संयोग की बात भी सिद्ध नहीं होती। और आश्रय-आश्रयी भाव सम्बन्ध भी नहीं बनता है। प्रकृति और ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध है और व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध है। अतः संयोग सम्बन्ध भी हो सकता है और व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध भी और अन्योऽन्य-आश्रय भाव सम्बन्ध भी और नित्य सम्बन्ध भी।

हम पुनः उसी विषय पर आते हैं कि ब्रह्मरन्ध्र में आत्म-ज्ञान के प्रति शब्द ही ज्ञान का हेतु होता है। शब्द उच्चारण किया हुआ अर्थ और ज्ञान को उत्पन्न करता है।

शंका—क्या विना शब्द के ज्ञान नहीं होगा ?

समाधान—हां, विना शब्द के ज्ञान नहीं होता है। शब्द गत्यात्मक है। जहां गति होगी वहां शब्द भी होंगे। वे ज्ञान का हेतु बनेंगे। बधिर को शब्द सुनायी नहीं देता, परन्तु उसे भी इशारों से सिखाया जाता है और बहुत सी बातों का व्यवहार या ज्ञान भी हो जाता है। वहां भी शब्द ही ज्ञान के प्रति कारण होते हैं। शब्दों की आकृति हाथ के इशारों के रूप में बना ली। नवजात बालक को भी माता-पिता गुरु-जन शब्द द्वारा ही शिक्षा देते हैं। वह शनैः-शनैः विद्वान् और ज्ञानी हो जाता है। शब्द का उच्चारण वाक् (वाणी) से होता है और ज्ञान कर्णेन्द्रिय और बुद्धि से होता है। शब्द की उत्पत्ति या उच्चारण वाणी द्वारा होता है। वाणी और कर्णेन्द्रिय का विषय बनकर अर्थ और ज्ञान में परिणत होता है। यही शब्द ग्रन्थों में टेप करके रखते हैं। ये संसार के सब ग्रन्थ या शब्द शब्दप्रमाण के रूप में रिकार्ड रहते हैं। इन शब्दों का रिकार्ड बुद्धि में भी रहता है। अतः स्मरण कर के शब्द बोलने लगते हैं। पुस्तकों के शब्दों को नेत्र या स्पर्श से मनुष्य ज्ञान रूप परिणत कर लेता है। संसार में सर्वत्र शब्द की ही महिमा है। सर्वत्र आकाश में कर्म, व्यापार और संयोग से असंख्य शब्द होते रहते हैं।

ब्रह्मरन्ध्र में विना शब्द उच्चारण किये भी ज्ञान होने लगता है। उस वक्त योगी शब्द को छोड़कर केवल अर्थ को ही सीधा ग्रहण करता है। वह अर्थ ज्ञान रूप में परिणत हो जाता है।

शंका—क्या परमात्मा ज्ञान रूप में परिणत होता है ?

समाधान—नहीं, शब्द के द्वारा ब्रह्म का अर्थ और ज्ञान करना होता है। वह ज्ञान का ही अर्थात् बुद्धि के ज्ञान का ही परिणाम होता है। वहां ब्रह्म में कोई परिणाम नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता। पदार्थ और ज्ञान के भेद से मनुष्य भ्रान्ति से ब्रह्म को भिन्न-भिन्न रूप में देखने लगता है—जैसे घटाकाश, मठाकाश।

सूक्ष्म शरीर के कर्णेन्द्रियस्थाकाश में शब्द द्वारा आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान

एक योगी दूर देश में मन को समाहित करके बैठा है और एक योगी आत्मज्ञान का उपदेश कर रहा है। वे शब्द कर्णेन्द्रिय में पड़कर आत्मज्ञान के बोधक होते हैं। साथ ही पदार्थों का साक्षात्कार भी होता रहता है। योगी अपने साधक को अपने शब्दों को दूर देश में भी भेजकर अपने मनोबल से ज्ञान करा देता है। मन की तरङ्गों पर सूक्ष्म शब्दों को चढ़ाकर प्रवाहित किया करता है। जैसे आकाश में टेलीफोन की तारों पर शब्द बहकर चलते हैं या वायरलैस से शब्द समाचार दूर देश में भेजते हैं। इसी प्रकार योगी के सूक्ष्म शब्द भी बहकर जाते हैं और शिष्यों के लिए उसी समय ज्ञान का हेतु होने लगते हैं। दो योगियों के मन रिसीवर का काम देते हैं। अतः मन में बड़ी भारी शक्ति है। मन अपनी जाति वाले या क्लास वाले मन के साथ बहुत शीघ्र सम्पर्क बना लेता है। जैसे शब्द को कर्णेन्द्रिय ग्रहण करती है, वह भी वाणी के उच्चारण किये हुए को। यह देखने में आता है कि संसार में अहर्निश २४ घण्टे सर्वत्र शब्द उत्पन्न हो रहे हैं। शरीर में आत्मा के संयोग से और संसार या ब्रह्माण्ड में ब्रह्म चेतन के संयोग से शब्द हर वक्त उत्पन्न हो रहे हैं। कहीं भी कभी भी शब्दों का अभाव देखने में नहीं आता है। कान भी सुनते-सुनते तङ्ग आ जाते हैं। बुद्धि भी परेशान होने लगती है। जब तक जड़ पदार्थ का चेतन के साथ संयोग रहेगा तब तक हर समय शब्द उत्पन्न होते ही रहेंगे। चाहे शब्दों को कोई ग्रहण करे या न करे, प्रयोग में लावे या न लावे। जो-जो शब्द प्रयोग में आते हैं और जिन शब्दों के अर्थ का निर्माण मनुष्यों या अन्य प्राणियों ने कर लिया है, वे ही पदार्थ के ज्ञान का हेतु होते हैं।

शंका—क्या शब्द के साथ अर्थ का नित्य सम्बन्ध है या अनित्य सम्बन्ध है?

समाधान—शब्द का अर्थ के साथ कार्य रूप में अनित्य और कारण रूप से नित्य सम्बन्ध होता है। मूल शब्द है। शब्द भी बनाया जाता है, और अर्थ या पदार्थ भी बनाया जाता है। और अर्थ से ज्ञान भी बनाया जाता है। शब्द स्वाभाविक है, अर्थ कृत्रिम और अनित्य है। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। ज्यों-ज्यों शब्द को व्यापार में लाते हैं, अथवा व्यवहार में प्रयोग करते हैं, वह कई-कई अर्थों के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे 'एकोऽहं बहु स्याम'। क्योंकि पदार्थ में अनेक गुण होते हैं, ज्यों-ज्यों पदार्थ का व्यवहार बढ़ेगा त्यों-त्यों उसमें अनेकत्व सा आयेगा। जैसे एक वट वृक्ष के छोटे से बीज में इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़ा महान् वृक्ष सूक्ष्म रूप में समाया हुआ है, इसी प्रकार शब्द में अर्थ और ज्ञान सूक्ष्म रूप में निहित रहते हैं या शब्द में अर्थ और ज्ञान सूक्ष्म रूप में वर्तमान रहते हैं।

हम कर्णेन्द्रिय के द्वारा शब्द अर्थ ज्ञान के विषय का वर्णन करना चाहते थे। कर्णेन्द्रिय में पड़ा शब्द 'तत्त्वमिस' का बोधक होता है। इस मन्त्र में परोक्ष को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करने की सामर्थ्य है। जो अर्थ हमने या अन्य व्यक्तियों ने निर्धारित कर छोड़ा है, अमुक शब्द का अमुक अर्थ है, उस अर्थ के आधार पर ही पदार्थ के स्वरूप का भिन्न-भिन्न रूप में बोध होता है, वह तो आत्मा है जो इस शरीर में चेतन सत्ता के रूप में वर्तमान रह कर जीवन सुख दुःख कर्म का आधार बना है। यह आत्मा अन्तःकरण का विषय बन जाता है।

इस अध्याय में हम शब्द के तीनों भेदों का सत्त्व रज तम के आधार पर वर्णन सर्वत्र नहीं करेंगे। कहीं-कहीं उल्लेख करेंगे। सत्त्व रज तम प्रधान कर्णेन्द्रियस्थ आकाश शब्द अर्थ और ज्ञान में बहुत अन्तर है। और इनके भोग कर्म तथा व्यवहार में भी बहुत अन्तर हो जाता है। बहुत विस्तारपूर्वक कर्म भोग के कारण का उल्लेख नहीं करते, योगी को अपनी बुद्धि से ज्ञान का विकास करना चाहिये।

शंका—क्या इस स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और आकाश या सूक्ष्म जगत् में रहने वाले सूक्ष्म शरीरों में भोग का अन्तर होता है ?

समाधान—बहुत अन्तर होता है। आकाश में विचरने वाले या सूक्ष्म जगत् में रहने वाले सूक्ष्म शरीरों के भोग सीमित और नियमित से होते हैं और स्थूल शरीर में रहने वाले सूक्ष्म शरीर के भोगों में ऊहापोह तर्क-वितर्क शंका-समाधान विशेष ज्ञानपूर्वक होते हैं, क्योंकि इस शरीर में स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर मिलकर भोग करते हैं। सूक्ष्म जगत् में दो शरीर होते हैं, कारण और सूक्ष्म शरीर। वैसे स्थूल में भी कारण शरीर सूक्ष्म के साथ में रहता है।

स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म शरीर स्थूलशरीर प्राप्य भोगों का भी भोग करता है और अपना भी भोग पंच तन्मात्राओं का करता है। स्थूल के साथ सूक्ष्म और कारण शरीर रहने से भोगों की ज्ञानपूर्वक विशेषता भी होती है या हो सकती है। इसमें सामान्य भोग और विशेष भोग दोनों प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म जगत् में केवल सामान्य ही भोग एक समान होते हैं। स्वर्ग लोक सूक्ष्म जगत् में भोगों के लिए विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। सूक्ष्म जगत् में सबके भोग एक समान ही रहते हैं।

स्थूल जगत् और स्थूल शरीर में भोगों में एक समानता नहीं रहती है। सामान्य और विशेष भोग होते हैं। बुद्धिमान् विवेकी सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न योगी के भोगों में सामान्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत विशेषता होती है। जैसे महाराजा जनक, ज्ञानश्रुति, यमराज, केकय, गौतम मुनि इत्यादि जीवनमुक्त सर्व गुणों और सर्व ऐश्वर्यों से पूर्ण थे। इन सबके भोग ज्ञानपूर्वक विशेष भोग थे। अतः इनके भोगों और अन्य साधारण पुरुषों के और सूक्ष्म जगत् के भोगों में और भोगने में अन्तर होता है।

शंका—क्या सूक्ष्म जगत् में रहने वालों के सामान्य भोग और पशु-पक्षियों वनचरों के भी सामान्य ही भोग होते हैं। इन्हें विशेष ज्ञान नहीं होता ?

समाधान—सूक्ष्म जगत् में सदा मुक्तात्माओं के इन्द्रियों के भोग एक समान ही सदा रहते हैं। परन्तु वनचरों पशु-पक्षियों आदि जानवरों में भी भोगों की समानता नहीं होती है। एक दूसरे का भय रहता है। कभी भोग प्राप्त होते हैं, कभी प्राप्त नहीं भी होते। भूखा ही रहकर सोना पड़ता है। एक दूसरे पशु से राग द्वेष भी होता है। अपने से भी पशु-पक्षियों में अनुराग या दूसरों में द्वेष होता है। परस्पर लड़ाइयां हिंसा एक दूसरे की करते हैं। परन्तु सूक्ष्म में भोग विलास बाल-बच्चे पैदा नहीं होते। वहां परस्पर राग-द्वेष भी नहीं होता है।

इस जगत् में पशु-पक्षियों अन्य जानवरों के भोगों में और मनुष्यों के भोगों में अन्तर होता है। परन्तु सूक्ष्म जगत् के भोगों में कोई अन्तर नहीं होता। स्थूल जगत् में मूर्खों अनपढ़ों जंगली मनुष्यों के भोगों में और विद्वान् योगी सर्वगुण-सम्पन्न धन और सर्व ऐश्वर्यों से पूर्ण ज्ञानवान् के भोगों में बहुत अन्तर होता है। सामान्य और विशेष ज्ञान का भी अन्तर होता है।

शंका—सूक्ष्म जगत् या स्वर्ग लोक के भोगों की बात किसी योगी ज्ञानी ने स्वर्ग लोक से लौटकर या आकर तो बतायी नहीं, केवल आपका अनुमान ही है।

समाधान--अनुमान हमेशा प्रत्यक्षपूर्वक होता है। क्योंकि इस लोक में सुखी ज्ञानी सर्व-ऐश्वर्य-सपन्न व्यक्ति योगी लोग सुख शान्ति और आनन्द का जीवन व्यतीत करते हैं, अतः मरने के पश्चात् भी इस प्रत्यक्ष सुख शान्ति आनन्द को देखकर अनुमान होता है कि स्वर्ग लोक में भी उन्हें जो सुख शान्ति वे छोड़ कर जाते हैं वह वहां भी अवश्य प्राप्त होगा।

कंठ-मुख-नासिका-आहार-श्वास-प्रणालीस्थ आकाश में शब्द द्वारा आत्मज्ञान

कंठ मुख नासिका में आकाश वर्तमान रहता है। इनके पोल रूपी आकाश में योगी को शब्द के द्वारा माध्यम बनाकर ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान हो सकता है। इनमें क्रमपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या इकट्ठे प्रणव शब्द को लेकर ब्रह्म ज्ञान करना चाहिये, सूक्ष्म रूप में मन के और बुद्धि के द्वारा। एककालावच्छेदेन भी तीनों के इकट्ठे आकाश को ध्यान समाधि का विषय बनाकर, ओ३म् से ब्रह्म के स्वरूप का और अहमस्मि से अपने आत्मा के स्वरूप का ज्ञान ओ३म् शब्द की सूक्ष्म ध्वनि से ब्रह्म का स्पर्श करके ज्ञान हो जाता है या किया जा सकता है। अहमस्मि मन्त्र से समाधि की अवस्था में हृदय प्रदेश में स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। ये सब कर्म स्थूल शरीर के रहते हुए सूक्ष्म शरीर में ही होते हैं, क्योंकि अन्तःकरणचतुष्टय सूक्ष्म शरीर का ही भाग या अंग हैं। उस काल में स्थूल शरीर का भान ज्ञान जाता रहता है, केवल सूक्ष्म शरीर और शरीर के द्वारा ही आत्मा और परमात्मा का ज्ञान होता है। यह विज्ञान सूक्ष्म शरीर के द्वारा और कारण शरीर के द्वारा ही प्राप्त होता है। परन्तु व्युत्थान काल में स्थूल शरीर का पुनः भान ज्ञान होने लगता है।

इन कंठ मुख नासिका में जो आकाश हैं, तीनों इकट्ठे ही हैं। सूक्ष्म शरीर में भी ये होते हैं और स्थूल शरीर में तो सर्वसाधारण के देखने में आते हैं। परन्तु हम यहां सूक्ष्म शरीर के विषय में लिख रहे हैं। इसके मध्य में जो आकाश है उसमें सात्विक राजस तामस भेद से ब्रह्मज्ञान होता है। लक्ष्य यहां सूक्ष्म शरीर ही है। यह योगी की अपनी ऋतंभरा प्रज्ञा पर अवलम्बित होता है। ऋतंभरा बुद्धि भी सूक्ष्म शरीर का ही भाग है। इस प्रकार इस देश के शरीर में ९ प्रकार से, अथवा १५ प्रकार से ब्रह्मानुभूति होती है। जब तीनों का आकाश एक स्वीकार करते हैं तब ९ प्रकार से ब्रह्म साक्षात्कार होता है। ब्रह्मरन्ध्रस्थाकाशस्थ, कर्णेन्द्रियस्थ आकाशस्थ, कंठ-मुख-नासिकास्थ आकाशस्थ शब्द या मन्त्र द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार होता है, और आत्म-साक्षात्कार भी होता है।

सब से पूर्व ब्रह्मरन्ध्रस्थ आकाशस्थ शब्द द्वारा ब्रह्मानुभूति, इसके पश्चात् कर्णेन्द्रियस्थ आकाशस्थ शब्द द्वारा ब्रह्मानुभूति, तत्पश्चात् कंठ-मुख-नासिकास्थ आकाशस्थ शब्द द्वारा ब्रह्मानुभूति, ये तीनों सात्विक राजस तामस भेद से करनी चाहियें या होती हैं। यह विज्ञान हम सूक्ष्म शरीर के द्वारा प्राप्त होने का कथन कर रहे हैं। इस स्थूल शरीर में जो सूक्ष्म शरीर है उसमें यह विज्ञान समझना चाहिये। अथवा आकाश में विचरने वाले सूक्ष्म शरीर का समझ लें। योगी दोनों में कर सकता है।

शंका—क्या अन्तरिक्ष या द्युलोक में विचरने वाले सूक्ष्म शरीर भी इस प्रकार वहां रहकर ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं?

समाधान—इस स्थूल जगत् से ऊपर जितने भी लोक हैं, वे सुखी अवस्था के या सुख शान्ति आनन्द भोग के स्थान हैं या इनके भोग के लिए शेष रह जाते हैं। वहां पहुंच कर कर्तव्य कर्म ज्ञान वैराग्य की प्राप्ति या करने की कोई बात नहीं रहती है। वे स्थान स्वर्ग-लोक ब्रह्मलोक सुख-शान्ति-आनन्द के भोग के लिए ही होते हैं। वरना इस लोक और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन लोकों में कोई अन्तर ही न रहे। धर्म कर्म कर्तव्य पाप-पुण्य सुख-दुःख की बात या साधन इस स्थूल जगत् में ही होते हैं क्योंकि यहां अज्ञानता का ही विशेष साम्राज्य होता है।

इस विषय में महोपनिषद् प्रमाण है—

अज्ञानोऽपहते बाल्ये यौवने वनितोऽपहतः।
शेषे कलत्रचिन्ता च किं करोति नराधमः॥ अ० ६ मं० २३
संत्यज्य हृद्गुहे ज्ञानं देवमन्यं प्रयान्ति ये।
ते रत्नमभिवाञ्छन्ति त्यक्तहस्तस्थकौस्तुभम्॥ अ० ६ मं० २०
संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते।
तन्मध्ये पतिते देहे सुखमासाद्यते कथम्॥ अ० ६ मं० २६

भावार्थ—बाल्यकाल तो अज्ञानता में बीत जाता है। युवा अवस्था पत्नी के सहवास में समाप्त हो जाती है। बाकी बुढ़ापा पुत्र-पुत्रियों की चिन्ता में बीत जाता है। अरे नादान पुरुष! क्या तू करता है? ए मूर्ख! अपने हृदय रूपी मन्दिर में जो भगवान् सर्व-व्यापक होकर ठहरा हुआ है, उसको छोड़कर क्यों इधर उधर अन्य देवता के पीछे भटकता फिरता है, अपने हाथ में प्राप्त रत्न को छोड़कर कांच की मणि के पीछे दौड़ता फिरता है? यह संसार दुःखों की खान है। इनकी कोई सीमा नहीं। अर्थात् दुःखों का भी कोई अन्त नहीं है। एक दुःख जाता नहीं, दूसरा और आन उपस्थित होता है। इन दुःखों के गर्त में पड़ कैसे सुख प्राप्त हो सकता है?

किन्तु स्वर्गलोकादि में सुख प्राप्ति के लिए किसी साधन विशेष की बात नहीं; शान्त भाव से केवल इन्द्रियों और अन्तःकरण के द्वारा सुख शान्ति आनन्द का उपभोग करते रहते हैं। जो कुछ भी प्राप्त करने योग्य या कर्म करने योग्य पदार्थ का कार्य है, वह इसी स्थूल लोक और स्थूल शरीर में है। अतः इस स्थूल शरीर के रहते हुए ही प्राप्त कर लेना चाहिये। दूसरे जन्म या दूसरे लोक में प्राप्ति की आशा नहीं रखनी चाहिये।

शंका—क्या पुनर्जन्म धारण करके प्राप्त नहीं कर सकते?

समाधान—तुम्हारे जैसे आलसी प्रमादी दीर्घसूत्री और पथभ्रष्ट तो एक जन्म या पुन-र्जन्म तो क्या, सहस्रों जन्मों में भी प्राप्त नहीं कर सकते। जब इससे पहले के जन्मों में अब तक प्राप्त नहीं किया, तब अगले जन्म में प्राप्ति की क्या आशा रखते हो? अतः जो कुछ भी प्राप्त करना है, वह फौरन से पेशतर इसी जन्म में प्राप्त कर लेना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फुफ्फुस (फेफड़ों) छाती के आकाश में किसी मन्त्र के द्वारा मानसिक जाप से भगवान् को आह्वान करें या उसका नाम लेकर पुकारें। तब हृदय आकाश में साधक को सूक्ष्म रूप में ब्रह्म का अनुभव होने लगता है। एक अनिवर्चनीय सी शक्ति इस आकाश में चल और अचल रूप में अनुभव में आती है। अचल उसका वास्तविक स्वरूप है, और चल रूप क्रिया उसमें शब्द या मन्त्र के उच्चारण से भासने लगती है। शब्द जैसे ओम्-शिव-राम-ईश्वर इत्यादि। मन्त्र यथा ओम् नमः शिवाय, ओम् तत् सत् ब्रह्मणे नमः, ओम् त्वमसि, अहम् ब्रह्मास्मि, तस्मै ब्रह्मणे नमः, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः, ओम् भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं, इत्यादि सूक्ष्म रूप में मन में इनका उच्चारण करें या जाप करे और परमात्मा को समाधि का विषय बनावे और साक्षात्कार करने का यत्न मन और बुद्धि द्वारा करे। सात्त्विक राजस तामस भेद से अनुभूति करनी चाहिये।

शंका—क्या सूक्ष्म शरीर में भी स्थूल शरीर की तरह फुफ्फुस होते हैं?

समाधान—हां, अत्यन्त सूक्ष्म रूप में पंच तन्मात्राओं से बने हुए होते हैं, क्योंकि सूक्ष्म शरीर में जीवनी शक्ति और शरीर इन्द्रियों के भोग होते हैं। इनमें प्राण का श्वसन क्रिया होती है और जीवन का आधार होते हैं। इनके बिना जीवन भी नहीं रहता है। अतः सूक्ष्म शरीर में फुफ्फुस अवश्य होने चाहियें। इनके बिना जीवन भी नहीं रह सकता। श्वास-प्रश्वास का कार्य इनसे ही होता है। जीवनी शक्ति का संचार इनसे ही होता है।

सूक्ष्म शरीर के हृदय आकाश तथा अन्य ग्रन्थियों के आकाश में शब्द या मन्त्र द्वारा आत्मानुभूति

छाती के नीचे हृदय, आमाशय, यकृत, पक्वाशय, प्लीहा ग्रन्थियां साथ-साथ सटी हुई हैं और प्रत्येक का परस्पर सम्बन्ध भी है। इन ग्रन्थियों के आकाश में आत्मा और परमात्मा का साक्षात् होना चाहिये, शब्द या मन्त्र द्वारा। इनके आकाश में शब्द या मन्त्र से, क्षोभ या आघात से आकाश और ब्रह्मरन्ध्र में आत्मा और ब्रह्म का अनुभव होने लगता है। इन ग्रन्थियों के आकाश में क्रमपूर्वक ब्रह्म को देखना चाहिये। आकाश और ब्रह्म के भेदाभेद में यथार्थ रूप में साक्षात्कार करना चाहिये। सूक्ष्म शरीर में प्राण चलते रहने से सूक्ष्म शब्द भी उत्पन्न होते रहते हैं जो सार्थक और निरर्थक होते हैं। अतः दोनों प्रकार के शब्द को माध्यम बनाकर ब्रह्मज्ञान करना चाहिये। ऊपर जो शब्द और मन्त्र बताए हैं, उनमें से किसी शब्द और मन्त्र को माध्यम बनाकर ग्रन्थियों के आकाश में मानसिक उच्चारण करके शब्द का सम्बन्ध चेतन के साथ बनाना चाहिये। शब्द जो है वह आकाश और चेतन में क्षोभ या थरथराहट उत्पन्न कर देता है। आकाश की और शब्द की क्रिया से चेतन भी इसके साथ क्रियाशील सा हो जाता है। तब दर्शन का विषय बनता है। आकाश और शब्द के परस्पर टकराने से, जैसे बादलों में परस्पर के टकराव से बिजली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चमकती है, इसी प्रकार शब्द आकाश की टक्कर से चमक पैदा होकर चेतन के दर्शन का विषय बन जाती है।

योगी सर्वव्यापक चेतन को पदार्थ के प्रत्येक देश और प्रत्येक पदार्थ में देखना चाहता है। इन चारों ग्रन्थियों में क्रमपूर्वक इनके आकाश में ब्रह्म की व्याप्ति का अनुभव करना चाहिये। शरीर का कोई देश या अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब में सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति होनी चाहिये। इन ग्रन्थियों के आकाश में देखने का क्रम इस प्रकार है—हृदय, यकृत, आमाशय, पक्वाशय प्रत्येक को लक्ष्य, बनाकर चेतन का अनुभव करना चाहिये।

छोटी बड़ी आंत और नाभिस्थ आकाश में चेतन ब्रह्म का शब्द द्वारा ज्ञान या दर्शन करना चाहिये। इन तीनों स्थानों में आकाश रहता है और इनमें पोल भी है, अतः इनके पोल रूपी आकाश में चेतन की प्रतीति अनुभूति होनी चाहिये। इनमें जो आकाश है उसमें शरीराभिमानी चेतन भी वर्तमान है, अतः आकाश और चेतन के मध्य प्रणव शब्द का उच्चारण करने से इनमें भी कम्पन रूप क्रिया अत्यन्त सूक्ष्म सी होने लगती है। उस काल में चेतना और आकाश की भिन्न-भिन्न रूप में और व्याप्य-व्यापक रूप में भी प्रतीति हो जाती है। स्थूलस्थ जो सूक्ष्म शरीर है उसके आकाश को लक्ष्य बनाना चाहिये, क्योंकि स्थूल शरीर के आकाश में तो सर्वत्र सर्व ग्रन्थियों में चेतन का ज्ञान या दर्शन प्राप्त हो चुका है। अतः स्थूल के देह के अभ्यास से ऊपर उठकर सूक्ष्म शरीर को लक्ष्य बनाना चाहिए और उसकी आंतों के सूक्ष्म शिरों पर और नाभि में ध्यान अभ्यास से चेतन का साक्षात्कार करना चाहिये जो व्यापक होकर वर्तमान है। मानसिक प्रणव जाप के द्वारा अभ्यास काल में सूक्ष्म शरीर आंतों और नाभि के ऊपर जो आकाश है उसमें ब्रह्म दर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिये ताकि सम्पूर्ण सूक्ष्म शरीर में ब्रह्म सर्वत्र भासमान हो सके।

हमने सूक्ष्म शरीर के आकाश के प्रधान दस स्थान माने हैं। इन सब में क्रमपूर्वक आत्मा और परमात्मा का दर्शन करना चाहिये। जैसे पहले स्थूल शरीर के दस स्थानों के आकाश में शब्द द्वारा ब्रह्म दर्शन किया। उन्हीं के स्थानों में सूक्ष्म शरीर के आकाश का भी स्थान है। क्योंकि स्थूल शरीर के दस आकाशों में ब्रह्म दर्शन कर चुके हैं अतः उन्हीं स्थानों में सूक्ष्म शरीर के भी आकाश हैं, वहां ही सूक्ष्म शरीर के आकाश में आत्मा और परमात्मा के दर्शन का अभ्यास और साक्षात्कार करना चाहिये। इससे मिलता जुलता विज्ञान स्थूल शरीर में विस्तारपूर्वक कथन कर चुके हैं। केवल स्थूल और सूक्ष्म का ही अन्तर है। स्थान भी वहां ही हैं और अभ्यास भी वहां ही करना है। प्रत्येक में आकाशस्थ ब्रह्म का ज्ञान भी करना चाहिये और सम्पूर्ण शरीर के आकाश में एककालावच्छेदेन भी ब्रह्म ज्ञान या दर्शन विभु सी दृष्टि डालकर सूक्ष्म शरीर में सर्वत्र ज्ञान और दर्शन होना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वास्तव में नाभिस्थ आकाश शरीर में आकाश का अन्तिम भाग है। जब योगी ज्ञानी या अन्य विद्वान् अथवा साधारण व्यक्ति भी शब्द का उच्चारण करता है तब उस उच्चारण रूप शब्द का आघात नाभि प्रदेश में होता है और यह स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरों पर होता है। तब इच्छाजन्य वेगाख्य आघात नाभि पर होकर वह शब्द उर्ध्वगमन करता है अर्थात् कंठ मुख नासिका में पहुंचकर कंठ तालु दन्त जिह्वा से उच्चारित होकर ज्ञान का विषय बनता है। नाभि में आघात अव्यक्त रूप में होता है। फिर वह शब्द पक्वाशय आमाशय छाती में होता हुआ कण्ठ मुख में पहुंचकर तालु जिह्वा दन्त ओष्ठ से होता हुआ मुख नासिका से बाहर निकल कर ज्ञान का कारण बनता है। इसका प्रभाव स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरों पर पड़ता है।

पहले स्थूल शरीर की प्रक्रिया से, तत्पश्चात् सूक्ष्म शरीर की प्रक्रिया से आकाशस्थ शब्द द्वारा आत्मा और परमात्मा का ज्ञान कर सकता है। विज्ञान का क्रम एक समान ही है, परन्तु शरीर के स्थूल सूक्ष्म शब्दों और आकाशों का ही अन्तर है। अतः नाभिस्थ आकाश में, जो कि अन्तिम भाग आकाश का है, उसमें ओ३म् का उच्चारण करके चेतन के साथ सम्पर्क बनाना चाहिये और चेतन के साथ शब्द का स्पर्श होना चाहिये। अत्यन्त सूक्ष्म सी भावना यह होती है और बहुत सूक्ष्म ध्यान की दृष्टि यहां चेतन का अनुभव कराती है। भले ही विज्ञान के प्रधान केन्द्र मस्तिष्क और हृदय में बुद्धि और चित्त हैं, परन्तु योगी इनको माध्यम बनाकर प्रत्येक सूक्ष्म शरीर के देश या स्थान में साक्षात्कार करने में समर्थ होता।

विवेकवान् योगी क्रमपूर्वक भी साक्षात्कार करता है, और एककालावच्छेदेन भी कर सकता है, विभु सी ध्यान की दृष्टि डालकर। यहां तक हम दस प्रकार के आकाश में शब्द द्वारा आत्मा और परमात्मा के ज्ञान के साधनों का वर्णन कर चुके हैं। सूक्ष्म शरीर में इनमें सात्विक राजस तामस भेद से प्रत्यक्ष करना चाहिये तब ये ३० प्रकार के भेद सूक्ष्म शरीर में हो जाते हैं। स्थूल शरीर में भी ३० प्रकार के आकाशस्थ शब्दों के द्वारा सात्विक राजस तामस भेद से साक्षात्कार के साधन बनते हैं। सूक्ष्म शरीर में त्रिगुणात्मक आकाश में शब्द द्वारा आत्मा परमात्मा के ज्ञान की बातें बतायी हैं। इन दोनों शरीरों में ६० प्रकार के ज्ञान सिद्ध होते हैं, शब्द और मन्त्र द्वारा।

प्रश्न—क्या कारण शरीर में शब्द और मन्त्र द्वारा आत्म-साक्षात्कार हो सकता है जब कि वहां इन्द्रियों का अभाव है?

समाधान—हृदय में भी शब्द की धड़कन होती है, चाहे, उसे कान न भी सुनें। और मानसिक शब्द का उच्चारण भी तो ज्ञान का हेतु होता है, भले ही कर्णेन्द्रिय न भी सुने। केवल मन और बुद्धि से प्रणव शब्द की भावना करने या ध्यान की कलम से पुनः-पुनः प्रणव शब्द को लिखने से भी ज्ञान होता है। अतः कारण शरीर में भी शब्द द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मानुभूति होती है। कारण शरीरस्थ आकाश में मानसिक शब्द उच्चारण करने से भी आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान होता है। और यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के संघात काल में अथवा पृथक्-पृथक् अवस्थाओं में भी हो सकता है। यदि योगी को सूक्ष्म और कारण शरीर का ज्ञान हो, तब भी तो स्थूल शरीर के हृदय में आत्मानुभूति हो सकती है।

जैसे ईसाई और मुसलमान, जो सूक्ष्म और कारण शरीर को नहीं मानते या समझते, उनको भी स्थूल शरीर में आत्मज्ञान हो जाता है। और जो सूक्ष्म शरीर को मानते हैं और ज्ञान भी करते हैं, उन्हें स्थूल और सूक्ष्म शरीरों में आत्मानुभूति होती है। समाधि की अवस्था में स्थूल शरीर का भान न रहने से केवल सूक्ष्म का भान बना रहता है। उस काल में सूक्ष्म शरीर में आत्मा का अनुभव होता है। इन दोनों का भान ज्ञान रहते अन्तःकरण के हृदय प्रदेश में आत्मा का अनुभव होता है, अन्तःकरण के हृदय प्रदेश में केवल अहंकार और चित्त का ज्ञान शेष रहता है, उस अवस्था में आत्मज्ञान होता है। अन्तःकरण के कारण शरीर में केवल अहंकार, चित्त और आत्मा ही हैं। आत्मा से परमात्मा का भेद तब तक ही प्रतीत होता है जब तक अहंकार बीच में रहता है। इसके निवृत्त हो जाने पर आत्मा से परमात्मा को पृथक् करने या भेद का साधन नहीं रहता है। फिर सर्व व्यापक एक ही सत्ता चेतन ब्रह्म की रह जाती है।

वैसे आत्मा को परमात्मा से अलग करने का कारण मुख्य रूप से चित्त ही होता है, क्योंकि अहंकार से प्रथम चित्त ही उत्पन्न होता है। चित्त के देश में ही परमात्मा की आत्मा संज्ञा होती है, क्योंकि स्वतन्त्र रूप से आत्मा अणु या विभु सिद्ध नहीं होता, न उसका कोई कार्य-कारण सिद्ध होता है। एक ही चेतन सत्ता सर्वत्र सूक्ष्म रूप से सब में व्यापक निष्क्रिय निरवयव सिद्ध होती है। दो या अनेक चेतन सिद्ध नहीं होते। एक चेतन और एक जड़ ही पदार्थ संसार में हैं। जड़ सत्ता ही परिणामिनी होने से अनेकत्व रूप में कार्यों के रूप में होती है या भासने लगती है। चेतन में किसी प्रकार का परिणाम या कर्म व्यापार सिद्ध नहीं होता है।

शंका—तब ये शरीरधारी अनेक चेतन क्यों प्रतीत होते हैं और भिन्न-भिन्न रूप में सबके कर्म पृथक्-पृथक् होते देखते हैं?

समाधान—हम दो पदार्थ नित्य मानते हैं, एक सर्वव्यापक निष्क्रिय निरवयव चेतन ब्रह्म और दूसरी प्रकृति—कारण रूप से नित्य और कार्य रूप में अनित्य, परिणाम भाव को प्राप्त होने वाली। अनेक कार्यों के रूप में मनुष्यों के शरीर में प्रकृति के ही कार्य हैं। इन शरीर रूपी कार्यों में एक ब्रह्म नाना रूप से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतीत हो रहा है। जैसे, एक मकान में हजारों शीशे लगे हों और आप उनके बीच में खड़े हो जाओ। उन शीशों पर आपका भिन्न-भिन्न रूप में प्रतिबिम्ब पड़ेगा। आपकी एक आकृति की हजार आकृतियां देखने में आवेंगी। इसी प्रकार सर्वव्यापक ब्रह्म की प्रत्येक प्राणी के चित्त पर प्रतिछाया पड़ती है। अन्तःकरण के भेद से मनुष्य और प्राणियों में भेद प्रतीत होने लगता है। परन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोक्ष में पहुंच कर वह भेद समाप्त हो जाता है। यहां हम अथर्ववेद का प्रमाण देते हैं, सर्वव्यापक चेतन आत्मा के उत्पत्ति-विनाश और सृष्टि-प्रलय में एक समान रहने का। यथा—

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय।
तस्यां देवैः सम्वसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥
—अथर्ववेद, सूत्र ८०, मन्त्र १, सप्तम काण्ड

अर्थ—वह ब्रह्म शक्ति (पश्चात्) इस संसार की प्रलय के पश्चात् (पूर्णा) पूर्ण थी (मध्यतः) इन दोनों कालों के बीच के रचना काल में भी यह (पौर्णमासी) पूर्ण रूप में जगत् को बनाने वाली या नापने वाली या बड़ी शक्ति (उत्जिगाय) उच्च विराजमान (तस्याम्) उसमें (देवैः) मुक्तात्मा सहित (संवसन्तः) निवास करते हुए (महित्वा) उसकी महिमा से (नाकस्य) परम सुख मोक्ष के (पृष्ठे) धाम में (इषा) अपनी इच्छा के अनुसार (संमदेम) आनन्द का उपभोग करें। अथवा उस मोक्ष धाम में निवास करें। इस प्रलय काल में पहुंचकर इससे पूर्व जो आत्माओं में अनेमत्त्व था या माना जा रहा था वह सब भेद निवृत्त हो जाता है और सर्वव्यापक चेतन आत्मा की अपने स्वरूप में, जो आप आनन्द रूप ही था उसके स्वरूप को समझें, उसमें स्थिति हो जाती है।

कारण शरीर के चित्त में आत्मा और परमात्मा की अनुभूति

हम कारण शरीर के विषय में 'ब्रह्म विज्ञान' व 'आत्मविज्ञान' आदि ग्रन्थों में कई जगह उल्लेख कर चुके हैं। जब योगी कारण शरीर को अभ्यास का विषय बनाता है, और ब्रह्मरन्ध्र से चित्त के प्रदेश हृदय में आत्मा की खोज करता है, तब इसे प्रथम अहंकार के मण्डल से होकर जाना पड़ता है। यह भी चित्त और आत्मा के ऊपर आवरण ही होता है। अहंकार कर्म प्रधान है और चित्त ज्ञान प्रधान है, दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कर्म और ज्ञान के नाते से दोनों मिलकर सर्व कार्यों में प्रधान साधन करने के लिए होते हैं। यह चित्त

चित्र संख्या ५—इस चित्र में कारण शरीर में जो चित्त है, इस चित्त के साथ जब ब्रह्म का सम्बन्ध होता है तब इस चित्त के प्रदेश में ब्रह्म की जीवात्मा संज्ञा हो जाती है। वैसे आत्मा परमात्मा का भेद नहीं है, परन्तु यहां चित्त के कारण भेद उपस्थित हो जाता है। जब योगी इस चित्त की भित्ति को भेदन कर देता है अर्थात् अन्दर और बाहर एक ही सर्वव्यापक चेतन का अनुभव करता है, या चित्त के देश से बाहर निकल जाता है, तब चित्त अन्दर और बाहर एक ही समान चेतन को देखता या जानता है। तब भेद की निवृत्ति हो जाती है। इस चित्र में, चित्त को भेदन करके, ब्रह्म की व्यापकता को दिखाया गया है। चित्त अहंकार के मण्डल को भेदन करके जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध दिखाया गया है। चित्र में समाधिस्थ योगी दोनों के सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा को साक्षात्कार कर रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से स्थूल होता है। इसमें ज्ञान बहुत गौण होता है और कर्म की प्रधानता होती है। सामान्य ज्ञान इसमें रहता है प्रधान रूप में। चित्त में कर्म गौण और ज्ञान प्रधान होता है। प्रत्येक व्यवहार या कार्य कर्म और ज्ञान के द्वारा होते हैं। ये दोनों साथ में मिलकर कार्य करते हैं।

योगी बुद्धि की सूक्ष्म ज्ञानात्मक वृत्ति से नीचे हृदय प्रदेश में प्रवेश करता है, आत्मा के अनुसन्धान के लिए। इसके दो बड़े दुर्गों अहंकार और चित्त को विजय करके आत्मा के पास पहुंचना होता है। अहंकार के आवरण को भेदन करके चित्त प्रदेश में पहुंचता है। यहां इस समय इन्द्रियों के सब विषयों का अभाव या सम्बन्ध विच्छेद होता है, क्योंकि वास्तव में इन्द्रियों के विषयों पर यहां पहुंचने में बड़े प्रतिबन्ध होते हैं। घ्राणेन्द्रिय के सहस्रों गन्धात्मक विषय होते हैं। इनसे निकलकर आगे बढ़ना बड़ा ही कठिन होता है। इस प्रकार रसना इन्द्रिय के वैसे ६ ही रस होते हैं, परन्तु ये भी अनेक रूपों में विस्तृत हो जाते हैं। जैसे मधुर रस या मिठास भी अनेक प्रकार का होता है। जितने भी फल मीठे हैं, नाना प्रकार की इनकी मिठास होती है। अनेक प्रकार के फल हैं, इनकी डंडियों और इनमें बड़ी मिठास होती है। शहद की मक्खियां इन्हीं से बहुत मीठा शहद तैयार करती हैं। रूप के अनेक प्रकार के विषय हैं। पुरुषों और स्त्रियों के रूप परस्पर मोह को प्राप्त हो जाते हैं। फूलों में सुन्दर रूप का बड़ा आकर्षण होता है। पक्षियों की सुन्दरता, पशुओं की सुन्दरता, भवनों की सुन्दरता में बड़ा आकर्षण होता है। ये सब रूप के ही विषय हैं। इसी प्रकार स्पर्श के भी अनेक प्रकार के विषय होते हैं। बालक बालिका को प्यार करते हुए कोमल स्पर्श की अनुभूति होती है। पति पत्नी परस्पर आलिङ्गन करते हैं, उसमें भी स्पर्श रूप सुख की अनुभूति होती है। परस्पर पुरुषों का कोमल स्पर्श, रेशमी कपड़ों का, पश्मीने का, मखमल का कोमल स्पर्श, संसार में सबसे बड़ा आकर्षण और जीवन भर बांधकर रखने वाला पति और पत्नी के सहवास का स्पर्श है। सब संसार के प्राणि इसके दास बने रहते हैं। कोई विरले महानात्मा ही बाल्य काल से ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी आजीवन रहते हैं; वे ही इस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। और भी संसार में अनेक प्रकार के स्पर्श हैं, इस स्पर्शेन्द्रिय के विषय।

कर्णेन्द्रिय का विषय भी बड़ा प्रधान है। गायन विद्या वाले, अच्छे वक्ता, उपदेष्टा ये भी अपने शब्द से लाखों को मोहित या प्रभावित कर लेते हैं। पक्षियों की चहचहाहट तथा मधुर आवाज भी बहुत प्यारी लगा करती है। मधुरभाषिणी देवियों और पुरुषों के मधुर शब्द बड़े प्रभाव वाले होते हैं। नदियों के जल की कल-कल भी बड़ी प्यारी लगा करती है। पशुओं की बोलियां भी बड़ी आकर्षक होती हैं। कठोर वचन सदा मनुष्यों के हृदय को पीड़ा देते रहते हैं। उन्हें स्मरण करके भी मानव को दुःख होता रहता है और प्रतिकार की भावना पैदा होती है। अभ्यास काल में मन्त्र जाप भी भगवान् के प्रति राग और मोह को पैदा करता है। ये अनेक विषय इन्द्रियों के हैं जो अध्यात्मज्ञान को प्राप्त करने में बाधक होते हैं। कभी-कभी मंत्र जाप से भी साधक को उपेक्षा ही आती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये इन्द्रियाँ स्थूल पंचभूतों से उत्पन्न हुई हैं, अतः उनके ही विषयों या गुणों को ग्रहण करती या भोगती हैं। हृदय प्रदेश में पहुंचने पर इन्दियों के विषय वहां नहीं होते हैं, केवल अहंकार और चित्त ही होते हैं। अहंकार और चित्त के अपने भी विषय हैं। ये भले ही आत्मा के पास पहुंचने में बाधक बन जायें।

जब योगी ऋतंभरा बुद्धि को लेकर हृदय में पहुचता है, यह बुद्धि अहंकार और चित्त का तथा आत्मा का क्रमपूर्वक ज्ञान कराने में समर्थ होती है। जब योगी अहंकार के मण्डल में प्रवेश करता है तब इसकी तामस राजस सात्त्विक अवस्थायें नील वर्ण में प्रतिभासित होती हैं। ये क्रमपूर्वक अवस्थाएं आती हैं और इनमें पहुंचकर अहमस्मि का बोध होता है।

शंका—क्या अहंकार के मण्ठल में पहुंचते ही अहंकार आत्मा के स्वरूप को प्रकट कर देता है।

समाधान—मन और बुद्धि अहंकार के पास ले जाकर छोड़ देते हैं। तब अहम् का पुनः-पुनः भान होने लगता है। परन्तु अहम् करने मात्र से ही आत्मज्ञान नहीं होता है। अहम् का सम्बन्ध पहले चित्त से होता है। अहंकार कर्म-प्रधान होने से संस्कारों की उथल-पुथल करने लगता है। तब चित्त ज्ञानात्मक होने से सावधान होता है। अपने गर्भ में आत्मा को भी कम्पायमान सा करने लगता है। उस चित्त के रूप में होने से और अहंकार रूप वृत्ति होने से चित्त में संयुक्त आत्मा की अनुभूति होने लगती है। पहले अहमस्मि का बोध होता है, फिर शनैः-शनैः भेद की निवृत्ति होने लगती है। अहं एक और अन्तर्धान हो जाता है, और अस्मि का बोध चित्त में होने लगता है। केवल ध्येयाकार वृत्ति हो जाती है। पहले मन बुद्धि ध्याता बन कर चले थे, और अहंकार को पकड़ अहमस्मि के रूप में बोध होने लगा था। इसके पश्चात् ध्याता का बोध प्रारंभ हुआ। बहुत काल तक त्रिपुटी की अवस्था रही, पश्चात् ध्याता भी ओझल हो गये। केवल अहंकारात्मक ध्यान और ध्येय ही रह गये। कुछ काल के और अभ्यास से अहंकारात्मक ध्यान भी अन्तर्धान हो गया। केवल चित्त मात्र ही रह गया। इस स्थिति में केवल अस्मि-अस्मि ही ज्ञान रह गया।

इस समाधि की अवस्था में पहले विशेष ज्ञान का अभाव सा हो जाता है। केवल सामान्य बोध आत्मा का अस्मि-अस्मि रहता है। उस काल में कोई संकल्प-विकल्प या संस्कार अथवा तर्क-वितर्क नहीं रहता, कोई शंका समाधान नहीं, केवल धाराप्रवाह आत्मज्ञान बना रहता है।

शंका—ज्ञान का प्रवाह आत्मा में बहता है या चित्त में ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान—आत्मा में ज्ञान का प्रवाह नहीं चलता है। चित्त में चलता है, किन्तु आरोप आत्मा में होता है। इसमें सांख्य दर्शन का प्रमाण है--गतिश्रुतिरप्युपाधि-योगादाकाशवत्।' अ० १, सूत्र ५१। आत्मा में गति का अभाव है। जहां कहीं गति की बात है, वह उपाधि के कारण ही है। आकाश की तरह, जैसे घटाकाश, मठाकाश। और एक सूत्र इस विषय में है--'न कर्मणाप्यतद्धर्मत्वात्।' सां० अ० १, सू० ४२। कर्म भी आत्मा का गुण या धर्म नहीं है, क्योंकि कर्म में उँचे उठना नीचे गिरना संकोच होना विकास होना गमन ये पांच धर्म होते हैं। इनमें से आत्मा में कोई भी नहीं घटता है। ये सब धर्म चित्त में घटते हैं।

अन्य भी सूत्र इस विषय में हैं। यथा—'उपाधिभेदेप्येकस्य नाना योग आकाशस्येव घटादिभिः। उपाधिः भिद्यते न तु तद्वान्। सां०, अ० १, सू० १५१-१५२। अर्थ—उपाधि भेद से एक आकाश का नाना घट मठ आदि के साथ सम्बन्ध होता है। घड़ा मकान आदि टूट फूट जाते हैं, परन्तु आकाश एकरूप ही रहता है, इसमें कोई विकार या परिवर्तन देखने में नहीं आता है।

इसी प्रकार शरीर इन्द्रिय अन्तःकरण उत्पन्न और विनाश होते रहते हैं। परन्तु आत्मा एकरूप ही रहता है।

शंका—क्या आकाश में विचरने वाले सूक्ष्म शरीराभिमानी योगियों को भी यह ज्ञान होता है, क्योंकि वहां अहंकार वर्तमान रहता है?

समाधान—कारण शरीर में इन्द्रियों का अभाव होता है। अतः इन्द्रियों के विषयों से भी हटाने की बात नहीं रहती। सामान्य अहंकार के निरोध की ही बात रहती है। और कुछ चितवृत्तिनिरोध का कार्य भी उन जीवनमुक्त अथवा मुक्त आत्माओं को रहता है, जैसे निद्रा, स्मृति, अस्मिता वृत्ति, सामान्य ज्ञान। इसलिए विशेष प्रयत्न होता है, स्थूल और सूक्ष्म शरीर में रहने से इन्द्रियों का विषयों से निरोध करने में। अतः कारण शरीर में इन्द्रियों के विषयों के भोगों का अभाव रहता है और योगी के लोकव्यवहार और इन्द्रिय-जन्य भोगों का अभाव रहता है। कई अरब वर्ष तक सुख शान्ति आनन्द के भोग वर्तमान रहते हैं। तत्त्वज्ञानी योगी या साधक इसी लोक की कामना किया करते हैं।

स्थूल सूक्ष्म शरीर के रहते हुए भी इस अवस्था का कुछ मिनट-घण्टे-दिन योगी समाधि में भोग करता है, या इस अवस्था में रह सकता है। इसी से योगी लोग मरणोपरान्त इस सुख शान्ति के आनन्द का अनुमान करते हैं। इससे पुनर्जन्म भी सिद्ध होता है और ब्रह्म लोक भी सिद्ध होता है। वेदान्त दर्शन भी इसकी पुष्टि करता है—गुहां प्रविष्टावात्मनौ हि तद् दर्शनात्। वेन्दान्त दर्शन, अ० १, सूत्र १२। अर्थ—हृदय या चित्त रूपी गुहा में आत्मा के दर्शन होते हैं। ये तीनों शरीरों में भी हो सकते हैं, सूक्ष्म कारण शरीर में स्वर्ग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोक में और केवल कारण शरीर में जहां केवल अहंकार और चित्त ही वर्तमान रहते हैं, ऊपर के सूक्ष्म लोक अर्थात् स्वर्ग लोक और ब्रह्म लोक जहां केवल कारण शरीर ही होता है। स्थूल शरीर में थोड़ा समय बड़े परिश्रम तपस्या त्याग वैराग्य और योग साधना से आनन्द का उपभोग होता है। और सूक्ष्म जगत् में थोड़े प्रयत्न से ही प्राप्त हो जाता है। इसकी अवधि करोड़ों वर्षों की होती है। ब्रह्मलोक में कुछ प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती, स्वाभाविक बहुत अरबों वर्षों तक आनन्द का उपभोग बना रहता है। यहां विशेष प्रयत्न की आवश्यकता तो होती नहीं।

शंका—यदि कोई आप से पूछे, तो आप कौन से लोक को पसन्द करेंगे ?

समाधान—मुझे तो तीनों लोक पसन्द नहीं हैं। यदि आप जबर्दस्ती देना चाहोगे, तो इसी वर्तमान लोक में ही रहने देना, क्योंकि यहां दुःखों कष्टों में सुख की परीक्षा हो जाती है और आनन्द के महत्त्व का भी पता लगता है। यहां प्रतियोगिता है, उसमें भी पास होने की जिज्ञासा होती है। लोक सेवा लोक उपकार का अवसर भी मिलता है। ऊंच-नीच हानि-लाभ भले-बुरे का भी ज्ञान रहता है। दुःखियों को देखकर दुःख निवारण की भावना भी उनके लिये होती है। दीन दुःखी अनाथ विधवा विधुर गरीब अमीर सब देखने में आते हैं। यह शरीर और भोग यहां के सुख एवं दुःख भी अनित्य देखने में आते हैं। बन्ध और मोक्ष सुख और दुःख का भी ज्ञान हो जाता है ये भी सब अनित्य ही देखने में आते हैं। स्वर्गलोक और ब्रह्मलोक के सुख और आनन्द की भी तो अवधि माननी होगी। वहां भी यही प्रश्न उपस्थित होगा जो यहां से जाने में हो रहा है। स्थायी और नित्य आनन्द कभी मिल ही नहीं सकेगा, क्योंकि सुख-दुःख अशान्ति-शान्ति आनन्द ये सब गतिशील हैं। जो गतिशील हैं वे नित्य नहीं हो सकते, अतः गमनागमन सदा बना ही रहेगा। यह स्वाभाविक धर्म गतिशीलों में बना ही रहेगा। इसके निवारण का स्थायी रूप में कोई उपाय नहीं है। जिसका उपाय कोई नहीं और असंभव भी है, उसके लिए कौन बुद्धिमान् उपाय या यत्न सोचेगा या करेगा ? अतः जिस भी स्थिति में हो उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये। आवागमन को देखकर चिन्तित या दुःखी नहीं होना चाहिये। जहां दुःख होगा वहां उसके बाद सुख भी आयेगा। न सदा दुःख रहता है न सदा सुख रहता है। न सदा बन्ध रहता है न सदा मोक्ष रहता है। इस वर्तमान संसार ने भी विनाश होकर प्रलय काल की अवस्था में जाना है। बन्ध और मोक्ष के भोगने वाले शरीर ही प्रलय काल में नहीं होंगे। वहां बद्ध और मुक्त सब समान ही रहेंगे। तीनों शरीर विनाश भाव को प्राप्त होकर अपने उपादान कारण में समा जायेंगे, विलीन हो जायेंगे, भोग और भोक्ता ही नहीं रहेंगे। वह अवस्था पापी पुण्यात्मा गरीब अमीर सुखी दुःखी रोगी स्वस्थ अज्ञानी ज्ञानी सबको बिना यत्न के स्वयं स्वभाव से अपने ही आप प्राप्त हो जायगी और कई अरब वर्षों तक एक समान बनी रहेगी और सब ही मुक्त होंगे।

प्रसङ्ग चल रहा था आत्म दर्शन का। इसमें वेदान्त दर्शन का सूत्र प्रमाण रूप में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है—'गुहां प्रविष्टौ आत्मानौ हि तद् दर्शनात् ।' इसके आगे उपनिषद् का प्रमाण और देते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् का मन्त्र है—'अंगुष्ठमात्रपुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।' अंगुष्ठ के बराबर हृदय में आत्मा वर्तमान है, इसको जानकर योगी लोग अमृत (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

हृदय प्रदेश में कई प्रकार से आत्मदर्शन होते हैं। सात्त्विक राजस तामस अहंकार के द्वारा, और सत्त्व रज तम की अवस्था में चित्त के द्वारा होता है। यहां आत्मा के भेद-अभेद द्वारा भी ज्ञान होता है। जब अहमस्मि आत्मज्ञान होता है तब भेदात्मक और जब अस्मि ज्ञान होता है तब अभेदात्मक होता है। अहंकार से युक्त भेदपरक और अहंकार-रहित अभेदपरक होता है।

शंका—क्या योगी शरीर से भिन्न समष्टि पदार्थों में ब्रह्मज्ञान को भेदाभेदपूर्वक प्रत्यक्ष कर सकता है ?

समाधान—जब अपने से भिन्न ब्रह्म का प्रत्यक्ष समष्टि पदार्थों में करता है तब व्यष्टि और समष्टि पदार्थों का क्रमपूर्वक पहले भेद रूप में अनुभव करता है, पश्चात् अभेद रूप में देखता है या अनुभव करता है। जब शरीर से बाहर समष्टि पदार्थों में चेतन की व्याप्ति का साक्षात्कार करता है तब पहले स्थूल से सूक्ष्म या कार्य से कारण का ज्ञानपूर्वक अनुभव करता है, क्योंकि व्यष्टि और समष्टि जड़ पदार्थों का परिणाम होता है। वह परिणाम कारण से कार्य का बोधक होता। और कार्य से कारण का ज्ञान होता है। परिणामात्मक पदार्थों के भेद से चेतन का भी भेद सा प्रतीत होने लगता है। वास्तव में विकार या परिणाम नहीं होता, भ्रान्ति से प्रतीत होता है।

जब योगी अहंकार के मण्डल में हृदय प्रदेश में प्रवेश करता है, नील वर्ण का अहंकार सामने आता है। इसके द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष करना चाहता है। क्योंकि अहंकार सात्त्विक राजस तामस भेद से तीन प्रकार का होता है अतः प्रथम ऋतंभरा बुद्धि द्वारा अहमस्मि मन्त्र को लेकर सत्त्व प्रधान के मण्डल में प्रवेश करता है, क्योंकि बुद्धि भी सात्त्विक होती है और अहंकार भी सत्त्व प्रधान होता है, अतः अहंकार को अन्य दूसरे संस्कारों को उथल पुथल करने का अवसर नहीं मिलता है। केवल सत्त्व प्रधान अहंकारजन्य जो सात्त्विक संस्कार चित्त में होते हैं वे भी उभर कर सामने आने लगते हैं। वे सत्त्व प्रधान चित्त के संस्कार अहमस्मि के बोधक होते हैं और निरन्तर बहुत काल तक यह मैं हूं अहंकारविशिष्ट यहां भेदात्मक ही ज्ञान अपने स्वरूप का होता है और अहंकार के द्वारा होता है। इसके पश्चात् अहंकार सत्त्व प्रधान ओझल या अन्तर्धान सा हो जाता है और केवल अस्मि-अस्मि का ज्ञान शेष रह जाता है यह ज्ञान विशुद्ध ऋतंभरा बुद्धि द्वारा होता है। जब तक व्युत्थान नहीं होता तब तक अस्मिरूप ज्ञान का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है और इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अस्मि शब्द या मन्त्र द्वारा चिरकाल तक अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है या बनी रहती है, जब तक व्युत्थान नहीं होता।

इसके पश्चात् जब योगी प्रज्ञालोकबुद्धि द्वारा, रजःप्रधान बुद्धि के द्वारा, रजःप्रधान अहंकार के मण्डल में प्रवेश करता है और तीव्र वेग से दीर्घस्वर से बलपूर्वक अहमस्मि मन्त्र का उच्चारण करता है, तब इस मन्त्र से रजःप्रधान अहंकार में क्षोभ उत्पन्न होकर उत्ताल तरङ्गें उत्पन्न होकर नील कुछ श्वेत वर्ण का प्रकाश अहंकार का हो जाता है। उस समय अहमस्मि रूप विशेष चमकदार उज्ज्वल नील वर्ण का भेदात्मक अपना स्वरूप प्रतीत होने लगता है। अन्य चित्त के संस्कार भी इस दिव्य ज्योति रूप अहंकारविशिष्ट तेज से दबे रहते हैं और अपने स्वरूप का ज्ञान भेदात्मक बना रहता है, क्योंकि अहंकार रजःप्रधान की विशेषता होती है। इस दिव्य आलोक में अहं शब्द अन्तर्धान हो जाता है और अहंकार की तीव्र पुट हट कर केवल अस्मि रूप ही रह जाता है और प्रज्ञालोकबुद्धि द्वारा अपने स्वरूप की अनुभूति दीर्घ काल तक बनी रहती है, क्योंकि बोध तो यह अहंकार रजःप्रधान में ही होता है परन्तु यह दिव्यात्मक अपनी सत्ता का स्वरूप अस्मि-अस्मि धारा-प्रवाह निरन्तर बहुत काल तक, जब तक समाधि का संकल्प करके बैठता है तब तक, ज्ञान बना रहता है, पूर्ण शान्ति बनी रहती है।

इसके अनन्तर योगी तमःप्रधान अहंकार के मण्डल में क्रमपूर्वक प्रवेश करके विशोका नाम की बुद्धि द्वारा अहमस्मि मन्त्र के द्वारा अपने स्वरूप का बोध करना चाहता है। इस अवसर में तमःप्रधान अहंकार का अत्यन्त नील वर्ण का प्रकाश होता है। तब अहमस्मि स्वरूप का कुछ धुंधले से प्रकाश युक्त अहंकार के मण्डल में, भान या ज्ञान भेदात्मक बहुत काल तक बना रहता है। इस भेद की निवृत्ति दीर्घ काल के अभ्यास से तब होती है जब अहम् अन्तर्धान होकर केवल अस्मि मन्त्र स्वरूप अपनी सत्ता का शेष रह जाता है। उस काल में विशोका नाम की बुद्धि से दीर्घ काल तक, जब तक व्युत्थान नहीं होता, स्वरूप का भान ज्ञान बना रहता है। इस स्वरूप स्थिति में बड़ी मस्ती और शान्ति बनी रहती है।

इस अहमस्मि मन्त्र के द्वारा त्रिगुणात्मक अहंकार में अपने स्वरूप के भिन्न-भिन्न रूप में दर्शन होते हैं। आत्मा के लिए जहां अहंकार बन्धन का हेतु होता है, सर्व पदार्थों में ममेदम् की भावना बनाकर अनेक जन्मों का हेतु बना रहता है, और अपने स्वरूप की सत्ता का अभिमानपूर्वक कथन और व्यवहार करता रहता है, यह अनादि काल से बन्धन का हेतु चला आ रहा था। अब अस्मि रूप से मुक्ति का हेतु बन गया है, यह भी बड़ी भारी विशेषता अहंकार की है, जो कि अन्त में मोक्ष और बन्ध निवृत्ति का हेतु बनी।

शंका—अब तो अहंकार से पीछा छूट गया। फिर तो कभी बन्ध नहीं होगा ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान—जब पहले बन्ध था अब मुक्त हो गया है, तब वह पुनः भी बन्ध हो सकता है, क्योंकि मुक्ति तो प्राप्त हुई है और प्राप्त होने वाली वस्तु सदा नित्य कैसे हो सकती है ? जब कभी प्रलय के पश्चात् पुनः सृष्टि का निर्माण होगा, फिर यह अहंकार आत्मा को और चित्त को पकड़ कर बैठ जायेगा और फिर आत्मा को भोग देने की व्यवस्था या बांधने की व्यवस्था चलायेगा। फिर इसी तरह बन्ध और मोक्ष का क्रम चलता रहेगा।

यह उपनिषद् का मन्त्र प्रमाण रूप से क्या कहता है ? इससे तो मोक्ष से पुनः आगमन नहीं होना चाहिये। मन्त्र है— 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते च अस्य कर्माणि तस्मिम् दृष्टे परावरे ।।' मुक्ति प्राप्त होने पर हृदय के कर्मों की सब गाठें खुलकर या भेदन होकर नष्ट हो जाती हैं। और सर्व प्रकार के संशय भी विनाश भाव को प्राप्त हो जाते हैं। इसके सब कर्म भी नष्ट या क्षय हो जाते हैं। उस परावर आत्मा के दर्शन या मोक्ष हो जाने पर हृदय की अविद्या भी नष्ट हो जाती है। अविद्या कर्मों का मूल कारण थी, अब कर्म भी नष्ट हो गये।

द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति सदा के लिए तो नहीं होनी चाहिये, क्योंकि पहले भी तो बन्ध था। मोक्ष तो अब प्राप्त हुआ है। उत्पन्न होने वाली मुक्ति कैसे नित्य हो सकती है ? इस प्रकार की मुक्ति तो प्रलय काल में सर्व प्राणियों की हो जाती है, क्योंकि भोगों का साधन शरीर इन्द्रिय अन्तःकरण भी विनाश भाव को प्राप्त होकर कारण रूप प्रकृति में चले जाते हैं, अपनी जीर्णता पुराणता को दूर करने और नवीन रूप में आने के लिए।

शंका—ब्रह्म के ज्ञान अथवा आत्मा के ज्ञान या बन्ध का कारण जो प्रकृति है उसके ज्ञान से मुक्ति होती है या एक किसी के ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है ?

समाधान—जब आप तीन पदार्थ मानते हैं तब तो तीनों के तत्त्व ज्ञान और फिर परम वैराग्य से मुक्ति होगी। यदि आप को ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न हुई है, तब तो उसका ज्ञान करना भी अत्यन्त आवश्यक है। तब ही मुक्ति होगी। यदि संसार के पदार्थ, जोकि प्रकृति से ही उत्पन्न हुए हैं, भोग और बन्ध का हेतु बने हुए हैं, तब तो उनके कारणकार्यात्मक पदार्थों का तत्त्व ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक होगा; और फिर उनसे वैराग्य भी करना जरूरी होगा। बिना वैराग्य के उनसे राग का अभाव नहीं होगा। उनके ज्ञान की जिज्ञासा और उनका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हैं। बिना इनके ज्ञान और वैराग्य के मोक्ष नहीं हो सकता।

फिर तीसरा आत्म-ज्ञान, अपने स्वरूप का अपना ज्ञान, कि मैं क्या हूं अपने स्वरूप का ज्ञान होना भी अत्यन्त आवश्यक है, कि मैं नित्य हूं या अनित्य हूं, एक देशी हूं या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वदेशी हूं, मेरा स्वरूप जड़ है या चेतन है। चेतन है तो मेरे और भगवान् के स्वरूप में क्या अन्तर है। यदि अन्तर है तो कैसा और क्या अन्तर मेरे स्वरूप और ब्रह्म के स्वरूप में है। जब एक समानता है तब भेद क्यों। मेरे समान और भी प्राणी हैं, क्या चेतन अनेक हैं और वे सावयव हैं या निरवयव हैं। सावयव हैं तो परिणामी और अनित्य हो जायेंगे और चित्त की तरह होंगे। निरवयव हूं तो निरवयव अनेक नहीं हो सकते। एक ही पदार्थ निरवयव निष्क्रिय विभु सर्वव्यापक सब से सूक्ष्म अनन्त होना चाहिये। अतः चेतन में अनेकत्व सिद्ध नहीं होता है। इत्यादि अनेक शंकाएं जीवात्मा के विषय में उपस्थित होती हैं, जिनका कोई समाधान नहीं मिलता है। अतः तीनों पदार्थों का, ब्रह्म आत्मा प्रकृति का, ज्ञान होना चाहिये। तब ही मुक्ति प्राप्त होगी। एक और भी मोक्ष प्राप्ति का सरल समीप छोटा सा मार्ग है। सर्व पदार्थों से परम वैराग्य हो जाये, बन्ध और मोक्ष की भावना खत्म हो जाये, कोई भी इच्छा कामना न रहे, सर्व कामनाएं पूर्ण हो जायें। आत्मा तो है ही ज्ञान स्वरूप और परमात्मा भी ज्ञान स्वरूप है। प्रकृति के सर्व कार्य-कारण से परम वैराग्य हो जाये। इनके ज्ञान की जिज्ञासा भी समाप्त हो जाये। तब भी मोक्ष प्राप्त हो जायेगा।

अब हम प्रकृति से उत्पन्न होकर चित्त और इसकी परिणत होती हुई अवस्थाओं का सात्विक राजस तामस भेद से जो कि व्यष्टि रूप में आत्मा के साथ सम्बन्ध चला आ रहा है उनमें आत्म-साक्षात्कार के साधन बताते हैं, जो कि मन्त्र और शब्द के द्वारा होते हैं।

युञ्जान योगी जब अहंकार के मण्डल में इसके द्वारा आत्म-साक्षात्कार करके इसके मण्डल को उल्लंघन करके हृदय प्रदेश में चित्त के मण्डल में प्रवेश करता है तब नील वर्ण की ज्योति दिव्य ज्योति को उल्लंघन करके सामने श्वेत वर्ण की स्वच्छ दिव्य निर्मल ज्योति के दर्शन होते हैं। उसे योगी अपनी समाधि का विषय बनाता है। यह दिव्य ज्योति सात्त्विक राजस तामस भेद में प्रकट होती है। क्या यह अवस्था त्रिगुणात्मक पहले से विभक्त होकर ठहरी हुई है अथवा समय-समय पर परिवर्तन होकर आती रहती है? यह कारण रूप से ठहरी भी हुई है और क्रमपूर्वक इसमें परिणाम होकर भी आती रहती है। अर्थात् चित्त के तीनों गुणों में परिणाम होते रहते हैं।

यदि कुछ तम वर्ण से युक्त हो तो उषा काल के प्रकाश के समान आलोक होता है या सामने आता है। उस आलोक में चित्त प्रदेश में अनेक प्रकार की तरङ्गें उठकर सामने भासने लगती हैं। योगी अपने मनोबल से चित्त को शान्त करने का यत्न प्रारंभ कर देता है। कुछ काल के अभ्यास से चित्त के संस्कार दब कर ओझल से हो जाते हैं और चित्त निस्तरङ्ग सा होकर शान्त हो जाता है। तब आत्मा के सन्निधान से चित्त में प्राण कम्पन करते हुए या गतिशील देखने में आता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके पश्चात् केवल शान्त विशुद्ध सत्त्व प्रधान चित्त देखने में आता है। इसमें भी और सूक्ष्म सी गति देखने में आती है। इसमें आत्मा चेतन सत्ता व्याप्त रूप में प्रतीत होने लगती है, क्योंकि चित्त की अपेक्षा आत्मा सूक्ष्म होता है। यह एक अनिवर्चनीय रूप दर्शन या अवस्था होती है। उन सूक्ष्म कम्पनों में कभी आत्मा तरङ्गित होता ऊपर उठता हुआ दर्शन और ज्ञान का हेतु बन जाता है, कभी तरङ्गों में छिप जाता है, कभी एक क्षण में दर्शन हो जाता है। अर्थात् एक क्षण में तिरोहित और एक क्षण में प्रत्यक्ष रूप में देखने में आता है। जैसे मैं दर्पण पर अपने मुख को देखता हूं तद्वत् प्रत्यक्ष रूप में अपने स्वरूप को चित्त रूप दर्पण पर देखता है जैसे कोई तालाव या मधुर पानी की झील के अन्दर गोता लगा कर बाहर निकलता है और दम लेकर शान्ति और आनन्द का अनुभव करता है। यह अवस्था योगी की होती है।

रजःप्रधान चित्त में इसी प्रकार योगी जब समाधिस्थ होता है तब अत्यन्त श्वेत वर्ण का प्रकाश, चकाचौंध सी लिये हुए, चित्त में विशेष तरङ्गें उत्पन्न करता है। उनमें आत्मा भी अत्यन्त देदीप्यमान हो जाता है। उसे देखकर समाधि की दिव्य दृष्टि भी चकाचौंध सी हो जाती है। उस काल में आह्लाद हर्ष आनन्द विशेष प्रधान रूप में होने लगता है, जैसे मध्याह्न काल के सूर्य के आलोक में दर्पण में अपने मुख को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता और बहुत हर्ष तथा आनन्द प्राप्त होता है। अपने रूप की सुन्दरता को देखकर जाज्वल्यमान आनन्द के समुद्र में गोते पुनः-पुनः ही लगते रहते हैं।

इसके उपरान्त योगी चित्त को तमः अवस्था में आत्म साक्षात्कार के लिए क्रमपूर्वक प्रवेश करता है। तब चित्त में उषा काल के प्रकाश के समान दिव्य आलोक कुछ श्वेत फीका सा कुछ धुंधले से वर्ण का प्रकाश सामने आता है। तब इस तमः चित्त में अपने स्वरूप को देखकर योगी कुछ मुग्ध सा हो जाता है। 'तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्' सी अवस्था हो जाती है और कुछ सुधबुध नहीं रहती।

शंका—क्या इन चित्तों की तीनों अवस्थाओं में केवल स्वरूप दर्शन ही होता है, अथवा ब्रह्म दर्शन भी होता है?

समाधान—जब योगी चित्त की सत्त्व प्रधान अवस्था में ऋतंभरा बुद्धि के द्वारा ऋतंभरा इसलिए कहा कि चित्त की सत्व प्रधान अवस्था में ऋतंभरा से योगी काम लेता है, और रजःप्रधान अवस्था में प्रज्ञालोक बुद्धि से काम लेकर आत्मदर्शन करता है। और तमःप्रधान अवस्था में विशोका ज्योतिष्मति बुद्धि द्वारा आत्म-साक्षात्कार करता है। अतः सत्त्व प्रधान अवस्था को लक्ष्य बनाकर चित्त के प्रदेश में आत्म-ज्ञान करते हुए तद्वत् ब्रह्म को भी लक्ष्म बनाता है। ब्रह्म की व्याप्ति को आत्मा के साथ मिली हुई अपने आपको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखता है। केवल चित्त की भित्ति को पार करने वाली बात होती है वरन् चित्त के अन्दर और बाहर एक ही समान चेतन सत्ता सर्वत्र अन्दर और बाहर देखने में आती है।

इस काल में अत्यन्त प्रधान सत्व चित्त हिम से भी श्वेत वर्ण के मण्डल में प्रवेश करके क्या देखता है कि इस संसार में इतना स्वच्छ साफ सुथरा धवल वर्ण का प्रकाश और अपना तथा भगवान् का स्वरूप एकीभाव को प्राप्त हो गये हैं। इतना धवल वर्ण का प्रकाश कभी जीवन में देखा नहीं, जैसे कई सूर्य के प्रकाश मिलकर एक ही सर्वव्यापक आत्मा को प्रकाशित कर रहे हैं। इस समय आत्मा और परमात्मा के भेद की समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार की चित्त की सात्त्विक विशुद्ध चकाचौंध समाधि में आश्चर्य सा कर देती है, क्योंकि इतना स्वच्छ प्रकाशयुक्त चित्त कभी देखने में नहीं आया था जिसने आत्मा परमात्मा के भेद की दीवार को ही आत्मवत् ब्रह्मवत् सा बना दिया है। यहां ब्रह्म या आत्मा 'रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव' हो जाते हैं और सर्व प्रकार के भेद समाप्त हो जाते हैं।

इस व्यष्टि चित्त का सम्बन्ध समष्टि चित्त से होता है और इस व्यष्टि आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से होता है। व्यष्टि चित्त और समष्टि चित्त एवं व्यष्टि आत्मा और समष्टि आत्मा का भेद अविद्या या भ्रान्ति अथवा अज्ञान से समझ रहा था। यहां पहुंचकर भ्रान्ति दूर हो जाती है। केवल दो ही सत्ता एक जड़ समष्टि चित्त और दूसरी चेतन सत्ता सर्वव्यापक आत्मा ब्रह्म में कोई भेद या अन्तर देखने में नहीं आता है। चित्त विशिष्ट आत्मा में भी यह भ्रान्ति होती है जो कि चित्त के धर्मों को आत्मा में आरोप करता है। और समष्टि चित्त या प्रकृति और ब्रह्म में भी यही भ्रान्ति होती है कि प्रकृति के धर्मों को परमात्मा में आरोप करता रहता है।

कारण शरीर में अहंकार और चित्त के द्वारा जब योगी आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है तब इसके पश्चात् समष्टि १४ पदार्थ सृष्टि साक्षात्कार करने के लिये शेष रह जाते हैं। इनका साक्षात्कार का क्रमपूर्वक वर्णन करेंगे। यह यहां से ऊपर ब्राह्मी सृष्टि होगी।

हम नीचे से ऊपर की ओर अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म की ओर विज्ञान प्राप्त करने का क्रम लिखेंगे। समष्टि १४ पदार्थ इस क्रम से हैं—

१. समष्टि अहंकार, २. समष्टि बुद्धि, ३. समष्टि चित्त, ४. समष्टि महत्तम, ५. समष्टि महत् रज, ६. समष्टि महत् सत्त्व, ७. समष्टि दिशा, ८. समष्टि काल, ९. समष्टि आकाश, १०. समष्टि बल या स्थिति, ११. समष्टि प्राण, १२. समष्टि शब्द, १३. समष्टि प्रकृति, १४. समष्टि ब्रह्म। योगी को इन १४ प्रकार के पदार्थों का ऋतंभरा बुद्धि अथवा धर्ममेघ समाधि से साक्षात्कार करना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

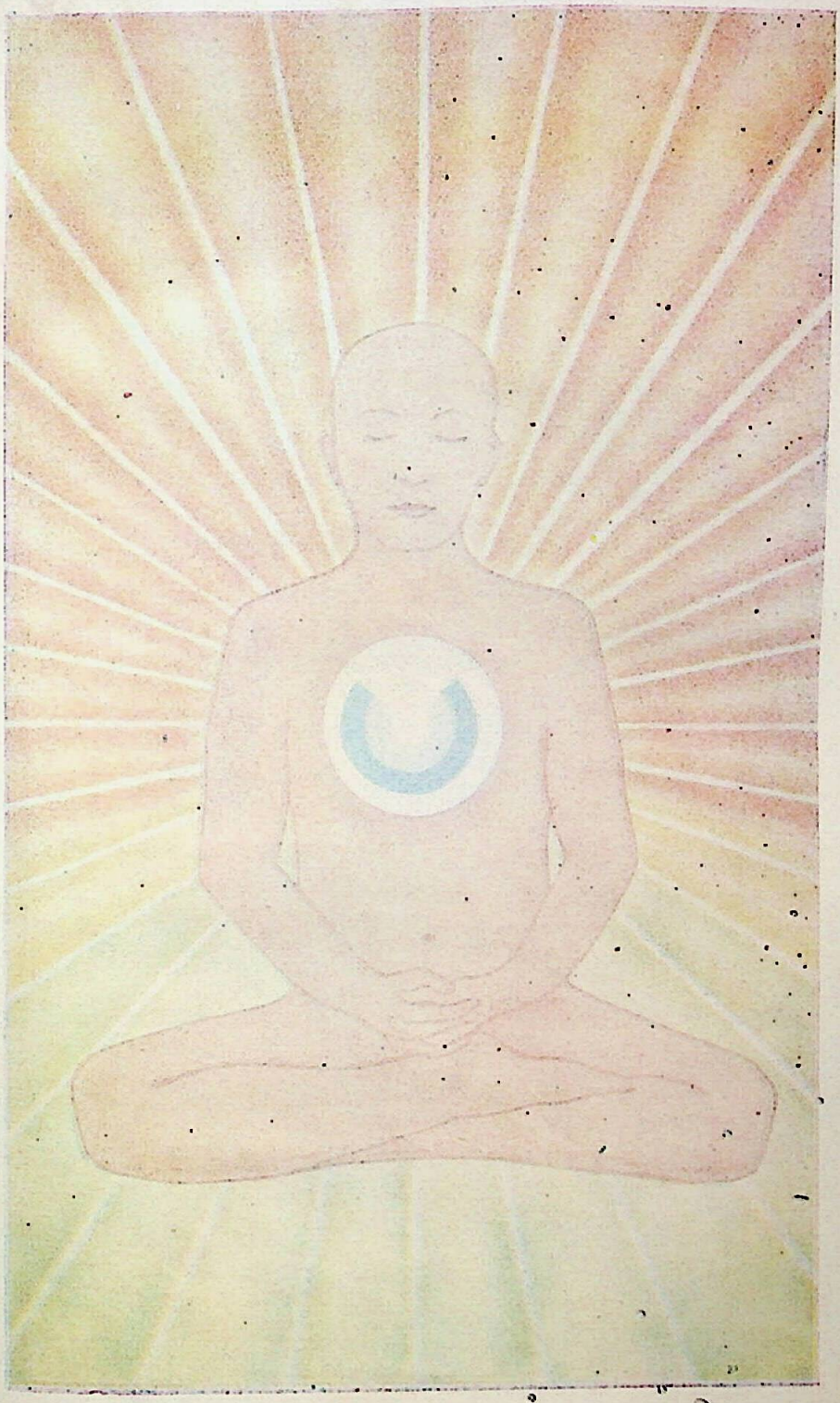

चित्र संख्या ५

अहंकार मण्डल को भेदन करके चित्त में आत्मा और परमात्मा के अभेद का दर्शन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

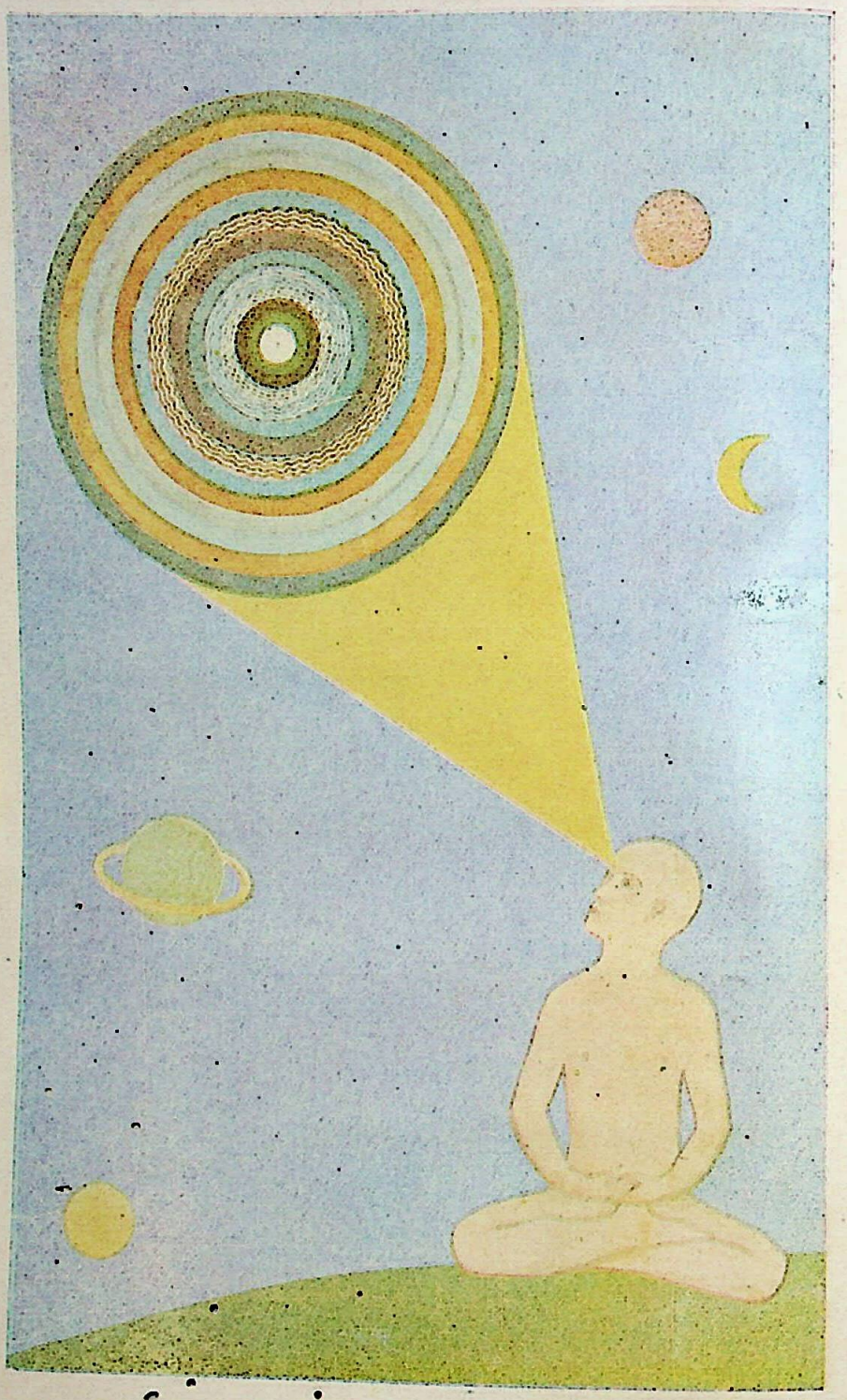

चित्र संख्या ६

ब्राह्मी सृष्टि के १४ पदार्थों का वर्णन—बारह पदार्थ समष्टि कार्यात्मक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनमें १२ पदार्थ महाकारण शरीर में गिने जाते हैं। प्रकृति और ब्रह्म को छोड़कर शेष ये कार्यात्मक समष्टि पदार्थ होते हैं। इनमें जीवात्मा की कोई बात ही नहीं है। केवल ब्रह्म के सन्निधान में रहकर प्रकृति इनका सृजन करती है और ब्राह्मी सृष्टि कहलाती है। ये १२ पदार्थ ब्रह्म के संयोग से उत्पन्न होते चलते हैं स्थूलता की ओर को, अतः ये सब व्यष्टि भाव को प्राप्त होकर स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के उपादान कारण होते हैं। इनसे ही कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर उत्पन्न होकर जैवी सृष्टि के रूप में आगे को चलती है। यह प्रकृति क्रमपूर्वक सूक्ष्म से स्थूल रूप में चलती है, भोग प्रदान करने के लिए।

नीचे से इसके विज्ञान का क्रम योगी के लिए इस प्रकार है। जब योगी समष्टि पदार्थों को अपनी समाधि का विषय ज्ञान प्राप्त करने के लिए बनाता है। तब सर्वप्रथम अहंकार का मण्डल सात्त्विक राजस तामस भेद से तत्त्व ज्ञान का विषय बनता है। क्योंकि आहंकारिक सृष्टि तमःप्रधान अहंकार पर समष्टि की समाप्ति होती है इसलिए प्रथम तमःप्रधान अहंकार को ही अपने विज्ञान का विषय बनावेंगे। इस तमःप्रधान अहंकार से पंच तन्मात्राओं को उत्पन्न किया जिनको सूक्ष्म भूत कहते हैं, जो स्थूल भूतों का उपादान बनी।

जब योगी सामष्टि तमःप्रधान अहंकार को अपनी समाधि का विषय बनाकर प्रणव शब्द को उच्चारण करता है तब उसमें जो ओ३म् रूप से ब्रह्म व्यापक है वह भी कम्पायमान होकर गतिशील सा हो जाता है। तब तमःप्रधान अहंकार और उसमें व्यापक ब्रह्म की सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में नील वर्ण के रूप में अनुभूति होने लगती है। अर्थात् नील वर्ण रूप ब्रह्म के दर्शन योगी को होने लगते हैं। उस समय योगी की दृष्टि विभु सी समाधि में होती है। इस तमःप्रधान अहंकार में कुछ जड़ता सी अधिक होती है सत्त्व रजः अहंकार

चित्र संख्या ६—इस चित्र में महाकारण शरीर के अथवा ब्राह्मी सृष्टि में समष्टि सृष्टि के १५ पदार्थों का वर्णन किया है। १२ समष्टि पदार्थ प्रकृति के कार्य हैं और इनका उपादान कारण समष्टि प्रकृति है और निमित्त कारण सन्निधान से ब्रह्म है। ये १२ पदार्थ व्यष्टि पदार्थों को सृजन करके सात्त्विक राजस तामस भेद से कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर तथा पंच सूक्ष्म भूतों और स्थूल भूतों का सृजन करके कारण-कार्य-आत्मक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड या संचार की रचना करेंगे। ये पदार्थ हैं समष्टि अहंकार, समष्टि बुद्धि, समष्टि चित्त, समष्टि तमःप्रधान महत्तत्व, समष्टि रजःप्रधान महत्तत्व, समष्टि सत्व प्रधान महत्तत्व, समष्टि दिशा, समष्टि काल, समष्टि आकाश, समष्टि प्राण, समष्टि शब्द। ये सात्त्विक राजस तामस भेद से ३६ प्रकार के होते हैं। इनका उपादान कारण प्रकृति और निमित्त कारण भगवान् या ब्रह्म होता है। प्रकृति भी त्रिगुणात्मक ज्ञान बल क्रिया है, अतः ये सब ४० हो जाते हैं। इन ४० पदार्थों का समष्टि ब्रह्माण्ड है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की अपेक्षा, अतः ब्रह्म तद्रूप नील वर्ण में भासने लगता है। यहां ब्रह्म भेद और अभेद रूप में भासने लगता है। ब्रह्म भी 'रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव' हो जाता है। अब योगी ने इसके तीनों रूपों में ब्रह्म-साक्षात्कार क्रमपूर्वक करना है। त्रिगुणात्मक अहंकार होने से ब्रह्म भी त्रिगुणात्मक भासने लगता है।

इसके आगे समष्टि रजःप्रधान अहंकार को योगी अपनी समाधि का विषय बनाकर ब्रह्म दर्शन इसमें करेगा। यह रजःप्रधान अहंकार समष्टि कर्मेन्द्रियों का उपादान कारण बना, समस्त जगत् के प्राणियों की कर्मेन्द्रियों को इसने ही उत्पन्न किया और इसने सत्व प्रधान अहंकार के साथ में मिलकर सम्पूर्ण जगत् के मनों को उत्पन्न किया।

जब योगी समष्टि रजःप्रधान अहंकार को अपनी समाधि का विषय आकाश मण्डल में बनाता है, तब उसमें ओंकार नाम से ऊर्ध्व ध्वनि उत्पन्न करता है। उस सूक्ष्म ऊर्ध्व ध्वनि से अहंकार और ब्रह्म के मध्य में सूक्ष्म रूप में कम्पन या हलचल सी पैदा हो जाती है, भले ही इन दोनों का एक देश में वह कम्पन हो, क्योंकि शब्द एक देश में छोटा सा पुनः-पुनः उत्पन्न हो रहा होता है। अतः गुण और रूप के भेद से ब्रह्म में भी भेद सा उत्पन्न होकर नील वर्ण में दर्शन होने लगता है। ब्रह्म के रूप का कोई रङ्ग नहीं, परन्तु जिस पदार्थ में उसे देखना चाहते हैं उस पदार्थ के ही रूप का भासने लगता है, जैसे अयस्कान्त मणि भासने लगती है। यही विशेषता ब्रह्म में भी है। 'रूपं रूप प्रतिरूपो बभूव' हो जाता है। ज्ञातज्ञेय योगी को तो उसको देखकर भ्रान्ति नहीं होती है, क्योंकि उसने इसके यथार्थ रूप को देखा समझा है। इतर योगियों को भ्रान्ति हो जाती है। यही अहंकार कर्मेन्द्रियों का उपादान कारण बना है और सत्व अहंकार के साथ मिलकर समभाग रहकर मन का भी कारण बना है। इसी कारण से मन ज्ञान और कर्मेन्द्रियों से कार्य लेने कराने सदा समर्थ रहता है।

सत्व प्रधान समष्टि अहंकार का उपादान कारण तमःप्रधान महत् या महत्तत्त्व है। इस सत्व अहंकार का कार्य ज्ञानेन्द्रिय और रजः के साथ मिलकर मन को भी उत्पन्न करना है, इसीलिए इसे उभयात्मक इन्द्रियों के प्रति कहा है। इस सत्व प्रधान अहंकार समष्टि को जब योगी प्रणव के द्वारा साक्षात्कार करने के लिए समाधि में ज्ञान का विषय बनाता है तब प्रणव ब्रह्म और समष्टि अहंकार के प्रदेश में शब्द में दोनों के बीच उस देश में गति सी कर देता है। इससे सूक्ष्म रूप में उस देश में दोनों में गति सी होने लगती है। अथवा प्रणव ओ३म् का अर्थ के साथ सम्बन्ध होकर ब्रह्म रूप अर्थ का दर्शन नील श्वेत मिश्रित रूप में अनुभव होने लगता है। सर्वव्यापक चेतन के साथ सम्बन्ध होने से, क्योंकि ब्रह्म चेतन है, और सत्त्व प्रधान समष्टि रूप में जड़ होने से इसमें भी हर समय गति या क्रिया बनी रहती है। जहां-जहां जड़ के साथ सम्बन्ध चेतन का है वहां-वहां वह जड़ पदार्थ सदा क्रियाशील बना ही रहता है। अतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में समष्टि अहंकार से क्रिया बनी रहती है, एक क्षण भी इसमें कर्म का अभाव नहीं होता है। यहां समष्टि सत्त्व प्रधान अहंकार में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वत्र ब्रह्म की व्यापकता देखने में आती है। एक देश में एक देशी प्रणव के द्वारा एक देश के अहंकार में ब्रह्म का अनुभव होने से शेष का अनुमान कर लेने में से भी सम्पूर्ण में ब्रह्मज्ञान का भान या साक्षात्कार योगी समझ लेता है। यदि अहंकार में विभु सी ध्यान की दृष्टि योगी डालता है तो वेअन्त ब्रह्म का ज्ञान होने लगता है।

समष्टि बुद्धि के मण्डल में इसका तत्त्व ज्ञान करने के लिए और इसमें ब्रह्म की व्यप्ति को जानने के लिए जब योगी समाधि में प्रवेश करता है तब यह समष्टि बुद्धि के पूर्वापर पदार्थों की ओर देखता है। समष्टि बुद्धि का प्रादुर्भाव समष्टि अहंकार से पूर्व और समष्टि चित्त के पश्चात् हुआ था। समष्टि चित्त के पश्चात् क्रमपूर्वक समष्टि बुद्धि की त्रिगुणात्मक उत्पत्ति होती है। समष्टि बुद्धि केवल व्यष्टि बुद्धियों को उत्पन्न करके शान्त हो गयी, आगे इसकी सृष्टि नहीं चली। इसके पश्चात् अहंकार की ही सृष्टि चली। इस अहंकार ने त्रिगुणात्मक होकर सारे स्थूल ब्रह्माण्ड को अपने कार्यों द्वारा निर्माण किया। समष्टि बुद्धि ने केवल व्यष्टि बुद्धियों का ही निर्माण किया, आगे इसका कोई कार्यात्मक पदार्थ उत्पन्न नही हुआ जिसने आगे अपने कार्यात्मक पदार्थों अर्थात् स्थूल पदार्थों की परम्परा चलायी हो, अहंकार की तरह। बुद्धि ने ज्ञानात्मक अपनी वृत्तियों का विस्तार किया। अन्य कार्यात्मक पदार्थों को उत्पन्न नहीं किया। केवल व्यष्टि बुद्धियों द्वारा ज्ञान की परम्परा ही चली और ज्ञान का बहुत विस्तार किया गया। यह कार्यात्मक पदार्थों के ज्ञान रूप संस्कारों को अपने गर्भ में धारण करके बैठ गयी, जो ज्ञानात्मक संस्कार सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण हैं। इसके ज्ञान से ज्ञान की उत्पत्ति और ज्ञान की परम्परा चली। यदि आप ज्ञान को भी पदार्थ मान लें तब ज्ञानात्मक ज्ञानों की परम्परा कह सकते हो।

तब आप को दो प्रकार की सृष्टि माननी होगी। एक कर्मात्मक, परन्तु कर्म से पदार्थ भी भिन्न ही रहता है। और यह कर्म भी पदार्थ का बीज ही मानना होगा। जैसे पदार्थ अन्धा है; कर्म भी अन्धा है। इसे भी ज्ञान रूपी चक्षुओं की आवश्यकता सदा रहती है। ये कर्म और ज्ञान पदार्थ भिन्न और अभिन्न रूप में रहते हैं। ये दोनों जड़ और चेतन के आश्रय रहकर अपना कार्य करते हैं, क्योंकि जड़ और चेतन का सम्बन्ध सदा रहता है। अतः इनके अन्दर ज्ञान और कर्म सदा भेदाभेद रूप में ही रहेंगे।

शंका—क्या पदार्थ से भिन्न इनका अपना पदार्थ रूप में कोई अस्तित्व है ?

समाधान--वास्तव में कर्म ज्ञान की उत्पत्ति परिणामात्मक जड़ प्रकृति से ही माननी होगी, क्योंकि चलन रूप गुण या धर्म इसमें ही देखने में आते हैं। चेतन इन धर्मों से रहित है। अतः ये चेतन के धर्म कर्म गुण तो हो नहीं सकते, क्योंकि चेतन में परिणाम गुण धर्म नहीं है। जो भी पदार्थ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता है उसमें ये धर्म गुण होने चाहियें। वह सिवाय कारण-कार्यात्मक प्रकृति के और कोई देखने में नहीं आता है। यही एक वसुंधरा माया इस दृश्यमान जगत् का उपादान कारण देखने में आती है। इसी में और इसके कार्यों में ये ज्ञान कर्म देखने में आते हैं। परन्तु सन्निधान या संयोग सर्वव्यापक चेतन निर्गुण निरवयवय निष्क्रिय का ही मानना होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम वर्णन कर रहे थे समष्टि बुद्धि का। इसका उपादान कारण रजःप्रधान महत्तत्त्व है और कार्य है समस्त प्राणियों की बुद्धियां जो कि अनन्त हैं। इनकी आगे स्थूल पदार्थ रूप में कोई सन्तति नहीं चली। चित्त की तरह चित्त भी ज्ञानात्मक है। यदि इसकी भी परम्परा ज्ञान को ही मानें तब सब संसार में जितने भी पदार्थ हैं सब ज्ञानात्मक ही हैं। ज्ञान और कर्म सब पदार्थों में सूक्ष्म रूप में मूल कारण ही देखने में आते हैं। यदि ज्ञान है तो पदार्थ भी और कर्म है तो पदार्थ भी है। परन्तु कर्म और ज्ञान का स्थूल रूप देखने में नहीं आता। ये स्वयं अत्यन्त सूक्ष्म रूप वाले हैं। जड़ और चेतन का व्याख्यान या विस्तार ये ही करते हैं। ये ही स्वरूप प्रकाशक द्योतक रूप प्रकट करने वाले हैं। अब आगे विस्तार-पूर्वक समष्टि बुद्धि का सात्त्विक राजस तामस रूप में कथन करेंगे और इसके द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन करेंगे।

तमःप्रधान समष्टि बुद्धि में ब्रह्म की व्याप्ति का अनुभव

सर्वप्रथम योगी को व्यष्टि बुद्धि का, जब यह तमःप्रधान अवस्था में हो, ज्ञान करना चाहिये, क्योंकि इसका सम्बन्ध अपने उपादान कारण समष्टि बुद्धि से रहता है। इसके द्वारा जो ज्ञान होगा वह कुछ धुन्धलेपन को लिये हुए होगा। इसके साथ समष्टि बुद्धि भी होती है, कार्य के साथ कारण का सम्बन्ध रहता है। अतः कार्य से कारण में प्रवेश करना आसान होता है। प्रणव के उच्चारण द्वारा समष्टि बुद्धि में प्रवेश करके उसमें जो गति और कम्पन हो रहा है उसमें ब्रह्म की व्यापकता को देखना चाहिये। इस अवसर में ब्रह्म में भी कुछ धुंधला सा आवरण पड़ जाता है, पीत वर्ण का प्रतीत होने लगता है। विज्ञान के क्रम से केवल बुद्धि और समष्टि बुद्धि के रंग रूप में और कर्म ज्ञान में अन्तर देखने में आता है। ब्रह्म भी इनकी अवस्थाओं में तत् तत् रूप दीखने लगता है। परन्तु उसमें परिवर्तन या परिणाम कुछ नहीं होता है।

रजःप्रधान समष्टि बुद्धि के कर्म और व्यापार में ब्रह्म साक्षात्कार

यह व्यष्टि बुद्धियों के निर्माण में सहायक होती है। इसमें भोगों की प्रधानता है, मनुष्य के लिए और इतर प्राणियों के लिए। सत्त्व और तम गौण रहते हैं। इसमें पहले व्यष्टि बुद्धि को लक्ष्य बनावें और प्रणव का दीर्घ उच्चारण करके बुद्धि में गति उत्पन्न करें। इसके साथ ही समष्टि बुद्धि भी होती है, वह भी गति और कम्पन करने लगती है। इसको सर्वव्यापक ब्रह्म के प्रति माध्यम बना कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक सी दृष्टि डालकर इसमें ब्रह्म का साक्षात्कार करें। उस काल में ब्रह्म की रजोगुण प्रधान सा भ्रान्ति से प्रतीत होने लगता है, क्योंकि उसमें तद्रूप की विशेषता है। हम स्थूलों से सूक्ष्मों की ओर ज्ञान करते हुए चल रहे हैं और ब्राह्मी सृष्टि का प्रत्यक्ष करते जा रहे हैं। इसमें योगी को सर्वत्र ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, वह करना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्त्वःप्रधान समष्टि बुद्धि में ब्रह्म का साक्षात्कार

जब योगी सत्त्वप्रधान समष्टि बुद्धि को माध्यम बनाकर प्रणव जाप प्रारंभ करता है और इसके द्वारा ब्रह्मज्ञान करना चाहता है तब ब्रह्मरन्ध्र के प्रवेश में प्रणव को लेकर समष्टि बुद्धि के मण्डल में, जो कि व्यष्टि बुद्धि के साथ में लगता है, ओ३म् शब्द के उच्चारण से प्रथम गति व्यष्टि बुद्धि में होकर समष्टि बुद्धि में भी हो जाती है। तब समष्टि में कर्म और ज्ञान उत्पन्न होकर ब्रह्म में भी हलचल सी कर देते हैं। सूक्ष्म और हलका होने मे उसके ऊपर अन्दर और बाहर तरङ्गों के रूप में उभर-उभर कर ऊपर आने लगता है, तब दर्शन हो जाता है। जैसे पहले पदार्थों में उसका अनुभव हुआ था तद्रूप में प्रत्यक्ष होने लगता है, निर्भ्रान्त सात्त्विक शुक्ल पीत रूप में भासने लगता है। इस दर्शन से योगी को अलौकिक शान्ति और आनन्द भासने लगता है। इसके दर्शन के पश्चात् योगी समष्टि चित्त मण्डल में, जो कि ब्राह्मी सृष्टि में ११वां मण्डल है उसमें तत्त्व ज्ञान और ब्रह्म साक्षात्कार के लिए प्रवेश करता है।

समष्टि चित्त मण्डल में सात्त्विक राजस तामस भेद से ब्रह्म साक्षात्कार

समष्टि चित्त मण्डल कारण शरीर का उपादान कारण है और व्यष्टि चित्त का भी उपादान कारण है। इस चित्त ने आत्मा को अपने गर्भ में धारण किया हुआ है। इस व्यष्टि चित्त ने जीवात्मा को परमात्मा से अलग साबित कर दिया। ब्रह्म को भी एक देश में बांध कर रख दिया। अर्थात् ब्रह्म ही जीव भाव को प्राप्त होकर एक देश में बंध कर बैठ गया, भोग भोगने और बंध मोक्ष का निर्माण करने के लिए। यदि यह व्यष्टि चित्त न होता तो ब्रह्म को यह कलंक भी न लगता, जीवात्मा तथा जगत् की यह परम्परा भी न चलती।

प्रकृति परिणामिनी है, कभी खड़ी नहीं होती, सदा चलती रहती है। ब्रह्म को भी इसने अपने जाल में फंसाया हुआ है। कारण रूप अवस्था में भी और कार्य रूप अवस्था में बांधा हुआ है। समष्टि रूप से भी और व्यष्टि रूप में भी, एक प्रकार से अपने गर्भ में धारण करके बैठी है। टस से मस नहीं होने देती है। इस माया के जाल से ब्रह्म कभी छूट या निकल भी न सका, और भविष्य में भी नहीं छूटेगा।

इस माया में बल भी बड़ा है और शक्ति भी बहुत है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करके बैठी है। परन्तु इसकी ये सब चेष्टाएं उछलकूद कर्म और व्यापार अज्ञान और ज्ञान इस ब्रह्म या भगवान् के आश्रय पर ही हैं। इसके बिना यह लङ्गड़ी अन्धी है। इस ब्रह्म ने इसे अपने सिर पर उठाकर संसार रूप सफर या मंजिल पूरी करनी है। दोनों एक दूसरे के आश्रय पर हैं। बिना एक दूसरे के किसी की कोई सत्ता या हस्ती ही नहीं, और ताकत (बल) गति कर्म ज्ञानादि कुछ भी नहीं। बिना ब्रह्म के यह वन्ध्या के समान है, और बिना माया के ब्रह्म भी नपुन्सक है। वैसे ब्रह्म शब्द है भी नपुन्सक लिङ्ग, व्याकरण से। इसमें पुरुषत्व माया या प्रकृति के संयोग से ही आता है। पुरुष का अर्थ पुरि शेते इति पुरुषः। पुर संसार को कहते हैं। संसार में ब्रह्म या पुरुष सोया हुआ है। पुर शरीर को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी कहते हैं। शरीर में ब्रह्म जीवत्व भाव को प्राप्त होकर ठहरा हुआ है, इसलिए इसे भी पुरुष नाम से पुकारते हैं। संसार में रहकर ईश्वरत्व भाव को प्राप्त हो गया। संसार या ब्रह्माण्ड में रहकर परमात्मा भाव को प्राप्त हो गया है।

हम समष्टि चित्त में ब्रह्म के साक्षात्कार का वर्णन कर रहे थे। समष्टि चित्त भी सात्त्विक राजस तामस भाव को प्राप्त होकर संसार की रचना करता है। या व्यष्टि चित्तों की रचना करके आत्मा को धारण करने के लिए करता है। इन व्यष्टि चित्तों की परम्परा आगे नहीं चलती न कार्य-कारण भाव में आगे परिणाम होता है। अतः समष्टि चित्तों की सन्तति व्यष्टि चित्तों पर समाप्त होकर केवल वृत्तियों या ज्ञान के रूप में चलती है।

सत्त्व प्रधान समष्टि चित्त मनुष्यों के चित्तों का निर्माण करता है और रजःप्रधान समष्टि चित्त पशु पक्षियों बनचरों आदि के चित्तों का निर्माण करता है और तमःप्रधान समष्टि चित्त भूमि से उत्पन्न होने वाले उद्भिद् जन्तुओं और जल में उत्पन्न होने वाले जलचरों मत्स्य मकर मैंडक केकड़े आदि के व्यष्टि चित्तों को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार बुद्धि और समष्टि अहंकार भी उपर्युक्त चित्तों के समान राजस तामस व्यष्टि बुद्धि और व्यष्टि अहंकारों को उत्पन्न करके संसार के प्राणियों का निर्माण करते हैं। इन चित्तों की आगे सृष्टि नहीं चली, केवल वृत्ति संस्कार और ज्ञान के रूप में सन्तति चली।

समष्टि तमःप्रधान चित्त के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

जब योगी इसको लक्ष्य बनाकर इसके द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, यह भी ज्ञानात्मक होने से इसमें भी ब्रह्म का समष्टि रूप में ज्ञान भान होता है। परन्तु इसके ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान में अन्तर होता है। ब्रह्म केवल विशेष रूप से ज्ञान स्वरूप स्वाभाविक है। परन्तु समष्टि चित्त ब्रह्म के संयोग से बिम्ब-बिम्बी भाव को प्राप्त होकर ज्ञान बना है, इसमें ज्ञान रूप प्रज्वलन क्रिया हुई है। और ब्रह्म नित्य स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप स्वतः सिद्ध है। चित्त की तरह ब्रह्मज्ञान विशेष उपयोग में नहीं आता, क्योंकि इसमें गति क्रिया धर्म चित्त की तरह से नहीं हैं। ब्रह्मज्ञान और इसके ज्ञान में यही अन्तर है कि चित्त का ज्ञान एकदेशी और ब्रह्म का ज्ञान सर्वदेशी, सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त है। इस तमःप्रधान समष्टि चित्त की प्रधानता उद्भिद् जलचरों में व्यष्टि रूप में होती है। इनके चित्त में यह प्रधान रहता है। सत्त्व रज तम गौण रहकर इन योनियों को भोग प्रदान करते हैं। ये इनके चित्त चेतन को धारण करने वाले प्रथम होते हैं और कारण शरीर का धारण करते हैं। कारण शरीर का होना इनमें भी आवश्यक है। सर्वव्यापक चेतन को ग्रहण करने वाला कारण शरीर ही होता है। केवल कारण शरीरों के भेद गुणों की प्रधानता के ही भेद होते हैं और भोगों का भी अन्तर प्राणियों में होता है।

इस तमःप्रधान समष्टि चित्त को भी योगी को, और इसमें भी ब्रह्म की व्यापकता का, अनुभव करना चाहिये।

शंका—क्या एक ही पदार्थ से ब्रह्म ज्ञान होकर सन्तोष नहीं हो सकता है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान—यदि एक ही चित्त में बिना गुण का विवेचन किये ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाए, उसमें सन्तोष हो जाए, तब संसार के अनन्त पदार्थों में देखने या खोज करने की जरूरत नहीं है। यह तो पदार्थों का विस्तार और उन सब में ब्रह्म को खोजने और देखने का ही विस्तार है। जिनको एक पदार्थ देखकर जानकर सन्तोष नहीं हुआ और 'तस्य विज्ञाते सर्वं विज्ञानं भवति' नहीं हुआ, उनके लिए इतने विस्तार से लिखने और ग्रन्थों में विशेष रूप से भिन्न-भिन्न प्रकार से अनेक दृष्टान्त उदाहरण देकर तथा प्रमाण देकर विस्तार से समझाने के लिए ब्रह्म की व्यापकता को प्रत्येक पदार्थ में दिखाने के लिए लिखा जाता है। अतः तमःप्रधान समष्टि चित्त में भी ब्रह्म की व्यापकता का अनुभव करना चाहिये। समष्टि चित्त के धर्म कर्म गुण व्यापार कृति को भी देखना चाहिये। इस तमःप्रधान व्यष्टि समष्टि चित्त के सर्व गुण धर्म और इनके सब कार्यों और व्यापारों में ब्रह्म की व्यापकता का साक्षात्कार करना चाहिये।

शंका—क्या समष्टि चित्त से व्यष्टि चित्तों की उत्पत्ति अब भी होती रहती है? जैसे स्थूल शरीरों की उत्पत्ति होती है?

समाधान—स्थूल शरीर की आयु कुछ मिनट घंटे दिन मास वर्ष होती है। कई सौ वर्ष भी हो सकती है। परन्तु इनको प्राणी उत्पन्न करते हैं। किन्तु सूक्ष्म शरीरों को तो ये उत्पन्न नहीं करते। जब सृष्टि का सृजन होता है क्रमपूर्वक, तब ही ब्राह्मी सृष्टि के समय भगवान् के सन्निधान से सूक्ष्म और कारण शरीर उत्पन्न होते हैं। अतः इनकी आयु करोड़ों वर्षों की माननी चाहिये। स्थूल शरीर की आयु सूक्ष्म से बहुत कम है। जब क्रमपूर्वक सृष्टि का संहार या प्रलय होगा तब सूक्ष्म कारण शरीरों का विनाश होगा।

रजःप्रधान समष्टि चित्त में शब्द या मन्त्र के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

जब योगी प्रणव को लेकर इसके द्वारा समष्टि चित्त और ब्रह्म को साक्षात्कार का विषय बनाता है तब इन दोनों में मन्त्र द्वारा दीर्घ स्वर से उच्चारण करने से क्षोभ या गति सी उत्पन्न हो जाती है। इससे ये देदीप्यमान से हो जाते हैं। समष्टि चित्त के गर्भ में ब्रह्म की व्यापकता को योगी समाधि बल और प्रणव से कम्पायमान कर देता है और विशेष तरङ्गित हो जाते हैं।

शंका—इस अवसर में क्या व्यष्टि चित्त भी रजोगुण प्रधान होता है?

समाधान—यदि व्यष्टि चित्त को मन्त्र द्वारा रजोगुण प्रधान बना दिया जाये, अथवा भावना से भी गुण परिवर्तन हो जाया करता है, तब दोनों व्यष्टि और समष्टि चित्त में रजोगुण की प्रधानता, उसमें क्रिया विशेष से परिवर्तन देखने में आयेगा और ब्रह्म का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होगा। ब्रह्म में तद्रूपता होने की योग्यता है। यह चित्त पशु-पक्षियों आदि के चित्तों में प्रधान रूप में उपादान कारण होता है, क्योंकि उनमें भोग की प्रधानता है। मनुष्य की तरह विशेष ज्ञान आत्मा परमात्मा के साक्षात्कार की तरह कभी योग्यता नहीं होती, केवल सामान्य भोगों की ही प्रधानता इनके जीवन में रहती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शंका—जब इनमें भोग की ही प्रधानता है तब कारण शरीर की इन्हें क्या आवश्यकता है ?

समाधान—क्योंकि आत्मा का निवास चित्त के प्रदेश में होता है, बिना आत्मा के सम्बन्ध के उनमें सामान्य ज्ञान और भोग नहीं हो सकता और स्थूल शरीर बिना कारण शरीर के नहीं होंगे।

न कर्म गति व्यापार बिना आत्मा के होगा। अतः पशुओं में भी कारण शरीर होना चाहिए। जब व्यष्टि चित्तों की उत्पत्ति होती है तब इनके भी व्यष्टि-चित्त उत्पन्न होते हैं। उनमें भी सर्वप्रथम आत्मा का सम्बन्ध होता है। पशुओं की सृष्टि में भोग प्रदान करने के लिए आत्मा होना चाहिये। जितने भी प्राणी जीवन धारण करने वाले हैं, सब में कारण शरीर और आत्मा होना चाहिये।

समष्टि सत्त्वःप्रधान चित्त जो कि समष्टि के रूप में है

जब हम इसको लक्ष्य बनाकर प्रणव के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार करते हैं तब यह भी ज्ञानात्मक होने से इसमें ब्रह्म का समष्टि रूप में ज्ञान होने लगता है। समष्टि चित्त और ब्रह्म का बिम्ब-बिम्बी भाव सम्बन्ध देखने में आता है। यह सब मनुष्यों के व्यष्टि चित्तों को उत्पन्न करने वाला है, मनुष्यों में इसके सत्त्व गुण की प्रधानता होती है। यह आत्मा को अपने गर्भ में धारण करके रहता है। समष्टि चित्त ब्रह्म को अपने गर्भ में धारण करने की सामर्थ्य रखता है। इससे उत्पन्न हुए व्यष्टि चित्त सत्त्वप्रधान ज्ञानप्रधान सर्व प्राणियों की अपेक्षा अधिक होते हैं। योगी ओम् को लेकर पुनः-पुनः मानसिक उच्चारण व्यष्टि चित्त में करके, इसके साथ समष्टि लगा होता है उसे जाग्रत करके ब्रह्म के साथ सम्बन्ध बना कर उसका साक्षात्कार करे। इसके पश्चात् योगी का समष्टि तमःप्रधान महत्तत्व में होना चाहिये और उसको तामस राजस सात्त्विक रूप में ज्ञान का हेतु बनाकर तीनों अवस्थाओं में ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिये।

तमःप्रधान समष्टि महत्तत्व मण्डल में योगी का प्रवेश और तीनों रूपों में ब्रह्म ज्ञान

तम महत्तत्व में व इसकी तीनों अवस्थाओं में ब्रह्म की व्याप्ति का अनुभव करना चाहिये। समष्टि तमःप्रधान महत्तत्व अहंकार का उपादान कारण है। इस समष्टि प्रधान महत्तत्व से त्रिगुणात्मक सत्त्व रज तम अहंकारों ने उत्पन्न होकर समस्त संसार का सृजन किया और इनकी सृष्टि जगत् में पृथिवी पर्यन्त चली और रजःप्रधान महत्तत्व की सन्तति कार्यात्मक बुद्धियों में पहुंच कर समाप्त हो गयी और समष्टि सत्त्व प्रधान की सृष्टि व्यष्टि चित्तों में पहुंच कर समाप्त हो गयी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समष्टि रजःप्रधान महत्तत्व ने समष्टि बुद्धि और समष्टि बुद्धि ने व्यष्टि बुद्धियों को उत्पन्न किया। इसकी सन्तति आप मानें तो बुद्धि की ज्ञान रूप में बड़ी भारी सन्तति की परम्परा का विशोका ज्योतिष्मती प्रज्ञालोक और ऋतंभरा तथा धर्ममेघ के रूप में बहुत विस्तार हुआ। अन्य ज्ञान रूप वृत्तियों तथा वृत्तियों से संस्कार रूप में परिणत होकर इन संस्कारों एवं संस्कार पदार्थों के रूप में परिणत होकर इन सबका मूल कारण अन्त में प्रकृति हुई। यावत् दृश्य और अदृश्य पदार्थों का मूल कारण अन्त में प्रकृति हुई। यावत् दृश्य और अदृश्य पदार्थों का मूल कारण प्रकृति बनी या हुई।

इस रज महत्तत्व में ब्रह्म की व्यापकता को देखने के लिए प्रणव का उच्चारण करते हुए मानसिक बुद्धि में ध्यान का विषय बनावें। ओम् का अर्थ और ज्ञान से सम्बन्ध है। अर्थ हुआ परमात्मा और जिससे इसका साक्षात्कार हुआ वह हुआ ज्ञान, सम्पूर्ण महत् रज में ब्रह्म का अनुभव होना चाहिए। भेदाभेद रूप में ब्रह्म का प्रत्यक्ष रूप में यथार्थ ज्ञान होना चाहिये।

शंका—आपने महत् रज का उपादान कारण प्रकृति को कहा है। परन्तु इससे पूर्व अन्य पदार्थ भी तो हैं। दिशा, काल, आकाश, प्राण और शब्द ये भी समष्टि के रूप में उत्पन्न हो चुके हैं।

समाधान—ये पदार्थ सहकारी उपादान कारण तो हो सकते हैं किन्तु मूल कारण नहीं हो सकते। मूल कारण प्रकृति ही माननी होगी। महत्तत्व के दिशा, काल, आकाश सहायक हो सकते हैं, उपादान कारण नहीं हो सकते हैं। मूल ठोस कारण पदार्थों की आरंभिक मूल प्रकृति ही होती है, और ये भी तो प्रकृति के गुण विशेष ही हैं। इस प्रकृति के साथ में रहकर महत्तत्वादि पदार्थों के उत्पन्न होने में सहायक होते हैं। प्रकृति अपने धर्मों या गुणों को, शब्द प्राण आकाश काल दिशा को, साथ लेकर चलती है। ये आगे संसार के सृजन में सहकारी उपादान कारण बनेंगे।

सत्त्वःप्रधान समष्टि में ब्रह्म की व्याप्ति का प्रणव द्वारा साक्षात्कार

यह समष्टि महत्तत्त्व समष्टि चित्त का उपादान कारण होता है और समष्टि चित्त व्यष्टि चित्तों का उपादान कारण होता है। व्यष्टि चित्तों की केवल ज्ञानात्मक वृत्तियां चलती हैं। आगे पदार्थ के रूप में कोई कार्यात्मक पदार्थ नहीं होता है। केवल ज्ञान रूप में परम्परा चलती है। इसका उपादान कारण, अर्थात् सत्त्वप्रधान महत्तत्व का, प्रकृति ही होती है। शब्द प्राण दिशा काल आकाश प्रकृति के गुण या धर्म विशेष हैं इसके साथ सहकारी रूप में चलेंगे पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए। इसके सात्त्विक राजस तामस भेद करने में सहायक होंगे।

इस समष्टि महत्तत्व को प्रणव द्वारा, इसके और ब्रह्म के मध्य में ओम् का मानसिक जाप बुद्धि में शनैः-शनैः करके उसके द्वारा, ब्रह्म का उद्बोधन करें और ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साक्षात्कार करें। यहां भी दोनों के मध्य में प्रणव ही ज्ञान या साक्षात्कार का हेतु होता है।

शंका—आपने सृष्टि की उत्पत्ति सत्त्व रज तम के क्रम से और इस प्रकार इनके ज्ञान के साधन या प्राप्ति का क्रम क्यों रखा है, और अब ज्ञान प्राप्ति का क्रम तम रज सत्त्व के रूप में क्यों रखा है ?

समाधान—जब सृष्टि का सृजन होता है तब पदार्थों में त्रित्व भाव होता है। सृजन के समय तक पदार्थ सत्त्व गुण के रूप में पहले होता है। सृष्टि के उत्पत्ति काल में पदार्थ की समाप्ति तम पर ही होती है, अर्थात् सृजन होते-होते अन्त में सृष्टि की समाप्ति तमोगुण ही से होती है। इसी कारण से अब ज्ञान का क्रम तमोगुण ज्ञान से प्रारम्भ करके फिर रजोगुण तत्पश्चात् सत्वगुण है और जब ये प्रलय काल में प्रवेश करना प्रारम्भ करते हैं तब प्रथम तमोगुण रूप पदार्थ का सर्वप्रथम विनाश या अपने कारण में प्रवेश होता है। इसके पश्चात् रजोगुण अवस्था का परिणाम होकर कारण की ओर पदार्थ चलता है। तत्पश्चात् सत्त्वगुण अपने कारण रूप पदार्थ में लीन होता है। ये एक ही पदार्थ की तीन अवस्थायें होती हैं। इन अवस्थाओं में इनके आधार पर इनसे पदार्थ उत्पन्न होते हैं उसी गुण के रूप में। इसी कारण से हम जब स्थूल पदार्थों के क्रम से ज्ञान प्राप्त करते हुए सूक्ष्मों की तरफ चलते हैं तब प्रथम तमः पदार्थ का ज्ञान पहले प्रारम्भ करते हैं।

शंका—सत्त्व अवस्था पदार्थ की पहले क्यों उत्पन्न होती है ?

समाधान—सत्त्व पदार्थ सर्वोत्तम भाग होता है, इसीलिए पदार्थ से पहले उसके श्रेष्ठ भाग की उत्पत्ति होती है। सत्त्व में कुछ ज्ञान अंश भी अधिक होता है। रजःप्रधान में क्रिया गति कर्म का अंश अधिक होता है। तम में जड़ता अन्धता बल स्थिति के गुण धर्म अधिक होते हैं। इसी कारण से इनका क्रम सत्त्व रज तम रूप में अवस्थाओं का रखा गया है।

अब इसके आगे समष्टि सृष्टि के ७वें पदार्थ दिशा का कथन करते हैं। इसके भी सात्त्विक राजस तामस भेद करेंगे, क्योंकि लोक व्यवहार में उनका विशेष उपयोग होते देखा गया है।

समष्टि दिशा और ब्रह्म के संयोग में प्रणव द्वारा दिशा और ब्रह्म का ज्ञान

दिशा पहले ही सूक्ष्म है, परन्तु इसका ही आकार प्रकार स्वरूप और कार्यात्मक पदार्थ हैं। प्रकृति को इसका उपादान कारण मानना होगा। यह सब पदार्थों के पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण नीचे ऊपर रूप में बोधक होती है। इसके बिना पदार्थों का बोध भी नहीं होता है। एक पदार्थ, एक देश या नगर दूसरे से किस ओर है, दिशा ही इसका ज्ञान कराती है। अतः दिशाओं का पता पदार्थों के बिना भी नहीं चलता है। यदि कहीं एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थान से दूसरे स्थान पर जाना हो, दिशा के बिना उसका बोध भी नहीं होता। और न उस देश में बिना दिशा के जाना हो सकता है।

शंका—जब प्रकृति ने सर्वप्रथम गमन किया, उस समय तो दिशा न थी। परमात्मा के सन्निधान में रहते हुए जब उसने परमात्मा के अन्दर सर्वप्रथम गमन किया, उसी काल में दिशा स्थूल रूप में प्रकट हो गयी। जब पदार्थों का सृजन प्रारम्भ होने लगा तब तो दिशा का बड़ा स्थूल रूप हो गया, पदार्थ के आकार का ही समझो। वास्तव में सूक्ष्म रूप में या कारण रूप में छोटे-छोटे अंश तो प्रलय काल की अवस्था में भी थे, क्योंकि सूक्ष्म रूपों में जो चेतन के संयोग से प्रकृति में कम्पन या अत्यन्त सूक्ष्म रूप गति कर्म हो रहा था उसके लिए भी तो अत्यन्त सूक्ष्म और बहुत छोटी-छोटी दिशायें बनती थीं या उत्पन्न होती हैं। उस प्रलय काल में भी छोटी-छोटी दिशाओं की आवश्यकता थी। वरना प्रकृति में कम्पन नहीं होते, न किसी प्रकार की गति या कर्म होता, क्योंकि गति और कर्म को भी जगह या स्थान चाहिये, तभी उसमें हलचल होगी।

जब प्रकृति ने ब्रह्माण्ड का सृजन प्रारम्भ किया, और बड़े-बड़े पदार्थ कार्यात्मक प्रारम्भ होने लगे, तब महान् समष्टि दिशा का प्रादुर्भाव हुआ और पदार्थों की पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण या नीचे ऊपर बोध होने योग्य पदार्थ या दिशा बन गये। जैसे इस समय सूर्य हमारी पृथिवी की दिशाओं का बोधक बन गया है एवं देशों मनुष्यों और दूसरे प्राणियों का बना हुआ है। उस समय अर्थात् प्रलय काल की अवस्था में प्रकृति ने इस समय के सूर्य का काम दिया था।

शंका—क्या दिशा भी सात्त्विक राजस तामस भाव में परिणत होती है?

समाधान—ज्योतिषी लोग दिशाशूल की बातें तो बताते हैं और कहते भी हैं और मानने वालों पर इसका प्रभाव भी पड़ता है। इस विषय में मैं अपना ही एक दृष्टान्त देता हूं। मैं सन् १९६२ से पूर्व उत्तर दिशा में मंगल और बुध के दिन नहीं जाया करता था। मित्रों, समाज के लोगों और ज्योतिषियों ने मन बुद्धि पर ऐसे संस्कार डाले हुए थे कि इन दो दिनों में उत्तर में दिशाशूल होता है। यदि इस दिशा में जाओगे तो अनिष्ट या हानि होगी। अतः मैं भी मंगल और बुध को उत्तर दिशा में बड़ा लम्बा सफर नहीं करता था।

सन् १९६२ में संन्यास लेने के पश्चात् मैंने बन्धन-सा समझ कर दिशाशूल की बात छोड़ दी थी। सन् १९७९ में मई मास में मंगल के दिन मेरी हवाई जहाज की सीट बुक हो गयी थी। देहली में श्रीमती पुष्पा मल्होत्रा मुझे मिलने आयी और कहने लगी कि महाराज जी, मंगल को उत्तर में दिशाशूल है। मैंने तो अपनी सीटें कैन्सल करा दी है। मैंने कहा, मैंने संन्यास लेने के बाद यह दिशाशूल का विचार छोड़ दिया था। आज आपके कहने से अब दिशाशूल को ही जाता हूं और देखता हूं कि इसका क्या प्रभाव पड़ता है। इसका प्रभाव यह पड़ा कि मुझे पहलगाम का योग साधना शिविर बीच

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में ही छोड़ कर जाना पड़ा। प्रोस्टेट ग्लैण्ड बढ़ जाने से पेशाब बन्द हो गया और मुझे श्रीनगर में डाक्टर सिकन के कहने पर नरसिंग होम में दाखिल होना पड़ा। उन्होंने ट्यूब लगाकर पेशाब तो चालू कर दिया, परन्तु कहा कि यह टैम्परेरी इलाज है, आपको आपरेशन कराना पड़ेगा, उससे ही स्थायी आराम आयेगा। सम्मति दी कि आपरेशन देहली जाकर कराना ठीक होगा। मैंने पत्र लिखा और ओम प्रकाश रहेजा जी ने, जो उपप्रधान योग निकेतन देहली के हैं, आपरेशन कराने का प्रबन्ध डा० वोरा के नरसिंग होम राजोरी गार्डन में कर दिया। वहां आरेशन हो गया। यह प्रभाव आप चाहे दिशाशूल का समझो अथवा शरीर के रोगी होने का समझो। बीमारी पेशाब की शनैः-शनैः बढ़ रही थी और प्रोस्टेट बढ़ने पहले से प्रारम्भ हो गये थे। उस समय में उन्होंने पेशाब बन्द कर दिया। पूर्ण बढ़ जाने से बीमारी को भी अवसर मिल गया और दिशाशूल को भी अवसर मिल गया।

बीमार होने का और भी एक कारण बना। मैं देहली से चंगा भला स्वस्थ काश्मीर के पहलगाम में योग साधना शिविर ४ मास का लगाने आया था, योग निकेतन पहलगाम में। श्रावण मास की पूर्णिमा पर भक्त लाला देवी दास जी अमृतसर वाले पहलगाम के एक होटल में ठहरे हुए थे। अमरनाथ की यात्रा के पर्व पर वे श्रावण पूर्णमासी पर सन्तों महात्माओं को अन्न और वस्त्र बांट रहे थे। वह योग निकेतन में मिलने आये। मेरे ६० वर्ष पुराने परिचित और बहुत स्नेही थे। कहने लगे, महाराज जी, अब इस बार मेरा मिलना आप से आखिरी ही है क्योंकि मेरा जीवन का समय डेढ़ वर्ष रह गया है। मेरी जन्म कुण्डली भी यही बता रही है और ज्योतिषी भी यही कह रहे हैं। और मेरा भी ऐसा ही विचार कुण्डली के आधार पर हो गया है कि डेढ़ वर्ष से अब जीवन अधिक नहीं रहेगा। अब शरीर भी ९३ वर्ष का हो गया है। मैंने कहा, भक्त जी, आपका और मेरा स्नेह प्यार ६० वर्ष से चला आ रहा है। आप तो ज्योतिषियों और अपनी वाणी और जन्म कुण्डली से डेढ़ वर्ष आयु बता रहे हैं। मैं भी योगी हूं, अब योगी और ज्योतिषी का मुकाबला होना है। मैं आपको ४ वर्ष तक मरने नहीं दूंगा। इस अवसर पर, श्रीनगर कश्यप इण्डस्ट्रीज के श्री विश्वनाथ इन्द्रनाथ सहगल भी मौजूद थे जो बहुत हंसे और हर्ष मनाने लगे। इसके पश्चात् मुझे भी चिन्ता होने लगी कि इतने बड़े भक्त को और बड़ी आयु के धनी को कई व्यक्तियों के सामने ४ वर्ष की आयु का वचन दिया है, यह अवश्य ही पूर्ण होना चाहिये, ताकि मेरा वचन पूर्ण हो। कुछ दिन के बाद वे चले गए। मैंने लाला जी के लिए दीर्घायु और ४ वर्ष को पूरा करने वास्ते मनोबल के द्वारा लाला जी के शरीर को लक्ष्य बनाकर मानसिक प्रयोग और प्रार्थना प्रारम्भ कर दी तथा दृढ़ भावना बना ली कि उनका ४ वर्ष जीवन अवश्य रहना चाहिये। आज लाला जी को जीवन धारण रखे हुए ३ वर्ष और दो मास हो रहे हैं। तब से मैं नित्य ही मानसिक प्रयोग करता रहता हूं, ४ वर्ष पूर्ण करने वास्ते। यह काल पर विजय समझो अथवा मेरे मनोबल का परिणाम समझो। परन्तु मैं उस वचन देने के एक सप्ताह पश्चात् ही बीमार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ गया और प्रोस्टेट बढ़ जाने से पेशाब बन्द हो गया। इन तीन वर्षों में मेरे ऊपर तीन बीमारियां आ चुकी हैं और तीनों ही बड़ी भयंकर। प्रोस्टेट का आपरेशन प्रथम वर्ष में, दूसरे वर्ष रीढ़ की हड्डी की डिस्क उतर कर कुबड़ा होकर चलने लगा। कई मास सीधा खड़ा नहीं हो सका, घुटनों पर दोनों हाथ रखकर चलने लगा। इसके इलाज के लिए बम्बई जाना पड़ा। वहां डाक्टर ढोलकिया से इलाज कराने का प्रबन्ध डाक्टर मनचन्दा ने, जो मेरे शिष्य हैं, किया। एक मास हस्पताल में रहना पड़ा, तब पीठ सीधी हुई। इसके पश्चात् तीसरे वर्ष में हार्ट की बीमारी हो गयी। हृदय के ऊपर सोजिश होकर दर्द रहने लगा और श्वास भी चलते-चलते व सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते फूलने लगा। इसका इलाज डाक्टर दीक्षित जी से देहली में कराया। उससे कश्मीर में पहुंचकर अभी थोड़े ही दिन हुए आराम आया है। ऐसा मालूम होता है कि लाला देवी दास की जो बीमारियां आकर दुःख या मृत्यु होनी थी उनका प्रभाव मेरे ऊपर पड़ गया। क्योंकि उनके जो भोग थे उनको स्वयं पर ले लिया या बलात्कार से मेरे ऊपर आन पड़े। वरना मैं बहुत वर्षों से स्वस्थ और तकड़ा था। कार्य करने की शक्ति और मनोबल भी बहुत था। इस प्रयोग से शरीर की शक्ति और मन की शक्तियों का बड़ा ह्रास हुआ। न भुक्त्वा क्षीयते कर्म कोटिशतैरपि। कर्म भोग तो भोगना ही है, चाहे लाला देवी दास जी भोगें अथवा स्वामी योगेश्वरानन्द जी लेकर भोगें। कर्म तो फल देकर ही समाप्त होंगे।

शंका—किसी के कर्म फल को भी कोई और ले सकता है या आयु भी दे सकता है ?

समाधान—आपके पास धन है, आपका कमाया हुआ बड़े परिश्रम से। आप किसी मित्र को अथवा निर्धन को उधार या दान रूप दे देते हैं। आपके धन को आपके देने और दूसरे के लेने से भी तो आपके अपने धन के सुख का उपभोग आपके मित्र या आप से दान रूप में लेकर उपभोग करते हैं। जैसे, कोई व्यक्ति रोगी है। एक सेवक या भक्त अथवा परिवार का व्यक्ति रोगी की सेवा करके दवाई देकर रोगी के रोग का निवारण कर देता है। दवा और सेवा से शरीर का रोग दूर हो सकता है। सेवा भी तीन प्रकार से होती है—तन से, मन से, और धन से। अतः मनोबल से रोग का निवारण करना, अगर मनोबल से निवारण न हो तब अपने ऊपर उसके रोग को ले लेना भी हो सकता है। शरीर से सेवा करके सेवक ले लेता है, मन से सेवा करके मनोबल से आकर्षण करके भी हटा सकता है और स्वयं लेकर भी भोग कर सकता है। इसी प्रकार धन से भी जो मर्जी खरीद कर ले, सब कुछ मिल जाता है।

यह प्रत्यक्ष रूप में कई बार देखने में आया है कि जो व्यक्ति रोग निवारण के लिये मानसिक प्रयोग करता है, उस रोगी का रोग या तो आकाश में चला जाता है या किसी और व्यक्ति पर चला जाता है अथवा प्रयोग करने वाले पर प्रभाव डालता है। जो रोग आया है उसने भोग देकर ही समाप्त होना है, चाहे उसका भोग दूसरा ही क्यों न करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक स्थान पर मैं रोगी के रोग को दूर करने में फेल भी हुआ था। श्री ओम प्रकाश मिलाप अखबार वालों को कैंसर था। मैंने डाक्टरों से सुना हुआ था कि कैंसर का रोगी अच्छा नहीं होता है, इसकी कोई औषधि भी नहीं है और इलाज भी कोई नहीं निकला है। मैं विदेश से लौट कर आया था। मैंने श्री ओम प्रकाश की बीमारी के बारे में सुना कि अब उनका कैंसर लाइलाज हो गया है। कोई भी दवाई या डाक्टर आराम नहीं कर पा रहा है। उन बेचारों के ये आखिरी दिन थे। मैं उनके घर गया। उनकी बेचैनी और कष्ट को देख कर मुझे भी बड़ा धक्का-सा लगा। मैंने उनके ऊपर मनोबल से बड़ा जोर या शक्ति लगाकर प्रयोग करने प्रारम्भ किये। परन्तु मेरी कुछ भी पेश न गयी, कुछ भी अन्तर उनकी बीमारी में नहीं हुआ और कुछ ही दिनों में वे परलोक गमन कर गये।

इसमें दो कारण समझ में आते हैं। एक तो मन पर असर हुआ था कि कैंसर लाइलाज रोग है, इसका रोगी बचता नहीं है। दूसरी बात कि रोग इतना भयंकर था कि उसने जान लेकर ही जाना था। सेवा-दवाई-धन-डाक्टर-मानसिक प्रयोग सब ही बेकार साबित हुए। इसका अभिप्राय यह भी है कि सब कुछ करने में कोई भी सफल नहीं होता, सब अधूरे ही रहते हैं। मनुष्य तो क्या, भगवान् भी सब कुछ नहीं कर सकता।

शंका—भगवान् कैसे अधूरा रहता है ?

समाधान—भूमि में भूकम्प आते हैं, गांव के गांव बल्कि शहर भी भूमि में गर्क हो जाते हैं, हजारों ही मनुष्य एक दम मर जाते हैं। भगवान् भूकम्प को रोक कर उन्हें क्यों नहीं बचाता ; अति वर्षा से नदियों में बाढ़ इतनी भयंकर आती है कि कई गांव और हजारों मनुष्य और पशु पानी में डूब कर मर जाते हैं। भगवान् बाढ़ को क्यों नहीं रोकता ? उन मनुष्यों-पशुओं को क्यों नहीं बचाता ? कभी-कभी सूर्य की गर्मी वर्षा न होने से बढ़ जाती है कि सैकड़ों व्यक्ति गर्मी और धूप तथा पानी की कमी से तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। भगवान् सूर्य पर क्यों कण्ट्रोल करके नहीं रखता ? कभी-कभी इतनी प्रबल आंधी आती है कि मनुष्यों को उठाकर फैंक देती है। मकान झोंपड़ियों और पशुओं को उठाकर फैंक कर मार देती है। भगवान् आंधी को क्यों नहीं रोकता है ? कभी-कभी ग्रह नक्षत्र आदि चलते-चलते टकरा कर टूट-फूट कर उलका के रूप में आसमान या पृथिवी पर गिरते हैं। उन्हें क्यों नहीं भगवान् रोकता ? कभी-कभी भूतों के प्रकोप से बहुत-सी बीमारियां आ जाती हैं, जैसे आजकल आंखें दुखने की बीमारी चली हुई है। लाखों ही नहीं करोड़ों व्यक्ति इसका शिकार हुए हैं। भगवान् बीमारी को क्यों नहीं रोकता ? इसी प्रकार हैजा, प्लेग, बुखार आदि कई बीमारियां आती हैं, गांव और शहर उजड़ जाते हैं, लाखों मर जाते हैं। भगवान् उन्हें क्यों नहीं रोकता है। उपर्युक्त बातों से भगवान् भी सब कुछ करने में असमर्थ देखने में आता है। फिर मनुष्यों की असमर्थता की बात तो बिलकुल सही है।

विषय चल रहा था दिशा के प्रभाव का। अब रही सात्त्विक राजस तामस की बात। क्या दिशा काल आकाश भी सात्त्विक राजस तामस होते हैं ? हां दिशा काल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आकाश भी सात्त्विक राजस तामस देखने में आते हैं और इनका प्रभाव भी जीवन पर पड़ता है।

शंका—दिशा का प्रभाव कैसे मनुष्य पर पड़ता है ?

समाधान—दिशा का प्रभाव तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा वालों पर अवश्य पड़ता है।

तमःप्रधान दिशा का प्रभाव और इसमें ब्रह्म की व्याप्ति और शब्द द्वारा उसका ज्ञान

भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व पश्चिमोत्तर दिशा में पेशावर के आगे सीमा प्रान्त का इलाका था। यह एक खतरनाक और खूंखार इलाका रहा है। उस मार्ग से २-४ व्यक्तियों के जाने में जान माल का सदा खतरा रहता था। फ्रन्टीयर के लुटेरे डाकू मुसाफिरों को लूट मार कर खत्म कर देते थे। अफगानिस्तान ईरान को जाने का यही पैदल मार्ग था। अतः अंग्रेजी सरकार ४०-५० के काफिले के साथ बन्दूकें देकर पोलीस को हिफाजत के लिए साथ में भेजा करती थी। भय के कारण अकेले या दो-चार का जाना नहीं होता था। सामान लूट कर कत्ल करने वाले डाकू सीमा के पार बन्दूकें लिये घूमते रहते थे। लूट मार कत्ल का भय सदा लोगों में बना ही रहता था।

इस प्रकार की दिशा तमोगुणी कहलाती है। और दिशाशूल भी तमोगुणी होता है, जिसके कारण अनिष्ट रोग दुःख दर्द भय आदि व्याधि-उपाधियों से गुजरना पड़ता है। इस तमोगुणी दिशा को और इसमें व्याप्त ब्रह्म को भी योगी अपनी समाधि का विषय प्रणव द्वारा बनाकर दिशा अर्थात् व्यष्टि दिशा में ब्रह्म साक्षात्कार करे। या इस विधि से दोनों का ज्ञान करना चाहिये। व्यष्टि दिशा दस हैं और समष्टि दिशा महान् एक है। इसका उपादान कारण महादिशा कारण रूप समष्टि प्रकृति में वर्तमान रहती है। समष्टि दिशा ११ पदार्थों को जो समष्टि हैं धारण करके रहती है और व्यष्टि दिशा समस्त प्राणियों और स्थूल पदार्थों को धारण करती है।

रजःप्रधान समष्टि दिशा में शब्द या मन्त्र द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

रजःप्रधान दिशा में प्रणव उच्चारण करने में उसमें और साथ लगे ब्रह्म में कम्पन होने लगते हैं। वे कम्पन ब्रह्मानुभूति में हेतु बन जाते हैं। आप पूछेंगे कि हम प्रणव शब्द को ही क्यों इतना महत्त्व देते हैं, इसमें क्या विशेषता है ? मुझे ईश्वर का यह नाम बहुत अच्छा और प्यारा लगता है। उपनिषद् ने भी इस नाम की बड़ी ही प्रशंसा की है। यथा—'सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति तपान्सि सर्वाणि च यत्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।' सर्व वेद जिस पद (ओम्) को मानते हैं या कथन करते हैं और तपस्वी लोग भी इसका कथन करते हैं और इच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य का इसको जानने के लिए ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करते हैं। उस ओम् शब्द को विस्तारपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या संग्रह करके कहता हूं या बोलता हूं। कितनी महिमा इस ओम् शब्द की कथन की है या गाई है !

पश्चिम दिशा में बम्बई और पूर्व में कलकत्ता बड़े रजोगुणी शहर हैं। उनमें अधिकतर धनवान् व्यापारी भोगी विलासी जुआरी सट्टा करने वाले शराबी कबाबी परस्त्रीगामी वेश्यागामी लोग रहते हैं। इस प्रकार के रजोगुणी शहर में जाकर दिशा और संग के वातावरण का प्रभाव भी अवश्य पड़ेगा। बहुत वर्ष हुए, मैं अमृतसर के अपने एक भक्त लाला काहन चन्द जी खन्ना के यहां कलकत्ते में गया हुआ था। मेरा विचार कुछ मास नदिया शान्ति में जाकर रहने का था। बहुत अच्छा सात्त्विक प्रदेश सन्तों महात्माओं और भजन साधना अभ्यास के करने वालों का है। मुझे लाला काहन चन्द जी के घर में रहते हुए कई दिन हो गये थे। ये लाला जी और इनके भाई बहनोई दुकान पर पशमीने का व्यापार करते थे। इन दिनों इनका व्यापार दैवयोग से अच्छा चल पड़ा था और माल खरीदने वाले बहुत आने लगे। शाम को मैं भी एक घण्टा दुकान पर मनोरंजन के लिए जा बैठा करता था। इनकी भावना यह हो गयी कि इस वर्ष ब्रह्मचारी जी आये हुए हैं, इनके प्रताप से हमारा व्यापार इतना बढ़ा और चमका है और कमाई भी सब वर्षों से बहुत अधिक है, इस डेढ़ मास में नया पुराना सब माल बिक गया। इनकी दुकान पर बहुत अधिक ग्राहक आने लगे। इन्होंने दूसरों की दुकानों से माल लेकर अपनी दुकान पर बेचना शुरू कर दिया जब कि पशमीने के दूसरे व्यापारी बेकार बैठे थे। ये १२-१४ घंटे दुकान पर ही काम करते थे। मैं नदिया शान्ति जाना चाहता था, पर मुझे नहीं जाने देते थे। इस वर्ष खूब धन इन्होंने कमाया। एक दिन लाला काहन चन्द कहने लगे कि इस वर्ष आपके यहां आने और रहने से हमने इतना रुपया कमाया है और इतने ग्राहक माल खरीदने आये हैं कि कभी इतने वर्षों में किसी साल इतना धन नहीं कमाया था। अपना पुराना माल भी सब निकल गया और दुकानदारों से माल लेकर बेचने में भी बड़ी कमाई हुई। मैं भी नित्य शाम को एक घंटा उनकी दुकान की गद्दी पर बैठ जाता था और देखता रहता। लाला काहन चन्द कहने लगे कि आप प्रतिवर्ष इस सीजन में कलकत्ते हमारे यहां आ जाया करें। आपको दस हजार रुपया प्रति वर्ष खर्च वास्ते या हिस्से का दे दिया करेंगे। आप करना कुछ नहीं, केवल १-२ घंटा हमारी गद्दी पर बैठ जाया करना। आप हमारे पार्टनर बन जाओ।

इनके इस प्रकार के कथन और स्नेह प्यार से और व्यवहार से मेरा मन भी लुभायमान होने लगा और खलबली-सी पार्टनरशिप की मन में मच गयी। मन कभी कहता था कि २-३ मास यहां आ जाया करूं, काम तो कुछ करना नहीं होगा, सिर्फ दुकान पर ही बैठना हुआ करेगा और १० हजार रुपया सालाना आराम से २-५ मास में मिल जाया करेगा। दूसरा विचार मन में आता था कि यह धन दौलत तो तू घर पर भी छोड़ कर आया है, इतनी बड़ी योग साधना और तपस्या तथा पठन पाठन किया है, क्या इस तपस्या का फल १० हजार रुपया होता है ? तूने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हुआ है। आज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुकान पर बैठता है, कल को विवाह भी करने लगेगा। अरे नादान मूर्ख ! धिक्कार है तेरे इस गृह त्याग को। इन उपर्युक्त विचारों की खलबली मन बुद्धि में कई दिन बनी रही।

लाला काहन चन्द जी की यह धारणा थी कि ब्रह्मचारी व्यास देव जी बड़े सिद्ध महात्मा पुरुष हैं। इनके प्रभाव और दिव्य दृष्टि से हमारा कारोबार बहुत बढ़ गया है और बहुत रुपया कमाया है। मेरे मन में विचार आया कि वह माया की रजोगुणी नगरी है। इसमें आने और रहने से तो इसी प्रकार की भावना और संस्कार तथा विचार उत्पन्न होंगे। सत्संग का असर तो बहुत देर में होता है। और कुसंग का असर जल्दी होता है। तेरे जैसे व्यक्ति को ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिये अतः इस स्थान को छोड़ कर नवदीप नदिया शान्ति चलना चाहिये। वह सात्त्विक स्थान है, सन्तों और महात्माओं के भजन और अभ्यास करने की भूमि है। वहां मन को शान्ति मिलेगी और सन्तों-महात्माओं का संग प्राप्त होगा और इन रजोगुणी व्यापारियों का संग भी नहीं रहेगा।

उनका सीजन खत्म होने वाला था, वे अमृतसर जाने की तैयारी करने लगे और मैं नदिया शान्ति के लिए तैयार हो गया। मैं दो अढाई मास इनके पास कलकत्ते रहा और फिर मैं नदिया शान्ति चला गया। इन्होंने काफी रुपये मुझे खर्च के लिए दिये थे। मैं नवदीप में पहुंचा, २-३ मास रहा, एक भजन आश्रम की धर्मशाला में एकता में ठहरा। अब दूसरी दुनिया में, सन्तों-महात्माओं के देश में पहुंच गया था।

वहां रहने से मन में पुनः ज्ञान वैराग्य सत्संग अभ्यास की भावना दृढ़ होने लगी। सन्तों-महात्माओं के साथ सत्संग और वार्तालाप एवं ज्ञान ध्यान सत्संग की चर्चा होने लगी। फिर गर्मी प्रारम्भ हो गयी और उत्तराखण्ड में गंगोत्तरी आदि की तरफ चल दिया। सो यह दिशा और देश के स्थान या कुसंग का प्रभाव है। जब तक ज्ञान वैराग्य में दृढ़भूमि नहीं होती तब तक मनुष्य डावांडोल ही बना रहता है।

सत्त्वःप्रधान दिशा व्यष्टि और समष्टि रूप में शब्द द्वारा ब्रह्म विज्ञान

सत्त्वःप्रधान योगी या भक्त उत्तर दिशा की ओर मुख करके सन्ध्या ध्यानाभ्यास किया करते हैं। इनको तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होती है। धन की कामना करने वाले पूजा सन्ध्या उपासना ध्यानाभ्यास पूर्वाभिमुख किया करते हैं। रोग निवृत्ति की कामना करने वाले पश्चिम दिशा की ओर मुख करके सन्ध्या उपासना ध्यानाभ्यास किया करते हैं। शत्रु का दमन करने वाले दक्षिण दिशा की ओर मुख करके मन्त्र जाप या साधना पुरश्चरण किया करते हैं। मनु जी कहते हैं, प्रातः काल सूर्य की ओर मुख करके सन्ध्या उपासना करनी चाहिये, सांय काल की सन्ध्या या उपासना सूर्य अस्त होने की पश्चिम दिशा में मुख करके करनी चाहिये। ये सब बातें सत्त्वगुणात्मक दिशा के प्रभाव की हैं। अतः दिशा का बड़ा प्रभाव मन और शरीर पर पड़ता है। प्रणव का सात्त्विक दिशा और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्म के मध्य में मानसिक जाप करने से दोनों में कम्पन पैदा कर दर्शन का विषय बन जाते हैं।

उत्तराखण्ड की दिशा में ऋषिकेश, उत्तर काशी, गंगोतरी, गोमुख, केदारनाथ, बद्रीनाथ सतोपन्थ की भूमियों और दिशा में जाकर मन को बड़ी शान्ति मिलती है। एकान्त सन्तों महात्माओं का दर्शन सत्संग भजन अभ्यास के लिए बहुत पवित्र दिशा और देश सुख शान्ति आनन्ददायक होते हैं। उस दिशा में अच्छे विद्वान् तपस्वी ज्ञानी योगी महात्मा निवास करते हैं, तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति और मन की शान्ति के लिए। यह सात्त्विक दिशा का प्रभाव वहां के निवास से देखने में प्रत्यक्ष रूप में आया।

समष्टि काल में ब्रह्म की व्याप्ति और शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

प्रकृति की साम्य-अवस्था में सूक्ष्म काल वर्तमान रहता है। जब प्रकृति सृष्टि की उत्पत्ति करती है तब यह समष्टि काल व्यष्टि कालों के रूप में प्रकट होता है। साम्य-अवस्था में जो प्रकृति में पुराणता से नवीन भाव को प्राप्त होने में अत्यन्त सूक्ष्म कम्पन बने रहते हैं उन कम्पनों में अत्यन्त सूक्ष्म काल उत्पन्न होता रहता है और उनमें भी भूत वर्तमान भविष्य काल की संज्ञा हो जाती है।

तमःप्रधान व्यष्टि समष्टि काल में शब्द या मन्त्र द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

कभी किसी बालक-बालिका का जन्म ऐसी घड़ी में होता है जो अत्यन्त निर्धन गृह में जन्म लेता है और जन्म से ही रोगी भी रहने लगता है। सम्पूर्ण जन्म निर्धनता क्लेश दुःख दर्द व्याधि में ही बीतता है। गरीबी के कारण न विद्या ही पढ़ सकता है, न नौकरी कर सकता है, न व्यापार ही कर सकता है। एक वक्त खाने को प्राप्त होता है तो रात को कभी भूखा रहकर सोना पड़ता है। इसका जीवन तमोगुणी काल में ही सारा बीतता है। सारा जीवन निर्धनता दुःख क्लेश भूख गरीबी अज्ञानता में बीता, इसे ही तमोगुणी जीवन या काल कहते हैं। इसे तमोगुणी अज्ञानी मूढ़ पशु के समान कहेंगे। यह सारे जीवन दुःख अज्ञानता मूढ़ता तमोगुणी काल का ही परिणाम है। इस व्यक्ति और इसके जीवन के काल को व्यष्टि या व्यक्ति का काल कहेंगे। इसके व्यष्टि काल और ब्रह्म के साथ इसमें व्यापकता रूप सम्बन्ध में प्रणव मन्त्र को लेकर अभ्यास किया जाये कि इसके जीवन में ब्रह्म भी वर्तमान है, इसका भूतकाल कैसे बीता है और वर्तमान कैसे बीत रहा है। दुःख क्लेश और तमोगुण से भरपूर है। भविष्य में भी ऐसी सम्भावना है। इसको अपनी समाधि का विषय बनाकर ओंकार मन्त्र के उच्चारण से ब्रह्म का आह्वान करना चाहिये। इसके जीवन का व्यष्टि काल और इसमें ब्रह्म की व्यापकता को देखना चाहिये। व्यष्टि काल को समष्टि काल के साथ जोड़कर उसमें समष्टि काल और ब्रह्म की व्यापकता उसमें साक्षात्कार करनी चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस व्यष्टि तमःप्रधान काल में और समष्टि काल में एवं साम्य-अवस्था के प्रकृति काल में इन तीनों कालों में इस की सूक्ष्म गति के द्वारा इनका माप करना है। इसके द्वारा कार्य-कारणात्मक प्रगति में सूक्ष्म गति काल की मापक रहती है। इस सूक्ष्म अवस्था में इसके कम्पनों में कम से कम सूक्ष्म क्षण से कम काल प्रकृति की सृष्टि की आयु प्रलय की अवस्था या स्थिति प्रकृति का माप रहा है। अतः इस सूक्ष्म माप और इसमें भी ब्रह्म की व्याप्ति को योगी को अनुभव करना चाहिये।

रजःप्रधान व्यष्टि समष्टि काल में प्रणव द्वारा ब्रह्म की अनुभूति

ज्योतिषी जन्म कुण्डली बनाते हुए नवजात बालक के विषय में बताता है कि यह बालक ऐसे मुहूर्त में उत्पन्न हुआ है। इसके जन्म में ही घर और बाहर सदा लड़ाई झगड़े बने रहेंगे। न आप सुखी रहेगा न घर वालों को सुखी रखेगा और बाहर दूसरों से भी कलह का हेतु बना रहेगा। यह कभी शान्ति से नहीं बैठेगा। बड़ा दुराचारी व्यसनी भोगी विलासी और धनवान् बनेगा। यह अपने परिवार और देश के लिए भी अच्छा साबित नहीं होगा। शराबी-कबाबी जुवारी धोखेबाज बनेगा, क्योंकि ऐसे ग्रह या मुहूर्त में पैदा हुआ है। इसके सारे जीवन का समय उपर्युक्त कार्यों में ही बीतेगा।

इस रजःप्रधान काल और इसमें होने वाले व्यक्ति और उपर्युक्त कर्म करने वाले रजोगुणी पुरुष के जीवन काल में और इसमें व्यापक ईश्वर की सत्ता का योगी को अनुभव करना चाहिये और मन्त्र या प्रणव को उच्चारण करके इस काल और ब्रह्म के सम्बन्ध का अर्थात् इसके भूत काल वर्तमान काल या भविष्य काल को दृष्टि में रख के ब्रह्म को इसमें प्रत्यक्ष करना या देखना चाहिये। प्रणव के द्वारा मानसिक जाप से इस प्रणव की उच्चारण रूप गति और इस रजोगुणी व्यक्ति के व्यष्टि काल की गति और इसमें व्याप्त ब्रह्म भी गतिशील बन जाता है। इनकी वर्तमान काल भूत काल और भविष्य काल के साथ ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिए।

सत्त्वःप्रधान व्यष्टि समष्टि काल में मन्त्र द्वारा इसमें व्याप्त ब्रह्म का साक्षात्कार

प्रकृति की साम्य-अवस्था जो सर्वव्यापक चेतन ब्रह्म के संयोग से सूक्ष्म कम्पन या गति लगातार हर समय बनी रहती है। यह क्रिया इसमें पुराणता को समाप्त करके नवीनता उत्पन्न करेगी। ये कम्पन सूक्ष्म काल में सूक्ष्म कम्पन सूक्ष्म अंश रूप में काल को पुनः उत्पन्न और इसमें भूत वर्तमान भविष्य भी अत्यन्त सूक्ष्म रूप में होते रहते हैं। इन सूक्ष्म कम्पन रूप अंशों में ब्रह्म की व्यापकता और वर्तमानता को देखना चाहिये। क्या इस गति में हेतु ब्रह्म है या प्रकृति है? प्रकृति में और इसमें गति का हेतु निमित्त कारण संयोग मात्र से ब्रह्म है। प्रकृति केवल उपादान कारण है।

इसके कम्पन में गति क्षण-क्षण में भूत वर्तमान भविष्य काल के सूक्ष्म रूप में करती रहती है। और दिशा भी इन कम्पनों में ही उत्पन्न होती है, क्योंकि प्रकृति सदा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गतिशील ब्रह्म के संयोग से बनी रहती है। इससे यह काल सूक्ष्म रूप में और गतिशील रूप में उत्पन्न होता रहता है। वर्तमान भूत भविष्यत् को भी बनाता रहता है।

यह कारण रूप काल सूक्ष्म रूप से समष्टि रूप में और सात्त्विक काल के रूप में उत्पन्न होता है। सर्वप्रथम सात्त्विक रूप में उत्पन्न होकर यह वर्तमान काल के रूप में और भूत भविष्यत् रूप में हो जायेगा। यह काल ही पदार्थ में नवीनता से पुरातनता लाता है और पुनः पुरातनता से नवीनता लाता है। अतः यह काल प्रत्येक पदार्थ की आयु का माप करता है। यदि यह काल पदार्थ का माप-तोल आगे पीछे करने वाला न हो तो पदार्थ एक स्थान और एक ही स्थिति में सदा बना रहे, न पुरानापन होगा न नयापन आयेगा। क्योंकि इसके साथ गति का कारण चेतन सत्ता है। यदि काल में चलन रूप क्रिया या गति न हो तो यह भी सदा स्थिर होकर ब्रह्म की तरह ठहरा रहेगा। इसके साथ सदा ब्रह्म की चेतन सत्ता सर्वत्र वर्तमान रहती है। इसके कारण से यह कभी न स्थिर रहा, न रहेगा ही। सदा गतिशील बना रहेगा। भूत वर्तमान भविष्यत् को भी बनाता रहेगा।

इन अनन्त सूक्ष्म अंशों का एक समष्टि काल बनता है। और पुनः उस एक समष्टि काल के अनेक या अनन्त व्यष्टि काल बनते हैं जिनका प्राणियों के साथ सम्बन्ध रहता है और ये मनुष्य तथा इतर प्राणियों की आयु का निर्माण करते हैं या बताते हैं। ये व्यष्टि काल की समस्त प्राणियों के व्यवहार और आयु का माप करते हैं।

पहले, योगी को इस व्यष्टि काल को अपनी समाधि का विषय बनाना चाहिये, और इसके वर्तमान भूत भविष्यत् को और इन तीनों कालों में जो एक से तीन और अनेक बन गये हैं उनमें ब्रह्म की मौजूदगी को देखना या समझना अथवा साक्षात्कार करना चाहिये। इस समय प्रधान व्यष्टि काल को अपनी सत्त्वःप्रधान समाधि का विषय बनाना चाहिये, तब पूर्ण शान्ति और आनन्द का अनुभव होगा और प्रत्येक पदार्थ की प्रत्येक अवस्था में भिन्न-भिन्न रूप में ब्रह्म का अनुभव होगा, क्योंकि ब्रह्म के सामने जो भी पदार्थ आता है ब्रह्म तद्रूप हो जाता है। इसी कारण से साधकों को भ्रान्ति हो जाती है कि पहले ब्रह्म का और रूप देखा था, अब अन्य रूप देख रहा हूं। परन्तु जिस ज्ञातज्ञेय योगी ने एक बार अच्छी तरह से ईश्वर या ब्रह्म को देख लिया है वह कभी भी किसी भी पदार्थ के साथ ब्रह्म के विषय में भ्रान्त नहीं होता।

इसके पश्चात् इस व्यष्टि काल के उपादान कारण समष्टि काल को सत्त्वःप्रधान अवस्था में समाधि का विषय बना समष्टि में समष्टि ब्रह्म का प्रत्यक्ष करें। इस समष्टि काल के कार्य-कारण भाव या अवस्था को और इसके वास्तविक स्वरूप और इसमें व्याप्त ब्रह्म को समझना या देखना प्रत्यक्ष रूप में चाहिये। किस प्रकार यह प्रकृति के सूक्ष्म काल रूप अंशों को संघात के रूप से संगठित या संग्रह करके एकीभाव को प्राप्त होता है और एक महान् समष्टि काल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कैसे स्थिर होकर और कितने काल तक एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या इस स्थिति में रहकर अनन्त व्यष्टि कालों के रूप परिणाम भाव को प्राप्त होकर नानात्व रूप धारण करता है, ब्रह्म के साथ में रहकर।

आकाश में ब्रह्म साक्षात्कार

अब हम आकाश के व्यष्टि समष्टि और महासमष्टि आकाशों के तामसिक राजसिक और सात्त्विक आकाशों के स्वरूप का वर्णन करेंगे जो कि संसार के स्थूल सूक्ष्म पदार्थों को अपने अन्दर धारण करता है और सबको गति प्रदान करता है, सब की रचना में सहायक उपकारक होता है और सर्व पदार्थों को अवकाश प्रदान करता है। इसके क्रमपूर्वक स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर भेदों और स्वरूपों का वर्णन करेंगे।

हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन कर रहे हैं। विज्ञान का क्रम भी यही है। इसलिए सर्वत्र जहां पदार्थ बनकर समाप्त होते हैं वहां से ही उनका विनाश प्रारम्भ होता है। अतः इस शब्द विज्ञान में अर्थात् 'द्विव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में हमने पहले दो अध्यायों में विज्ञान का क्रम सृष्टि की उत्पत्ति से प्रारम्भ किया था। इसके पश्चात् तीसरे और चौथे अध्यायों में जहां पदार्थों का अन्त या समाप्ति होती है। वह पहले पदार्थों से स्थूल रूप धारण करती है। अतः सर्व पदार्थों के सात्त्विक राजस तामस भेदों के आधार सत्त्वःप्रधान पदार्थ की उत्पत्ति पहले होती है। तत्पश्चात् उसकी रजःप्रधान अवस्था में उत्पत्ति या परिणाम होकर आता है। उसके पश्चात् यह परिणत होते हुए तमःप्रधान अवस्था में आकर या बनकर समाप्त होता है। सतः सर्व पदार्थों के विज्ञान और विनाश का क्रम पदार्थों की तमःप्रधान अवस्था से हमने प्रारम्भ किया है। पहले पदार्थ सूक्ष्म अंशों के संघात से बनना प्रारम्भ होता है, वह सूक्ष्म से शनैः-शनैः स्थूलता की ओर बढ़ता है, जब वह बनकर या उत्पन्न होकर अन्तिम अवस्था में आता है वह उसकी अन्तिम स्थूल अवस्था होती है। उस अवस्था से उसका विनाश और विनाशता का विज्ञान प्रारम्भ होता है। अतः हम सर्व पदार्थों में तमःप्रधान अवस्था या पदार्थ से सृष्टि के क्रम से चले हैं।

स्थूल आकाश जो यह दीख रहा है यह पंचभूतों में से एक है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इनसे पूर्व इसकी उत्पत्ति हुई थी। समस्त ब्रह्माण्ड के प्रति यह व्यष्टि आकाश स्थूल है। इसके ऊपर सूक्ष्म जगत् का अकाश शब्द तन्मात्रा या सूक्ष्म भूत आकाश है। उसके ऊपर समष्टि आकाश कारण शरीरों में या समष्टि १२ पदार्थों में है। इसके ऊपर और सूक्ष्म प्रकृति की साम्यावस्था में सूक्ष्म महाआकाश है। इस प्रकृति की साम्य-अवस्था के ही परिणामात्मक ये तीन कार्य रूप में आकाश हैं। अतः इनका क्रमपूर्वक व्यष्टि समष्टि और तम रज सत्त्व के रूप में वर्णन करेंगे।

तमःप्रधान व्यष्टि समष्टि रूप आकाश में ब्रह्म की व्याप्ति का शब्द या मन्त्र द्वारा साक्षात्कार

यह जो प्रत्यक्ष रूप में स्थूल आकाश वर्तमान है यह समष्टि है और हमारे शरीर में जो आकाश है वह व्यष्टि रूप में है। हमारे शरीर के अन्दर का आकाश शरीर को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धारण किये हुए है या इसकी रचना में सहकारी उपादान कारण है। वह आकाश इन स्थूल भूतों में सत्त्वःप्रधान है और ऊपर के सात्त्विक राजस तामस भेद हो जाते हैं, मनुष्य के व्यवहार के लिए। जैसे, जहां बूचड़खाना हो या जहां मनुष्यों का वध किया जाता हो या अन्य पशु जहां मारे जाते हों, यह तमःप्रधान आकाश उन स्थानों में है। अथवा जहां मांस-भक्षण व्यभिचार जुआ होता हो, शराब पी जाती हो, इन स्थानों के अन्दर का आकाश तमःप्रधान होता है। उसमें संस्कार भी तमःप्रधान ही रहते हैं। जिस मोहल्ले या बाजार अथवा ग्राम या शहर में ये उपर्युक्त कर्म बहुतायत से सर्वत्र होते हों तो इनके ऊपर का और अन्दर का आकाश भी तमःप्रधान होगा। वहां रहने से उनके संस्कारों का प्रभाव भी खराब ही होता है।

सर्वप्रथम योगी को जहां ये बुरे कर्म होते हैं उसको और वहां व्याप्त परमात्मा को मन्त्र के द्वारा अपनी समाधि का विषय बनाना चाहिये। यदि आप ही कोई भक्त या योगी ऐसे अपवित्र स्थान में रहता है तो उस पर भी कुछ न कुछ प्रभाव उन बुरे कर्मों का पड़ता ही है। इस देश और वहां के तमःप्रधान आकाश और ब्रह्म को समाधि द्वारा विज्ञान का विषय बनाकर ब्रह्म साक्षात्कार करे।

शंका—इस प्रकार के बुरे कर्म करने से भगवान् उन व्यक्तियों को क्यों नहीं रोकता है?

समाधान—भगवान् न किसी को अच्छे कामों के लिए प्रेरित करता है और न बुरे कामों से रोकता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, चाहे अच्छा करे या बुरा करे। परमात्मा ने अच्छे या बुरे कर्मों की व्यवस्था नहीं बनायी है। यह सब व्यवस्था तो माता-पिता गुरु समाज या राजा-महाराजा बनाते हैं। अतः ये सब बुरे कर्मों से मना भी करते हैं, रोकते भी हैं, पोलीस और अदालतें व न्यायाधीश भी बुरे कामों की सजा देने और मना करने के लिए ही नियत किये हुए हैं।

योगी को तमःप्रधान व्यक्ति और आकाश को तथा इनमें व्याप्त भगवान् को ध्यान का विषय बना कर इनमें परमात्मा का प्रत्यक्ष करना चाहिये। व्यक्ति या आकाश अथवा परमात्मा को अपनी समाधि का विषय बनाकर भगवान् के ज्ञान के लिए इनके मध्य में ओंकार के मानसिक जाप से ब्रह्म या आह्वान करे। शब्द के साथ अर्थ का सम्बन्ध है। शब्द ओम् है अर्थ भगवान् या ब्रह्म है। शब्द अर्थ का सम्बन्ध होने से अर्थ रूप ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। व्यष्टि आकाश समष्टि का कार्य है, अतः पहले यह जो अन्त में स्थूल भूतों में आकाश है यह उस महाआकाश का ही अन्तिम कार्य रूप ही आकाश है। सर्वप्रथम योगी को इस व्यष्टि आकाश को ही अपनी समाधि का विषय बनाना चाहिये। इसमें ब्रह्म की व्यापकता और इसमें हर समय शब्द क्यों उत्पन्न होते रहते हैं, क्योंकि शब्दों का उत्पन्न होना स्वाभाविक धर्म है, या किसी निमित्त विशेष से उत्पन्न होते हैं, इनका भी अनुसन्धान और ब्रह्म का अनुभव करना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रजःप्रधान समष्टि सूक्ष्म आकाश में प्रणव द्वारा ब्रह्म की व्याप्ति का साक्षात्कार

सूक्ष्म आकाश या शब्द तन्मात्रा आकाश ही हमने रजःप्रधान अवस्था रखी या समझी है। क्योंकि यह स्वर्गलोक निवासी जो प्रधान रूप से भोग प्रधान ही होते हैं, उनके भोग का हेतु ही यह आकाश होता है। उस आकाश में सत्त्व रज तम की तो बात नहीं होती, केवल वहां भोगों की ही प्रधानता होती है। वे स्वर्गीय आत्माएं इस लोक के समान कोई प्रत्यत्न विशेष साधना विशेष तो कर्म भोग प्राप्ति के लिए नहीं करते। प्रायः सब के भोग पञ्च तन्मात्राओं के एक समान ही होते हैं। इस लोक की तरह कर्म ज्ञान और भोगों की वहां विशेषता नहीं होती है। एक समान ही सदा कर्म भोग ज्ञान उनके बने रहते हैं। भोग ही प्रधान होते हैं। उस सूक्ष्म आकाश को हमने रजःप्रधान रूप से कथन किया है। उस रजःप्रधान आकाश को भी योगी अपनी समाधि का विषय बनाकर उसमें व्याप्त ब्रह्म का अनुभव कर सकता है। इस स्थूल जगत् के योगियों के लिए तो सूक्ष्म आकाश ज्ञान का ही विषय बनता है। परन्तु सूक्ष्म जगत् में रहने वालों के लिए वह सामान्य रूप में भोग साधन और गमनागमन का विषय बना रहता है। इस शब्द तन्मात्रा के लोक में केवल स्वर्गीय मुक्तात्माएं सूक्ष्म शरीर में रहती हैं। उनका वहां निवास जब तक सूक्ष्म जगत् की प्रलय नहीं होती तब तक रहता है। इसके पश्चात् उनका सूक्ष्म शरीर भी विनाश भाव को प्राप्त होकर अपने पंच तन्मात्राओं में विलीन हो जाता है। यह सूक्ष्म आकाश भी अपने उपादान कारण समष्टि महाकाश में प्रवेश कर जाता है।

योगी सूक्ष्म आकाश और उसमें ब्रह्म की व्याप्ति को देखें। इस शब्द तन्मात्रा को सूक्ष्म प्रणव के ध्यान का विषय बनाकर कुछ ऊर्ध्व उच्चारण ओम् शब्द का करें, अर्थात् शब्द तन्मात्रा की ध्वनि पैदा करें। उस ध्वनि की सूक्ष्म आकाश और ब्रह्म में सूक्ष्म लहरें-सी उत्पन्न होकर ब्रह्म साक्षात्कार का हेतु बन जाती हैं क्योंकि दोनों का व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध होता है। अतः ब्रह्म के भेदाभेद रूप में दर्शन होते हैं।

सत्त्वःप्रधान व्यष्टि समष्टि आकाश का सम्बन्ध कारण जगत् में जो मुक्त आत्माएं होती हैं उनसे होता है, जिसे हमने अपने ग्रन्थों में ब्रह्मलोक के नाम से वर्णन किया है। यह सत्त्वप्रधान समष्टि आकाश है, केवल ब्रह्मलोक में जो मुक्त आत्माएं होती हैं उनके गमनागमन का हेतु होता है, केवल उनको अवकाश ही प्रदान करता है। इस समष्टि आकाश की उत्पत्ति प्रकृति से ही होती है। हमने जो १२ पदार्थ ब्राह्मी सृष्टि में माने हैं उनमें यह समष्टि आकाश भी है। इस आकाश को ब्रह्मलोक का आकाश कहते हैं। इसमें कारण शरीरों का आवास होता है। इसमें ब्रह्म लोक की मुक्तात्माएं निवास करती हैं। इस ब्रह्मलोक में केवल शान्ति और आनन्द का उपभोग होता है या अपने आत्मा के स्वरूप का दर्शन बना रहता है, अथवा ब्रह्मानुभूति बनी रहती है। इस सत्त्व-प्रधान समष्टि आकाश का उपभोग केवल मुक्तात्मा के गमनागमन में होता है और इससे हानि-लाभ सुख-दुःख आदि की कोई बात नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योगी को इस सत्त्वःप्रधान आकाश का भी, इसमें ब्रह्म की व्याप्ति और मुक्तात्माओं का इसमें निवास का भी समाधि द्वारा प्रत्यक्ष होना चाहिये। इसमें 'त्वमसि' मन्त्र के द्वारा भी ब्रह्म का अनुभव किया जा सकता है। अतः इस लोक में मुक्तामाओं के भी दर्शन योगी कर सकता है।

इस ब्रह्मलोक में इन्द्रियों के भोग तो होते नहीं, केवल कारण शरीर अहंकार और चित्त ही होते हैं। इन दोनों के द्वारा ही वे मुक्त आत्माएं ब्रह्मलोक में 'अहमस्मि' के रूप में अपने स्वरूप के दर्शन करके परम शान्ति का अनुभव करती हैं और 'त्वमसि' आप हैं इस प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार करती हैं, कभी अपने स्वरूप का और कभी ब्रह्म के स्वरूप का दर्शन करके शान्ति आनन्द का बहुत काल तक अनुभव करती या शान्ति आनन्द का भी भोग करती रहती हैं।

शंका—क्या इस ब्रह्मलोक में भूख प्यास आदि भी लगती है?

समाधान—भूख-प्यासादि इन्द्रियों के धर्म हैं; वे वहां होती नहीं, अतः भूख प्यास भी नहीं होती है। इस लोक आकाश में, जो समष्टि रूप में है इसमें, समष्टि ब्रह्म के सम्पूर्ण आकाश में दर्शन होते हैं, कोई व्यवधान किसी का नहीं होता है। सर्वत्र समष्टि आकाश में ब्रह्म की अनुभूति होती है। व्युत्थान और निरोध सूक्ष्म रूप में इस ब्रह्म लोक में भी बना रहता है, क्योंकि कभी अहमस्मि रूप में भोग या आत्म दर्शन होता है, कभी त्वमसि के रूप में ब्रह्म दर्शन होता है।

इस सृष्टि आकाश के ऊपर प्रलय काल की अवस्था में एक और अत्यन्त सूक्ष्म महा आकाश है, जो प्रकृति में सूक्ष्म रूप में गति का हेतु बना रहता है और सर्वप्रथम शब्दों को ज्ञान रूप में या संस्कार रूप में उत्पन्न होने में अवकाश प्रदान करता है। उस अवस्था में भी ब्रह्म की व्याप्ति बनी रहती है।

उस काल में सूक्ष्म-सूक्ष्म अंशों के रूप में आकाश होता है, क्योंकि प्रकृति में जो गति बनी रहती है उसकी गति में जो सूक्ष्म पोल बनते हैं वे आकाश का सूक्ष्म रूप होते हैं। ये सूक्ष्म रूप संघात भाव को प्राप्त होकर सृजन काल में सृष्टि के समष्टि आकाश के रूप को धारण करेंगे। क्योंकि प्रकृति सावयव है, सावयव को चलाने या गतिशील रहने में कुछ न कुछ अवकाश चाहिये, सो अवकाश रूप से यह आकाश अथवा ब्रह्म भी जो इससे सूक्ष्म है अपने गर्भ में सम्पूर्ण प्रकृति को धारण किये हुए है। अतः प्रकृति को ब्रह्म भी अवकाश प्रदान करता रहता है। परन्तु ब्रह्म को अवकाश प्रदान करने की आवश्यकता नहीं होती। यह आकाश प्रकृति का अपना ही गुण विशेष या परिणत होकर कार्य ही सूक्ष्म रूप में होना चाहिये। जैसे कि दिशा और काल हैं, वैसे ही आकाश भी अपना ही गुण विशेष या कार्य विशेष समझें।

शंका- क्या सावयव होने से परमाणु रूप में नहीं हो सकती? जैसे नैयायिक गौतम ऋषि मुनि परमाणवात्मक जगत् को मानते हैं, पृथिवी, जल, वायु के परमाणु मानते हैं, और आकाश को नित्य मानते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधान--उनके परमाणु स्थूल हैं और सावयव हैं। वैसे वे अपने परमाणुओं को सावयव नहीं मानते, निरवयव और नित्य कहते हैं। परन्तु उनके नित्यत्व में भी एक दोष उत्पन्न होता है कि परमाणु निरवयव होने से उनमें आकाश की व्याप्ति नहीं बनती है, जब कि आकाश को वे विभु मानते हैं। विभु एक ही हो सकता है, चाहे आकाश को मान लें अथवा परमात्मा को मान लें। आकाश को विभु मानने में एक और आपत्ति उपस्थित होती है कि सृष्टि का कर्त्ता कौन होगा? आकाश विभु और जड़ है, अतः जड़ होने से उत्पत्ति करने में असमर्थ होगा। अतः आकाश भी सर्वांश में विभु नहीं हो सकता। विभु ब्रह्म हो सकता है। केवल सन्निधान मात्र से निमित्त कारण जगत् के उत्पन्न करने में हो सकता है। नैयायिकों ने जो परमाणु माने हैं इनके ऊपर प्रकृति की १२ समष्टि मण्डलों की अवस्थाएं हैं। ये परमाणु सूक्ष्म पंच तन्मात्राओं की अवस्थाएं हैं। ये परमाणु सावमवय होने से परिणाम भावों को प्राप्त होकर १२ अवस्थाओं में परिणत होकर तेहरवीं अवस्था प्रकृति की इनरो भी सूक्ष्म है।

बल में शब्द द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

इसके उपरान्त १०वां समष्टि पदार्थ है बल (या स्थिति)। यह भी तामसिक राजस सात्त्विक भेद से तीन प्रकार का होना चाहिए।

तमःप्रधान बल या स्थिति में ब्रह्म की व्याप्ति को शब्द द्वारा या मन्त्र द्वारा साक्षात्कार

तमःप्रधान बल या स्थिति पंच स्थूल भूतों की समझनी चाहिये कि ये प्रकृति के अन्तिम परिणाम हैं। इन्होंने और अन्य पदार्थों को उत्पन्न नहीं किया। एक तरह से उन्हें पांच भूत प्रकृति का अन्तिम परिणाम तमःप्रधान ही समझना चाहिए। इस समष्टि बल का नाम बल क्यों रखा? बल ही पदार्थ का स्तम्भन करता है, रोकता है। रुकना या कर्म करते करते खड़े हो जाना, ठहर जाना, दम लेना, सुस्ताना, विश्राम करना, स्थिर होकर बल प्राप्त या धारण करना, सशक्त होना आदि नाम इस बल के होते हैं। एक प्रकार से 'स्थितिशीलं तमः' कहा है। यह अन्तिम अवस्था प्रकृति की तम रूप में या बल रूप में होती है। ये पंच भूत तमः अवस्था में ठहर और अपने बल रूप कर्म करके अन्त में प्रलय में वापिस लौट कर अपने उपादान में गमन करते हुए प्रकृति की साम्यावस्था में जायेंगे। अतः ये पंचभूत प्रकृति का अन्तिम कार्य हैं। यहां पहुंच कर प्रकृति परिणत होती हुई ठहर गयी है स्थिर हो गयी है बल रूप में। योगी को इन पंच भूतों को इकट्ठे या पृथक्-पृथक् समाधि का विषय प्रणव मंत्र का उच्चारण करके सम्मुख ब्रह्म को रखकर इनका और इनमें व्याप्त ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाहिये। इन भूतों में अन्तिम तामसिक बल है और स्थूल भी है। इन्होंने सम्पूर्ण स्थूल संसार को उत्पन्न किया है। यह सारा स्थूल संसार दृश्यमान इन पंच भूतों का ही कार्य है। इस कार्यात्मक जगत् को भी और इसमें व्याप्त ब्रह्म को भी अपने विज्ञान का विषय बनाना चाहिये। यह पंच भूत और इनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्यात्मक दृश्यमान संसार ये सब स्थिति जड़ात्मक बल ही हैं, और अन्तिम बल है। इसके आगे और भूत उत्पन्न नहीं हुए। केवल भूमि, जल, अग्नि, वायु या आकाश के अपने-अपने विस्तार हुए हैं।

रजःप्रधान बल या स्थिति में ब्रह्म की व्याप्ति का शब्द या मन्त्र द्वारा साक्षात्कार

पंच सूक्ष्म भूत या सूक्ष्म जगत् को स्वर्ग लोक भी कहते हैं। यह पंच तन्मात्राओं का सूक्ष्म जगत् या सूक्ष्म शरीरों का भोग स्थान है। यह रजःप्रधान है। यहां केवल भोगों की ही प्रधानता रहती है। कर्म और ज्ञान की इतनी नहीं रहती है। जैसे स्थूल जगत् में कर्म भोग ज्ञान की प्रधानता है, इस प्रकार इस रजःप्रधान सूक्ष्म स्वर्ग लोक में नहीं है। कारण शरीर या कारण लोक में, जो समष्टि पदार्थों का बना हुआ है, व्यष्टि और समष्टि पदार्थों का ही उपभोग होता है। वहां इन्द्रियों के भोग नहीं होते हैं। केवल ज्ञान द्वारा स्वरूप और ब्रह्म के आनन्द का ही उपभोग करना पड़ता है। अतः वह लोक सत्त्वप्रधान माना जाता है। वहां केवल अन्तःकरण अहंकार चित्त के द्वारा ही भोग सुख शान्ति आनन्द रूप में प्राप्त होता है।

सूक्ष्म लोक के व्यष्टि और समष्टि पदार्थों को और इनमें व्याप्त ब्रह्म निमित्त कारण को अपने ज्ञान का विषय बनाना चाहिये। व्यष्टि में प्रत्येक मुक्तात्मा और इनके भोगों गन्ध रस आदि विषयों को अपने ज्ञान का विषय बनाकर प्रणव द्वारा इनमें ब्रह्म की व्यापकता और सन्निधान मन्त्र से निमित्तता का साक्षात्कार करना चाहिये। क्योंकि यहां भोगों की ही प्रधानता है इसलिए इनकी रजःप्रधान अवस्था रखी है। अरबों वर्षों तक सूक्ष्म शरीरों का भोग ही बना रहता है, विशेष कर्म ज्ञान की प्रधानता नहीं होती है। केवल एक समान भोग बने रहते हैं। बिना प्रयत्न के इन्द्रियों के भोग प्राप्त हो जाते हैं, विशेष पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती है। न कर्म भोग में कोई संघर्ष होता है, इस लोक की तरह, अतः इसको स्वर्ग लोक की संज्ञा दी गयी है। इस सूक्ष्म जगत् के कार्य-कारणात्मक जगत् को और इनकी व्यष्टि समष्टि को अपने विज्ञान का विषय बीच में प्रणव मन्त्र या शब्द को माध्यम बनाकर ब्रह्म ज्ञान करना चाहिये। यह रजःप्रधान बल या स्थिति विज्ञान हुआ। इसके आगे सत्त्व बल या स्थिति के विषय में लिखते हैं।

सत्त्वःप्रधान व्यष्टि समष्टि बल या स्थिति में ब्रह्म की व्याप्ति का प्रणव द्वारा साक्षात्कार

सत्त्वःप्रधान बल समष्टि बारह पदार्थों और सूक्ष्म कारण शरीर में और मुक्त आत्माओं के ब्रह्म लोक में व्यष्टि समष्टि पदार्थ और व्यष्टि सर्वव्यापक चेतन के विज्ञान का साक्षात्कार करना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह सत्त्वःप्रधान ब्रह्मलोक पूर्ण सुख शान्ति और आनन्द भोगने का स्थान जीवात्माओं के लिए ही है। यहां तक सर्व आत्मा का भेदाभेदात्मक भोग या ज्ञान जीवात्माओं के लिए होता है, इस लोक तक भेदात्मक और अभेदात्मक ब्रह्म ज्ञान का भाग होता है। जब इस लोक की प्रलय हो जाती है तब जीवात्मा संज्ञा बनी रहती है। इस लोक की प्रलय हो जाने पर केवल ब्रह्म और समष्टि प्रकृति शेष रह जाते हैं। यहां पहुंचकर सर्व प्रकार के भोग समाप्त हो जाते हैं। किसी का कोई कर्तव्य-कर्म ज्ञान-ध्यान कर्म-ज्ञान कुछ नहीं रहता। केवल १३ जड़ पदार्थ, और चेतन ब्रह्म ही शेष रह जाते हैं।

योगी को इस ब्रह्म के समष्टि व्यष्टि पदार्थों को अपने विज्ञान का विषय बनाकर देखना चाहिये, कि इस लोक में क्या हो रहा है। ब्रह्म लोक की मुक्तात्माएं क्या कर रही हैं। कैसा यह सूक्ष्म जगत् है। इसमें किस प्रकार के कारण शरीर बने होते हैं। क्या उनके धर्म-कर्म हैं और ब्रह्म के साथ क्या सम्बन्ध होते हैं। स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों या लोकों में परस्पर क्या अन्तर होता है। यह सब विज्ञान समाधि में बैठ कर व्यष्टि समष्टि पदार्थों तथा मुक्तात्माओं और ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाहिये। यह अन्तिम अवस्था इस कारण शरीर और ब्रह्म लोक की होती है। अतः वर्तमान के ज्ञातज्ञेय योगी को सम्प्रज्ञात समाधि में इन सबका व्यष्टि और समष्टि में साक्षात्कार करना चाहिये। ये सब कर्म और ज्ञान मुक्तात्माओं के इस सर्वव्यापक चेतन ब्रह्म की सत्ता में ही चले रहे या हो रहे हैं। हमारा लक्ष्य और उद्देश्य भी इन तीनों शरीरों और इन तीनों लोकों को और तीनों लोकों के भूत वर्तमान भविष्य को प्रत्यक्ष करने का है।

यहां पहुंच कर यह सत्त्व बल ज्ञान रूप में स्थिति का हेतु हो जाता। विशेष, परिणाम धर्म भी यहां उत्पन्न नहीं होते। सामान्य सात्त्विक स्थिति सुख शान्ति आनन्द दायक होती है। वास्तव में स्थूल लोक में सुख की विशेष उपलब्धि और सूक्ष्म लोक में सुख और शान्ति की प्राप्ति या भोग और इस महत्तत्व के लोक में कारण शरीर शान्ति और आनन्द की प्राप्ति तथा भोग होता है। परन्तु स्थूल जगत् के लोग इन दोनों सूक्ष्म और कारण शरीरों तथा सूक्ष्म और कारण लोकों की कामना नहीं करते हैं।

इनके विषय में कठोपनिषद् ने कहा है—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढ़म्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानो पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥

अर्थ—स्थूल जगत् में रहने वाले बालबुद्धि के लोगों को स्वर्ग लोक या ब्रह्म लोक अच्छा नहीं लगता है। यह धन और ऐश्वर्यों के मोह राग में फंसे रहते हैं और कहते हैं कि इस लोक से परे और कोई लोक नहीं। ये लोक पुनः-पुनः इसमें आकर अविद्या के कारण जन्म लेते रहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समष्टि प्राण में शब्द द्वारा ब्रह्म ज्ञान

यह प्रकरण तम रज सत्त्व वल का समाप्त हुआ। इसके आगे ११वें पदार्थ समष्टि प्राण या समष्टि क्रिया के तामस राजस सात्विक रूपों के विज्ञान का वर्णन करेंगे। हम प्रकृति की तीन अवस्थायें अथवा तीन गुण या धर्म मानते हैं। उपनिषद् में 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इस प्रकृति के प्रधान गुण या धर्म या कार्य माने हैं। अव इसकी रजः-प्रधान व्यष्टि समष्टि क्रिया या प्राण का वर्णन करेंगे। यह भी प्रकृति की एक स्थिति या अवस्था है। यह ही इसमें क्रिया कर्म गति वर्तमान रखती है। यही प्रकृति की पुराणता अथवा व्यष्टि पदार्थों की पुराणता को खत्म करती है। यदि यह कर्म धर्म पदार्थों या प्रकृति में न हों तो यह टस से मस भी नहीं हो सकती है। न पुराणता इन पदार्थों में आएगी और न नवीनता आयेगी। इसके चलन रूप व्यापार से संसार में हमारा भी आना हुआ और यह ससार भी वना और स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर और लोक-लोकान्तर भी बने।

प्राण की तामस अवस्था व्यष्टि समष्टि में प्रणव के द्वारा ब्रह्म ज्ञान

यह तमःप्रधान प्राण समष्टि रूप में अरवों वर्षों तक साम्यावस्था में विना किसी अन्य प्राण या क्रिया विशेष के निरन्तर एक समान ही क्रिया वनाये रखता है। साम्य-अवस्था में प्राण क्रिया कर्म के रूप में कार्य या गति बनाये रखता है। प्रकृति में सर्वप्रथम गति का हेतु स्थूल रूप में प्राण ही वना था। कारण शरीर में भी सर्वप्रथम प्राण गति का हेतु बना और सूक्ष्म रूप शरीर में स्वर्ग लोक में भी प्राण शरीर में कर्म व्यापार का कारण वना। इसी प्रकार स्थूल शरीर में भी वायु प्राण रूप में परिवर्तन होकर जीवन का आधार बना। इस हमारे स्थूल शरीर की आयु और जीवन को रखने में यह व्यष्टि समष्टि प्राण ही मुख्य आधार है। अतः इस व्यष्टि प्राण और इस व्यष्टि स्थूल शरीर और इसमें व्यापक भगवान् को अपनी समाधि में तत्त्व ज्ञान का विषय वनाना चाहिये, क्योंकि प्राण ही आत्मा के संयोग और जीवनी शक्ति को धारण करके मानव के जीवन-मरण सुख-दुःख कर्म भोग और अपवर्ग का हेतु बना हुआ है।

इस तमःप्रधान प्राण में ब्रह्म की व्याप्ति में ओम् मन्त्र का उच्चारण करके इसके द्वारा ब्रह्म का आह्वान करना चाहिये या ध्यान करना चाहिये, क्योंकि इस निमित्त कारण भगवान् के विना प्रकृति जगत् और शरीरों की सव चेष्टाएं ही समाप्त हो जायें। इस प्रणव के उच्चारण से प्राण में विशेष गति और कम्पन उत्पन्न होकर ब्रह्म ज्ञान का हेतु वन जाते हैं। यह प्राण के माध्यम से इस व्यष्टि शरीर और इस में व्यष्टि आत्मा और परमात्मा का ज्ञान हो जाना ही परम लक्ष्य है।

रजःप्रधान समष्टि और व्यष्टि प्राण में मन्त्र द्वारा ब्रह्म का विज्ञान

यहँ रजःप्रधान प्राण सूक्ष्म जगत् सूक्ष्म शरीर और स्वर्ग लोक में अर्थात् पंच तन्मात्राओं के लोक में और सूक्ष्म शरीरों में कार्य करता है। इसका प्रधान रूप से सव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरीरों सब लोकों और मुख्य रूप से प्रकृति की साम्यावस्था में कर्म क्रिया गति चेष्टा एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन करना धर्म कर्म है। सर्वत्र स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण शरीरों और लोकों में इसके द्वारा कर्म हो रहे हैं। सब चेष्टाओं का मूल कारण यही है। इस रजःप्रधान प्राण में बल तो है ही परन्तु बल को भी गतिशील करना और बल को भी सशक्त बना देना इसी का धर्म है। स्वर्ग लोक में सूक्ष्म शरीरों में यह रजःप्रधान प्राण ही व्यष्टि रूप में कार्य कर रहा है और समष्टि रूप में सूक्ष्म जगत् में गति का हेतु बना हुआ है। शरीर में व्यष्टि और सूक्ष्म जगत् में समष्टि रूप में प्रधान-प्रधान चेष्टायें या अवस्थान्तर परिणाम इस रजःप्रधान प्राण के विशेष कार्य हैं। सूक्ष्म जगत् भोगों का साधन कर्म व्यापार का हेतु यह प्राण ही मुख्य रूप में है। सूक्ष्म जगत् के सूक्ष्म शरीरों में व्यष्टि प्राण, और सूक्ष्म समष्टि में समष्टि प्राण इनमें प्रणव को माध्यम बना कर इसको उच्चारण करके या ध्यान की प्रबल भावना से प्राण और ब्रह्म के संयोग को लक्ष्य बना कर ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिये। इस लोक में जड़ और चेतन में क्रिया का हेतु यह प्राण ही देखने में आ रहा है। सर्व कार्य व्यवहार कर्म और व्यापार सूक्ष्म जगत् के इसी से सिद्ध होते हैं।

शंका—आप इतना महत्त्व इस ब्रह्म ज्ञान को क्यों दे रहे हैं?

समाधान—क्योंकि इसके बिना जड़ प्रकृति संसार का सृजन नहीं कर सकती है, और इस संसार को देख कर इसके बनने बनाने वाले का अनुमान भी होता है और इतनी महान् शक्ति को जानने की जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है।

सत्त्वःप्रधान व्यष्टि समष्टि प्राण और इसमें व्याप्त ब्रह्म का प्रणव द्वारा साक्षात्कार

सत्वःप्रधान समष्टि प्राण सर्वप्रथम क्रिया का हेतु या गति का हेतु प्रकृति में हुआ। यदि यह प्राण न होता तो प्रकृति कर्म करने, संसार को सृजन करने में और कारण से कार्य रूप चलने या होने में सर्वथा असमर्थ होती। इस प्राण का कर्म प्रलय काल की अवस्था में भी प्रकृति में वर्तमान रहता है। यह प्रकृति जो समष्टि बारह पदार्थों के रूप में परिणत हुई, यह इस प्राण रूप शक्ति या गति के कारण है। यह क्रिया प्रकृति में प्राण की स्वाभाविक ही है। स्वाभाविक धर्म को जाग्रत करने में ब्रह्म निमित्त कारण बना। वरना यह स्वाभाविक कर्म या धर्म भी प्रकृति में जाग्रत न होता। कई अरब वर्ष जो प्रकृति प्रलय काल की अवस्था में पुराणता से नवीन भाव को प्राप्त होती रही और फिर संसार को उत्पन्न करने में समर्थ हो गयी, यह इस प्राण की ही शक्ति प्रकृति में कार्य कर रही थी। इन १२ समष्टि पदार्थों का गति कर्म व्यापार और कारण से कार्य रूप में जाना और फिर अपने कार्यों का निर्माण करना इस सब में इस प्राण की शक्ति या प्राण रूप शक्ति कर्म कर रही थी। इस सत्त्व प्रधान समष्टि और सत्रष्टि ब्रह्म का परस्पर व्याप्य-व्यापक भाव भाव सम्बन्ध हैं। अतः ओम् नाम से ब्रह्म को पुकार कर उसको जाग्रत सा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करके समष्टि प्राण में उसके दर्शन करने चाहियें। इसका सम्बन्ध मानव के हृदय में भी सात्त्विक प्राण के रूप में है, अतः इसमें ब्रह्म का दर्शन करना चाहिये। इसका सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत् में है, अतः सूक्ष्म जगत् सूक्ष्म शरीर में भी ब्रह्म की व्याप्ति को देखना चाहिये। इसका सम्बन्ध कारण शरीर में और कारण जगत् व्यष्टि समष्टि पदार्थों में भी ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिये। इसका सम्बन्ध समष्टि सर्व पदार्थों और महाकरण शरीर अथवा ब्राह्मी सृष्टि में व्याप्त ब्रह्म के होने से वहां भी योगी को ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये और सर्वत्र ब्रह्म की व्याप्ति का अनुभव या साक्षात्कार करना चाहिये।

इसके आगे, समष्टि व्यष्टि शब्द का प्रकृति के साथ क्या सम्बन्ध है, इसके साक्षात्कार और इसके कारण-कार्य का विवेचन करेंगे।

समष्टि व्यष्टि शब्द में प्रणव द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

वास्तव में प्रकृति में सर्वप्रथम समष्टि शब्द ही उत्पन्न होता है। ज्ञातज्ञेय योगी ही इस तत्त्व को या इसके महत्व को समझ सकता है। सर्वसाधारण को यह पता नहीं चलता कि पहले समष्टि शब्द उत्पन्न हुआ या महाप्राण। यह विवेक होना कि पहले समष्टि शब्द उत्पन्न हुआ या समष्टि प्राण उत्पन्न हुआ अत्यन्त ही कठिन है। शब्द यहां ज्ञान के रूप में और प्राण यहां कर्म के रूप में उत्पन्न होता है। एक प्रकार से ये दोनों ज्ञान और कर्म के रूप में प्रकृति के गर्भ में सदा वर्तमान रहते हैं। ये सदा ही प्रकृति में ज्ञान और कर्म के रूप में, कार्य रूप से अनित्य और कारण रूप से नित्य, रहते हैं। इन दोनों को प्रकृति के स्वाभाविक गुण या धर्म अथवा कार्य रूप समझा जाये। कहीं ज्ञान से कर्म की उत्पत्ति होती है, कहीं कर्म से भी ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ये उपादान कारण भी होते हैं और कहीं निमित्त कारण भी पदार्थ के प्रति हो जाते हैं।

वास्तव में सर्वप्रथम प्रकृति शब्द (ज्ञान) के रूप में ही परिणाम भाव को प्राप्त होती है। प्रकृति में पहला परिणाम ज्ञान रूप में या शब्द के रूप में ही होता है। हम यह नहीं कह सकते कि ज्ञान पूर्व है या कर्म पहले है। इन दोनों का कोई आदि अन्त नहीं, अनादि काल से प्रवाह रूप में चले आ रहे हैं। इनका उपादान कारण प्रकृति है, और निमित्त कारण भगवान् है। प्रकृति के कार्य रूप जो बारह पदार्थ हैं उनमें अन्तिम ब्राह्मी सृष्टि पदार्थ शब्द है, ज्ञान के रूप में है। वह सर्वप्रथम भी कार्य है और सब में अन्तिम भी है। सूक्ष्मता के नाते से जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तब यह सर्वप्रथम कार्य होता है। क्योंकि हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर ज्ञान करते हुए जा रहे हैं अतः यह समष्टि शब्द अन्तिम हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमःप्रधान समष्टि शब्द का ब्रह्म के साथ व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध दोनों के मध्य में प्रणव ओंकार के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार

प्रलय काल की अवस्था में केवल दो ही पदार्थ रह जाते हैं। एक अखिल जगत् और सर्व पदार्थों का मूल कारण प्रकृति और दूसरा निमित्त कारण ब्रह्म जो सन्निधान या संयोग मात्र से सदा वर्तमान रहता है। इसमें महोपनिषद् का प्रमाण है—

दिशोऽपि नहि दृश्यन्ते देशोप्यन्यो देशकृतः।
परमेष्ठ्यपि निष्ठावान् हीयन्ते हरिप्यजः।
भावोऽप्यभावमायाति जीर्यन्ते वै दिगीश्वराः।
ब्रह्मा विष्णुः रुद्रश्च सर्वा वा भूतजातयः।
नाशमेवानुधावन्ति सलिलानीव वाडवम्॥

महो० अ० ४ मं० ५०-५१-५२

अर्थ सरल है, अतः थोड़ा सा भावार्थ लिख देते हैं। दिशा भी नहीं रहती जो देश आदि को बनाती हैं। पर्वत भी विनाश भाव को प्राप्त हो जाते हैं। समुद्र भी सूख जाते हैं। तारागण भी नष्ट हो जाते हैं। जो स्थायी रहने वाले थे वे भी नहीं रहते। सिद्ध पुरुष और दानव भी नहीं रहते हैं, विनाश हो जाते हैं। ब्रह्मा विष्णु रुद्र भी विनाश भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जो पदार्थ भावात्मक थे वे भी नाश भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जो चारों दिशाओं में चक्रवर्ती राज्य करते थे वे भी नहीं रहते है। ब्रह्मा विष्णु शिव सब प्राणी विनाश भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे अग्नि पर पड़ के जल भस्म हो जाता है, ऐसे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाता है। प्रलय काल की अवस्था में कुछ भी शेष नहीं रहता है। सिवाय कारण रूप प्रकृति के और निमित्त कारण रूप परमात्मा या ब्रह्म के कुछ नहीं रहता है।

तमःप्रधान समष्टि शब्द और ब्रह्म की व्याप्ति में प्रणव का उच्चारण करके सूक्ष्म-सी ध्वनि पैदा करने से शब्द रूप प्रणव का अपने अर्थ ब्रह्म से सम्बन्ध हो जाता है और उसकी अनुभूति कुछ-कुछ होने लगती है और व्याप्ति का भेद और अभेद रूप में भी साक्षात्कार होने लगता है। यह स्थिति या बल रूप में प्रकृति और ब्रह्म की अनुभूति होती है।

रजःप्रधान समष्टि शब्द और इसमें व्याप्त ब्रह्म का शब्द द्वारा साक्षात्कार

प्रकृति का यह परिणाम शब्द या ज्ञान रूप में होता है। यह एक प्रकार से ज्ञान की रजःप्रधान रूप में दूसरी अवस्था है। प्रथम है शब्द रूप में ज्ञान की सत्त्वःप्रधान अवस्था, और यह शब्द का दूसरे रूप में ही परिणाम है। एक शब्द का प्रथम परिणाम सत्त्व प्रधान ज्ञान में, और उसी शब्द की दूसरी अवस्था में ज्ञान की अपेक्षा कुछ कर्म की प्रधानता हो जाती है। पहले सत्त्व प्रधान था, अब ज्ञान और कर्म मिल कर रजःप्रधान हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाता है और फिर ज्ञान कर्म में वल या शक्ति परिस्थिति में आ जाता है। यह शब्द रूप ज्ञान कर्म स्थिति में होकर शब्द तीनों धर्मों से पूर्ण हो जाता है।

यह जो रजःप्रधान शब्द या शब्द रूप में ज्ञान है, यह सत्त्व और तम को क्रियाशील या गतिशील करने में समर्थ होता है। ये तीनों परस्पर मिले हुए भी चलते हैं और पृथक् स्वरूप से भी रहते हैं। यह रजःप्रधान शब्द ज्ञान का ही बोधक होता है, क्योंकि पहले प्रकृति ज्ञान रूप में परिणत हुई। यह ज्ञान शब्द के द्वारा अपने स्वरूप को प्रकट करता है। इसलिए इस ज्ञान रूप प्रथम परिणाम को शब्द के द्वारा कथन करना या इसको शब्द के रूप में लाकर व्यवहार में प्रकट करना हुआ है। इस प्रथम ज्ञान रूप परिणाम को प्रकृति ने शब्द रूप में दे दिया है ताकि सर्वसाधारण की समझ में भी आ जाये। एक प्रकार से ज्ञान और शब्द का कार्य कारण या गुणी-गुणी भाव सम्बन्ध है। शब्द को आकाश का गुण भी कहा है। यह इसलिए कि ज्ञान रूप शब्द आकाश में प्रकट होकर अपने स्थूल रूप को प्रकट करता है।

इस सत्वःप्रधान रूप ज्ञान या शब्द की, इसमें कर्म का मिश्रण होने से, ज्ञान की रज रूप या ज्ञान कर्म रूप संज्ञा रखी गयी है। हमें सर्वसाधारण को समझाने के लिए पुनः-पुनः पिष्टपेषण या पुनरुक्तिदोष का प्रयोग करना पड़ता है। यह रजोगुण कर्म-क्रिया-गति के रूप में सर्वत्र प्रयुक्त कार्यात्मक सृष्टि के रूप में होगा। इस रजोगुण की समाप्ति पंच भूतों में वायु पर जाकर होगी।

इस रजःप्रधान शब्द को योगी को स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर कारण शरीर और महाकारण शरीर में व्यष्टि और समष्टि रूप में प्रणव द्वारा इन सब में व्याप्त एक ही ब्रह्म का क्रमपूर्वक साक्षात्कार करना चाहिये। कितना विस्तार इस रजोगुण का सर्वत्र सृष्टि में हुआ, क्योंकि इसमें कर्म की प्रधानता है। ज्ञान के विना कर्म भी अन्धा है। ज्ञान के नेत्र हैं पर चलने वाले पैर नहीं हैं। अतः दोनों एक दूसरे की अपेक्षा करते हैं। ज्ञान हमेशा कर्म के ऊपर सवार रहता है। इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप परमात्मा सदा इस अन्धी प्रकृति पर सवार रहता है। इसी प्रकार इस पंगु और अन्धे जड़ शरीर पर बुद्धि सदा सवार रहती है। पर शरीराभिमानी आत्मा इन तीनों स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों पर सदा सवार रहता है।

रजःप्रधान शब्द कर्म को साथ लेकर ज्ञान और कर्म के रूप में आदि सृष्टि से लेकर सृष्टि के अन्त तक चलता रहा। जब तक ये दोनों ज्ञान और कर्म रहेंगे तब तक इनकी चलन रूप क्रिया खत्म नहीं होगी। जब इनके साथ तक मिलता है तब इनमें स्थिरता आती है और इस स्थिति में ये बलवान् हो जाते हैं, पुनः कर्म और ज्ञान का विस्तार करने के लिए। बिना तमोगुण के इनका सफर कभी समाप्त ही नहीं हो पाता है। इनके सफर में रहता है कुछ थोड़े अंश में तमोगुण भी, परन्तु गौण रूप में कमजोर होकर कुछ-कुछ सहकारी अवश्य रहता है। जब तम की प्रधानता हो जाती है, इसका बल दोनों को पकड़ कर बैठ जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्त्वःप्रधान शब्द समष्टि रूप में ब्रह्म और इसके सम्बन्ध में शब्द द्वारा ब्रह्म विज्ञान

शंका—क्या सर्वप्रथम शब्द उत्पन्न होकर इसकी सात्त्विक राजस तामस अवस्था होती है अथवा शब्द उत्पन्न होकर व्यवहार में आने से इन गुणों का संयोग होता है या प्रादुर्भाव होता है ?

समाधान—हमारे सिद्धान्त में गुण में गुण-गुणी का नित्य सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध से रहता है। ये दो भिन्न पदार्थ नहीं हैं। पदार्थ की बदलती हुई अवस्था को ही गुण, धर्म या अवस्था कहते हैं। जैसे रुई की दूसरी अवस्था सूत रूप में आ गयी, फिर वह वस्त्र रूप में हो गयी। गुण-गुणी का अभेद रूप में नित्य सम्बन्ध अथवा धर्म और धर्मी का अभेद रूप में नित्य सम्बन्ध होता है। जैसे बुद्धि का गुण या धर्म ज्ञान है, बुद्धि ज्ञान रूप में परिणत होती है। ये एक ही पदार्थ के अवस्थान्तर भेद हैं। रुई वस्त्र में वर्तमान है, कहीं छोड़ कर नहीं चली गयी, कारण से कार्य भाव को प्राप्त हुई है।

इसी प्रकार प्रकृति सत्त्व रज तम रूप में परिणत हुई है। ये तीनों धर्म इसके गर्भ में पहले ही सूक्ष्म रूप में वर्तमान थे। क्योंकि प्रकृति परिणामिनी है, सदा एक रूप में नहीं रहती, ज्यों-ज्यों चलती है त्यों-त्यों बदलकर दूसरी अवस्था में चली जाती है। सो अब इसमें प्रथम परिणाम सत्त्व के रूप में, दूसरा परिणाम रज में और तीसरा परिणाम तम स्थिति या बल के रूप में हुआ है। इन तीनों अवस्थाओं से पूर्व प्रकृति अपने असली समष्टि रूप में शयन करके प्रलय में बल शक्ति प्राप्त कर रही थी, संसार को उत्पन्न करने के लिए। जैसे थका हुआ मनुष्य रात्रि को निद्रा में रहकर प्रातः स्वस्थ होकर उठता है। वास्तव में उस प्रलय काल की अवस्था के स्वरूप का वर्णन करने के लिए हमारे अनुमान ही हैं, कोई उस वक्त हम थोड़ा ही प्रलय में होते हैं जो उस अवस्था का प्रत्यक्ष देखा हाल आपको सुनावें ? अतः ये प्रकृति की बदलती हुई सब अवस्थाएं हैं, और ये स्थूल पंचभूतों पर समाप्त हुई हैं।

साम्य-अवस्था से प्रकृति जब स्थूल ज्ञान और कर्म करने में प्रवृत्त होने लगी, क्योंकि ये ज्ञान और कर्म इसके गर्भ में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में वर्तमान पहले ही थे, कोई अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो रही है। ये गुण उसमें पहले से वर्तमान थे, अब स्थूल रूप में आना चाहते हैं, क्योंकि जो गुण कारण में होते हैं वे कार्य में भी आते हैं। अतः सर्वप्रथम प्रकृति का परिणाम ज्ञान रूप में होता है यह ज्ञान सूक्ष्म शब्द के रूप में या संस्कार रूप में उदय होता है। अर्थात् इस ज्ञान को हम शब्दों के रूप में व्यवहार में लाते हैं, इसलिए शब्दों का उपादान कारण ज्ञान है। ज्ञान का विकास शब्दों द्वारा गुरुजन माता-पिता समाज देश के सर्व व्यक्ति करते हैं। अतः उस ज्ञान को हम शब्द के रूप में प्रकट हुआ समझने लगे। इसीलिए शब्द का प्रादुर्भाव ज्ञान के रूप में हम कथन कर रहे हैं।

यह सत्त्वःप्रधान शब्द ज्ञानात्मक सर्वप्रथम उदय हुआ है और यह प्रकृति का निचोड़ सर्वोत्तम भाग सर्वप्रथम ज्ञान रूप में होता है। इसलिए इसे रज तम की अपेक्षा उत्तम,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और श्रेष्ठ कहा है। चाहे इसे आप ज्ञान कहें चाहे शब्दों के रूप में कहें, इसकी परम्परा प्रकृति के सब पदार्थों में सदा चलती रहेगी और मार्ग दर्शन करती रहेगी। यह सत्त्व:प्रधान प्रकृति का प्रथम परिणाम है। यह ज्ञान रूप में या शब्दों के कुछ स्थूल रूप में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ है। यह समष्टि सत्त्व:प्रधान प्रकृति का श्रेष्ठतम भाग परिणत होकर कार्य रूप में आया है। इस सत्त्व से प्रकृति का प्रथम परिणाम भी होता है और इसका प्रलय काल में अन्तिम विनाश भी होकर साम्यावस्था में प्रकृति जाती है।

मानव शरीर में यह व्यष्टि बुद्धि के रूप में और सूक्ष्म शरीर में भी व्यष्टि बुद्धि के रूप में और कारण शरीर में भी यह व्यष्टि चित्त के रूप में ज्ञान का हेतु होता है। व्यष्टि बुद्धि में जो ब्रह्म की व्याप्ति है इन दोनों के बीच में योगी प्रणव के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिये। इसके पश्चात् सूक्ष्म शरीर की बुद्धि में मानसिक प्रणव जाप से अर्थ रूप में ब्रह्म का ज्ञान करना चाहिये। इसके उपरान्त व्यष्टि चित्त में प्रणव द्वारा ब्रह्म ज्ञान करते हुए महाकारण शरीर में समष्टि महत् सत्त्व में ब्रह्म की व्यापकता का दर्शन करना चाहिये। अन्त में समष्टि शब्द के सात्त्विक रूप में समष्टि ब्रह्म का सर्वत्र ज्ञान रूप या समष्टि शब्द में जो प्रकृति के कम्पनों में उनको भी समाधि का विषय बना उनमें ब्रह्म की व्याप्ति को प्रत्यक्ष करना चाहिये। यह प्रकृति के गर्भ में ब्रह्म की व्यापकता के अन्तिम दर्शन होते हैं। इससे ऊपर अन्य ज्ञान या पदार्थ रहता है। इसके पश्चात् आत्मा की स्वरूप में स्थिति हो जाती है। स्वरूप में स्थिति का अभिप्राय संसार से मुक्ति है। इसमें अथर्ववेद का प्रमाण है—

क ईम् वेद सुते सचा पिवन्तं कद् वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनायोजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः॥

अथर्ववेद मं० १, सू० ५३, काण्ड २०

अर्थ—(सुते) इस उत्पन्न हुए जगत् में (सचा) एक ही साथ (ईम्) इस विश्व का पिवन्तम्) पान करते हुए या अपने अन्दर सूक्ष्म रूप में धारण करते हुए (कः वेद) कौन जानता है, अर्थात् योगी जानता है। (कद वयो दधे) वह कितना जीवन धारण करता है। (अयं) यह (यः) जो शिप्री) ज्ञानवान् बलवान् होकर (अन्धसः) अमृत से तृप्त होकर (मन्दानः) दूसरों को भी तृप्त करता है। (ओजसा) अपने ज्ञानरूपी बल से (पुरः विभिनत्ति) पूरे संसार को तोड़-फोड़ कर सूक्ष्मी भाव को या प्रलय में पहुंचा देता है। और ज्ञानियों के शरीर का नाश करके उन्हें मुक्त कर देता है, सन्निधान मात्र निमित्त से।

इस मन्त्र से हमारा अभिप्राय है शरीर और संसार का नाश होकर संसार का प्रकृति अपने उपादान कारण में विलीन होना और शरीर का अन्त होकर मोक्ष प्राप्त होना। इस मन्त्र में सत्त्व:प्रधान ज्ञान की विशेषता या फल मोक्ष और शरीर संसार का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने उपादान कारण में चले जाना, अर्थात् प्रलय काल की अवस्था में प्रवेश करना है। तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने पर 'चक्रभ्रमणवत् धृतशरीरः' सांख्य सूत्र के आधार पर ज्ञान और वैराग्य को धारण करके उसे दृढ़भूमि करने के लिए जीवन-मुक्त होकर शरीर वाणी मन बुद्धि से वह ज्ञानतज्ञेय जीवन मुक्त योगी के समान आचरण करता है संसार के लोगों को प्रेरित करने के लिए वह अपने ज्ञान वैराग्य को दृढ़भूमि करता है। उस योगी के जीवन को देखकर लोग भी श्रद्धा भक्ति विश्वास प्रीति के भाव रखते हुए श्रेय मार्ग पर चलने लगते हैं।

ज्ञातज्ञेय जीवन-मुक्त योगी के लक्षण

शारीरिक धर्म—१. अहिंसा, २. अस्तेय, ३. ब्रह्मचर्य पालन, ४. अपरिग्रह, ५. सर्व द्वन्द्वों का सहन, ६. सेवा, ७. खान-पान में संयम, ८. अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करना, ९. मद्य भांग चरस नशे वाले पदार्थ सेवन न करना, १०. मांस मछली मुर्गा अण्डा न खाना, ११. जुआ ताश चोपड़ शतरंज न खेलना, १२. प्रतिग्रह न लेना, १३. शौच-शरीर को शुद्ध रखना, १४. व्यभिचार न करना, १५. किसी को शरीर से दुःख न देना।

वाचिक धर्म—१. सदा मधुर वचन बोलना, २. सदा सत्य भाषण करना, ३. कठोर वचन न बोलना, ४. किसी की निन्दा न करना, ५. किसी की चुगली न करना, ६. अश्लील वचन न बोलना, ७. मिथ्या भाषण न करना, ८. किसी को वचन से न ठगना, ९. मितभाषी होना, १०. विश्वासघात न करना, ११. जो वचन वाणी से कहे उसे पूरा करना, १२. किसी के बरखिलाफ न बोलना, १३. किसी की आगे पीछे शिकायत न करना, १४. वाणी शरीर मन से एक कर्म करना, १५. आवेश या क्रोध में आकर शास्त्रार्थ या वाद-विवाद न करना।

मन व बुद्धि के धर्म—१. काम का संकल्प मन व बुद्धि में उत्पन्न न होना, २. क्रोध न करना, ३. लोभ का त्याग, ४. मोह का अभाव, ५. विशेष राग का अभाव, ६. द्वेष न करना, ७. ममता या मेरेपन का अभाव, ८. सर्व प्राणि मात्र को सुखी बनाना या सुख देना, ९. किसी से घृणा न करना, १०. किसी भी प्राणि को दुःख न देना, ११. अपमान को सहन करना, २२. सम्मान की इच्छा न करना, १३. अभिमान का परित्याग करना, १४. दुखियों पर दया करना, १५. नम्रता से रहना, १६. पापियों से उपेक्षा करना, १७. इन्द्रियों का दमन करना, १८. मन का शमन या शान्त रखना, १९. निर्भयता, २०. सर्व प्राणिमात्र से प्रेम करना, २१. सर्व प्राणियों पर दया रखना, २२. मन बुद्धि में धैर्य रखना, २३. दुःख मुसीबत में साहस रखना, २४. उद्यमशील होना, २५. द्रोह न करना, २६. दंभ न करना, २७. मन बुद्धि में किसी के प्रति जलन न होने देना,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२८. भ्रान्त न होना, २९. बुद्धि में शोक चिन्ता न होने देना, ३०. कुतर्क न करना, ३१. सदा वैराग्यवान् बने रहना, ३२. सदा आत्म-चिन्तन ब्रह्म-चिन्तन करते रहना।

ये ६२ प्रकार के धर्म कर्म शरीर वाणी मन बुद्धि से सदा नित्य आचरण करने योग्य हैं। जीवन-मुक्त योगी सदा इन धर्मों का पालन करते हुए संसार में विचरण करे या निवास करे। इस शरीर के समाप्त होने पर मुक्त हो जायेगा।

श्री योगेश्वरानन्द परमहंस
प्रणीत 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ
का चतुर्थ अध्याय समाप्त।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपसंहार

इस 'दिव्य शब्द विज्ञान' ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। इनमें १०८ शब्द या मन्त्र द्वारा आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार के बहुत से साधन बताये गये हैं।

प्रथम अध्याय में स्थूल शरीर में १० स्थान आकाश में बताये हैं। इनमें सात्त्विक तामस भेद से ३० प्रकार के शब्दों और मन्त्रों के द्वारा आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान के साधनों का वर्णन किया हैं।

इसी अध्याय में सर्वप्रथम शब्द की उत्पत्ति प्रकृति की साम्यावस्था में मानी गयी है। शब्द और प्राण साम्यावस्था में ज्ञान और कर्म सूक्ष्म रूप में बनाये रखते हैं। प्रकृति बारह अवस्थाओं में परिणत होकर जब जैवी सृष्टि का निर्माण करती है तब समष्टि चित्त से व्यष्टि चित्त उत्पन्न होकर आत्मा की जीवात्मा संज्ञा होती है। इसे कारण शरीर के नाम से कथन किया हैं। इसके पश्चात् अहंकारी सृष्टि का प्रादुर्भाव होकर सूक्ष्म शरीरों का निर्माण होता है।

ये कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर इन दोनों सूक्ष्म जगतों में करोड़ों वर्ष रहकर उत्पत्ति और प्रलय के समय में सुख शान्ति आनन्द का उपभोग करते हैं, क्योंकि इन दोनों को उत्पन्न होने में करोड़ों वर्ष लग जाते हैं।

द्वितीय अध्याय में बताया है कि कारण शरीर सूक्ष्म शरीर की सृष्टि के पश्चात् करोड़ों वर्षों में स्थूल पंचभूतों की सृष्टि और स्थूल शरीरों का निर्माण होता है। इसमें मनुष्य के हृदय में शब्द ज्ञान का प्रादुर्भाव स्थूल रूप और व्यवहार में आने योग्य शब्द अर्थ ज्ञान के रूप में होता है। इसकी विशेषता मनुष्यों में ही प्रकट होती है। सामान्य रूप से अन्य प्राणियों में होती है। मनुष्य ही शब्द अर्थ ज्ञान का विस्तार करते हैं।

तृतीय अध्याय में शब्द मन्त्र द्वारा आत्मा और ब्रह्म ज्ञान के बहुत से साधन बताये गये हैं। दस आकाशों में स्थूल शरीर में ३० प्रकार के सात्त्विक राजस तामस भेद से शब्द और मन्त्र द्वारा आत्मा परमात्मा के ज्ञान के साधन बताये हैं। तीनों स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों में शब्द मन्त्र या प्रणव द्वारा आत्म-साक्षात्कार की बातें बतायी हैं।

चतुर्थ अध्याय में सूक्ष्म शरीर में कारण शरीर शब्द और मन्त्र द्वारा आत्म-साक्षात्कार करने के साधनों का वर्णन किया है। सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत् में ३० प्रकार के शब्द और मन्त्र द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार का वर्णन किया है। कारण शरीर के हृदय प्रवेश में १२ प्रकार के शब्दों द्वारा आत्म-साक्षात्कार की बात बतायी गयी है। इसके पश्चात् ब्राह्मी सृष्टि में जो कि १२ पदार्थ समष्टि हैं इनमें ब्रह्म की व्यापकता और इसके द्वारा इनमें गति होना और इनमें ब्रह्म ज्ञान के उपाय बताये हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थूल शरीर में ३० आकाशस्थ स्थानों में और सूक्ष्म शरीर के भी ३० आकाश स्थानों में एवं १२ कारण शरीर में और ३६ महाकारण समष्टि पदार्थों में [सात्त्विक राजस तामस भेद से – १२× ३] प्रणव द्वारा आत्मा तथा ब्रह्म साक्षात्कार के उपाय हैं। इन १०८ शब्दों द्वारा आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार होकर परम वैराग्य और परम ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Bara Uttu Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.